VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-III

इतिहास

आधुनिक भारत का इतिहास (1757-1950 ई० तक)

SYLLABUS

UNIT-I

Arrival of European Companies : Rivalry for Control, Ascendancy of British East India Company : Plassey and Buxar and its Impact.

UNIT-II

Territorial Expansion of East India Company : 1770-1856.

UNIT-III

Rise of Punjab under Ranjeetsingh : conquests and administration. Rise of Hyderabad and Mysore in 18th century.

UNIT-IV

Land Revenue system during colonial period : permanent settlement, Raiyatwari and Mahalwari system, Indian Renaissance : Reform and revivals.

UNIT-V

Transfer of Power : From Company to Crown, Lord Lytton and Lord Ripon, Lord Curzon and Partition of Bengal.

UNIT-VI

Commercialisation of Agriculture and its Impact on India, Development of Railway and its Impact.

UNIT-VII

Development of Education in Colonial India, Morley-Minto reforms, Govt. of India Act 1919 and 1935.

UNIT-VIII

Rise and Development of Communalism in India. Mergers of Princely states after Independence and Role of Sardar Vallabh Bhai Patel.

TOUCH 'n' PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : यूरोपीय कम्पनियों का आगमन ...3
UNIT-II : ईस्ट इण्डिया कम्पनी का क्षेत्रीय विस्तार ...22
UNIT-III : रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का उदय ...49
UNIT-IV : औपनिवेशिक काल के दौरान भू-राजस्व व्यवस्था ...67
UNIT-V : सत्ता का हस्तान्तरण ...93
UNIT-VI : भारत में कृषि के व्यवसायीकरण के प्रभाव ...103
UNIT-VII : औपनिवेशिक काल में शिक्षा का विकास ...131
UNIT-VIII : भारत में साम्प्रदायिकता का उदय और विकास ...147
- मॉडल पेपर ...176

UNIT-I

यूरोपीय कम्पनियों का आगमन
Arrival of European Companies

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में पुर्तगालियों का मुख्य केन्द्र कौन-सा था?

Which was the main centre of the Portuguese in India?

उत्तर 1501 ई० में वास्कोडिगामा दूसरी बार भारत आया और उसने कन्नूर में एक व्यापारिक फैक्ट्री स्थापित की। व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना हो जाने के बाद भारत में कालीकट, कन्नानौर और कोचीन प्रमुख पुर्तगाली केन्द्रों के रूप में उभरे।

प्र.2. भारत में सर्वप्रथम आने वाला व्यापारी कौन था?

Who was the first trader to come to India?

उत्तर पुर्तगाली 17 मई, सन् 1498 को वास्कोडिगामा भारत के तट पर आया जिसके बाद भारत आने का रास्ता तय हुआ। वास्कोडिगामा की सहायता गुजराती व्यापारी अब्दुल मजीद ने की। उसने कालीकट के राजा जिसकी उपाधि 'जमोरिन' थी, से व्यापार का अधिकार प्राप्त कर लिया, पर वहाँ सालों से स्थापित अरबी व्यापारियों ने उसका विरोध किया।

प्र.3. भारत में अंग्रेजों का आगमन कब हुआ था?

When did the English arrive in India?

उत्तर 24 अगस्त, 1608 को व्यापार के उद्देश्य से भारत के सूरत बंदरगाह पर अंग्रेजों का आगमन हुआ था, लेकिन 7 वर्षों के बाद सर थॉमस रो (जेम्स प्रथम के राजदूत) की अगुवाई में अंग्रेजों को सूरत में कारखाना स्थापित करने के लिए शाही फरमान प्राप्त हुआ।

प्र.4. भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पहला गवर्नर जनरल कौन था?

Who was the first governor general of East India company in India?

उत्तर कम्पनी राज का अर्थ है ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत पर शासन। यह सन् 1773 में शुरू किया गया, जब कम्पनी ने कोलकाता में एक राजधानी की स्थापना की तथा अपना पहला गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स नियुक्त किया और संधि का एक परिणाम के रूप में 1764 बक्सर का युद्ध के बाद सीधे प्रशासन में शामिल हो गया है।

प्र.5. भारत का अन्तिम वायसराय कौन था?

Who was the last Viceroy of India?

उत्तर लॉर्ड माउंटबैटन 12 फरवरी, 1947 से 21 जून, 1948 के बीच भारत के वायसराय थे। तत्पश्चात् वे 15 अगस्त, 1947 से 21 जून, 1948 तक स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल रहे।

प्र.6. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना किसने व कब की थी?

When and by who was the East India company founded?

उत्तर ईस्ट इण्डिया कम्पनी सन् 1600 में बनायी गयी थी। उस वक्त ब्रिटेन की महारानी थीं, एलिजाबेथ प्रथम। जिन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एशिया में कारोबार करने की खुली छूट दी थी। मगर वक्त ने ऐसी करवट ली कि ये कम्पनी कारोबार के बजाय सरकार बन बैठी।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. अंग्रेज भारत में व्यापार क्यों करना चाहते थे?

Why did the English want to trade with India?

उत्तर देखा-देखी डच अंग्रेज और फ्रांसीसियों ने भी भारत से व्यापार करना शुरू किया। इन विदेशी व्यापारियों में भारत के लिए आपस में प्रतिद्वन्द्विता चलती थी और इनमें से हर एक का यह इरादा था कि दूसरों को हटाकर अपना अक्षुण्य अधिकार स्थापित करें।

प्र.8. भारत में यूरोपियों के आगमन का क्रम क्या है?

What is the sequence of arrival of Europeans in India?

उत्तर भारत में यूरोपियों के आने के क्रम में सर्वप्रथम पुर्तगीज थे, इसके बाद डच, अंग्रेज, डेनिश और फ्रांसीसी आये। इन यूरोपियों में यद्यपि अंग्रेज, डच के बाद आये थे, लेकिन इनकी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना से पहले ही हो चुकी थी।

प्र.9. भारत आने वाला अन्तिम यूरोपीय कौन था?

Who were the last Europeans to come to India?

उत्तर भारत में आने वाले अन्तिम यूरोपीय लोग फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्त्वावधान में फ्रांसीसी थे। भारत के साथ व्यापार करने के लिए राजा लुई XIV के शासनकाल के दौरान 1664 ई० में फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गठन किया गया था।

प्र.10. भारत में आने वाला प्रथम अंग्रेज कौन था?

Who was the first Englishman to come to India?

उत्तर माना जाता है कि भारत पहुँचने वाला पहला ब्रिटिश व्यक्ति थॉमस स्टीफन्स नाम का एक अंग्रेजी जेसुइट पुजारी और मिशनरी था, जो अक्टूबर, 1579 में गोवा पहुँचा था।

प्र.11. बक्सर के युद्ध के क्या कारण थे?

What were the causes of the battle of Buxar?

उत्तर भारी मात्रा में धन और भूमि अंग्रेजों को देने के कारण मीर जाफर के सम्मुख अनेक राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ उपस्थित हो गयी। मीर जाफर नाममात्र का नवाब बनकर रह गया। सत्ता या शक्ति क्लाइव के हाथों में थी। धन के अभाव में सैनिक विद्रोह कर रहे थे।

प्र.12. बक्सर युद्ध का क्या महत्त्व है?

What is the importance of the battle of Buxar?

उत्तर बक्सर की लड़ाई के माध्यम से अंग्रेजों ने बंगाल में पूर्ण राजनीतिक नियन्त्रण स्थापित कर लिया। वास्तव में हस्तांतरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ प्लासी की लड़ाई से हुआ था और इसकी चरम परिणति बक्सर के युद्ध में हुई।

प्र.13. प्लासी का युद्ध कब हुआ? इसका परिणाम क्या हुआ?

When did the battle of plassey take place? What was its result?

उत्तर 23 जून, 1757 ई० को प्लासी नामक स्थल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और नवाज सिराजुद्दौला की सेना के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें अंग्रेजी सेना की कमान रॉबर्ट क्लाइव और नवाब सेना की कमान मीर जाफर के विश्वासघात के कारण नवाब सेना की हार हुई और सिराजुद्दौला को बंदी बनाकर मृत्युदण्ड स्वरूप गोली मार दी गयी।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. बक्सर के युद्ध के कारण एवं महत्त्व का उल्लेख कीजिए।

Mention the importance and the causes of battle of Buxar.

उत्तर

बक्सर के युद्ध (22 अक्टूबर, 1764) के कारण
(Causes of Battle of Buxar)

इसके कारण निम्नलिखित हैं—

1. नवाब मीर कासिम वास्तविक नवाब बनना चाहता था, जो अंग्रेजों को मंजूर नहीं था।

TOUCH 'n PASS

2. अंग्रेजों की बढ़ती माँगें नवाब द्वारा पूरी नहीं की गई।
3. अंग्रेजों द्वारा दस्तक का दुरूपयोग और नवाब द्वारा आन्तरिक कर की समाप्ति।

महत्त्व (Importance)

इसका महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. जहाँ प्लासी की विजय क्लाव के षड्यन्त्रों का परिणाम थी, वहीं बक्सर की विजय अंग्रेजी सैनिक शक्ति की स्पष्ट विजय थी।
2. बक्सर का युद्ध निर्णायक साबित हुआ। प्लासी ने बंगाल में अंग्रेजों का प्रभाव स्थापित किया था किन्तु इसका निर्णय नहीं हो सका कि बंगाल का वास्तविक शासक कौन है? बक्सर ने इसका निर्णय कर दिया। बक्सर ने अन्तिम रूप से बंगाल में अंग्रेजी राज्य स्थापित कर दिया।
3. तत्कालीन भारत की महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ ब्रिटिश के अधीन हो गई। मुगल बादशाह शाहआलम अंग्रेजों पर निर्भर हो गया। अवध व बंगाल, कम्पनी के नियन्त्रण में आ गये। इस तरह कम्पनी के लिए भारत के विजय द्वार खुल गये।
4. प्लासी ने बंगाल के नवाब के अधिकारों को समाप्त नहीं किया था, बक्सर ने उनके अधिकारों को पूर्णतः समाप्त कर दिया।
5. प्लासी ने अंग्रेजों को वैध शासक नहीं बनाया था, किन्तु बक्सर ने उन्हें वैध शासक बना दिया। क्योंकि उसके बाद 'इलाहाबाद की संधि' से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी उन्हें मुगल सम्राट की तरफ से प्राप्त हुई।
6. प्लासी के बाद जिस लूट का आरम्भ हुआ, बक्सर ने इस लूट के वेग को तेज कर दिया और उसे वैधानिक रूप प्रदान किया। इस तरह बक्सर युद्ध ने प्लासी द्वारा प्रारम्भ की गयी प्रक्रिया को पूरा किया। बक्सर ने अंग्रेजों की सर्वोच्चता को असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया।
7. बंगाल पर नियन्त्रण के पश्चात् कम्पनी ने द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की। भू-राजस्व व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था की स्थापना की गई। आगे बंगाल के गवर्नर के रूप में हेस्टिंग्स की नियुक्ति की गयी जिसे आगे चलकर भारत के गवर्नर के रूप में जाना जाने लगा। यह इस बात का प्रमाण है कि बंगाल पर अंग्रेजी नियन्त्रण भारत पर ब्रिटिश नियन्त्रण की प्रस्तावना थी।

प्र.2. प्लासी के युद्ध के महत्त्व का उल्लेख कीजिए।
Mention the importance of battle of plassey.

उत्तर

प्लासी के युद्ध का महत्त्व
(Importance of Battle of Plassey)

प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय के कारण बंगाल में उसका शासन समाप्त हो गया तथा मीर जाफर का शासन शुरू हो गया। सन् 1756 से 1760 के बीच मीर जाफर ने कम्पनी को 2 करोड़ 25 लाख लाख रुपये की धनराशि दी तथा मीर जाफर ने उन्हें 24 परगने की जागीर भी दे दी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अंग्रेजों ने फैक्ट्रियाँ स्थापित की। 1757 ई० में उन्होंने कलकत्ते में टकसाल स्थापित की। अभी तक कम्पनी को व्यापार करने के लिए जो 75 प्रतिशत सोना-चाँदी इंग्लैण्ड से मँगाना पड़ता था, अब वह नहीं माँगना पड़ता था। कम्पनी के अधिकारी हर प्रकार से निजी धन कमाने में लग गये और सैनिक अधिकारियों का लालच भी बढ़ता गया। मीर जाफर ने अंग्रेज व्यापारियों को निजी व्यापार करने की सुविधा दी। कम्पनी ने बंगाल में अफीम, शोरा और नमक के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर बहुत धन कमाया।

राजनैतिक महत्त्व की दृष्टि से भी प्लासी का युद्ध महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों का बंगाल पर अधिकार हो गया, क्योंकि दीवान राय दुर्लभ और बिहार के नायब दीवान रामनारायण पर अंग्रेजों की कृपा दृष्टि के कारण नवाब उन्हें दण्ड नहीं दे सकता था। अंग्रेजों का राजनैतिक प्रभुत्व इतना बढ़ चुका था कि मीर जाफर को उन्होंने बिना किसी रक्तपात के बड़ी आसानी से गद्दी से हटा दिया। एक दशक की भीतर ही अंग्रेजी बंगाल के वास्तविक शासक बन बैठे थे। मेलसन ने लिखा है कि "इतना तुरन्त स्थायी और प्रभावशाली परिणामों वाला कोई युद्ध नहीं हुआ।"

इस युद्ध का नैतिक प्रभाव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। एक व्यापारिक कम्पनी ने बंगाल शासक को परास्त कर दिया था, इससे भारत की राजनैतिक दुर्बलता सामने आ गयी।

TOUCH 'n PASS

प्र.3. प्लासी के युद्ध के कारणों की व्याख्या कीजिए।
Analyse the causes of battle of plassey.

उत्तर

प्लासी के युद्ध के कारण
(Causes of the Battle of Plassey)

प्लासी युद्ध क्लाइव के षड्यन्त्र और हीन राजनीति का परिणाम था तथा यह सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य 23 जून, 1757 ई० को प्रारम्भ हुआ। प्लासी के युद्ध के कारण इस प्रकार हैं—

1. **उत्तराधिकार का संघर्ष**—सिराजुद्दौला नवाब तो बन गया था लेकिन अलीवर्दी खाँ की पुत्री का पुत्र शौकत जंग, जो पूर्णिया का शासक था, ने सिराजुद्दौला का विरोध किया। इस कार्य में कोलकाता के सिख व्यापारी अमीचन्द, जगत सेठ, जावल्लभ (राय दुर्लभ) तथा ढाका की घसीटी बेगम एवं अंग्रेज मदद कर रहे थे तथा ये सभी मिलकर सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे।
2. **यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध**—यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध सन् 1756 में आरम्भ हो चुका था। अत: फ्रांसीसियों से सुरक्षा के लिए अंग्रेजों ने नवाबों की अनुमति के बिना दुर्ग बनाना आरम्भ कर दिया। अत: नवाब ने इन्हें गिरा देने का आदेश दिया। इस आदेश का उल्लंघन, संघर्ष का कारण बना।
3. **अंग्रेज और फ्रांसीसी शत्रुता**—अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में प्रतियोगिता बहुत पुरानी थी। दक्षिण में भी इस कारण युद्ध हुए तथा बंगाल में भी लोग एक-दूसरे के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार रहते थे। अत: बंगाल में भी फ्रांसीसियों के विरुद्ध का भय था, इसलिए अंग्रेज सिराजुद्दौला को बंगाल की गद्दी से उतारना चाहते थे।
4. **सुविधाओं का अंग्रेजों द्वारा दुरुपयोग**—अंग्रेजों को वार्षिक रकम नवाब को देने के बदले में बिना कर व्यापार करने की अनुमति मिली हुई थी। अत: अंग्रेज भारतीय व्यापारियों से रिश्वत लेकर अपने नाम की पर्ची दे देते थे, जिससे नवाब के कर्मचारी उनसे चुंगी नहीं ले पाते थे। अत: पूर्व में अलीवर्दी खाँ और पश्चात् सिराजुद्दौला ने इस भ्रष्टाचार को रोकने का प्रयत्न किया तथा अंग्रेजों ने जब इस पर ध्यान नहीं दिया तो यही संघर्ष का कारण बना।

प्र.4. भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने कौन-से तरीके अपनाये?
Which means were employed by the British to establish their rule in India?

उत्तर भारत में अंग्रेजों के औपचारिक शासन से पूर्व भारतीय-यूरोपीय आर्थिक सम्बन्ध भी पृष्ठभूमि में थे। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जिसे कभी-कभी जॉन कम्पनी भी कहा जाता था, सन् 1600 में स्थापित संयुक्त शेयर कम्पनी थी जिसे लंदन के उन व्यापारियों ने स्थापित किया था जो ईस्ट इण्डीज में व्यापार करते थे। इस दौरान अन्य व्यवसायिक कम्पनियाँ जैसे पुर्तगाली, डच, फ्रांस, डेनमार्क भी भारत में अपने प्रभुत्व का विस्तार कर रही थीं। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने पाँव पसारने का मौका सन् 1612 में प्राप्त हुआ जब तत्कालीन मुगल बादशाह जहाँगीर ने ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ प्रथम के राजदूत, सर टॉमस रो को सूरत में एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया। भारत में अंग्रेजी राज की औपचारिक शुरुआत सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् मानी जाती है जब बंगाल के नवाब ने अपने क्षेत्र को अंग्रेजों को समर्पित कर दिया था। इसके पश्चात् एक व्यापारिक कम्पनी धीरे-धीरे राजनीतिक शक्ति में बदलती गई जिसने बाद में भारत में शासन किया। अब उसके पास सहायक सरकार तथा सैन्य शक्तियाँ थीं, जो सन् 1858 में इसके विघटन तक रही, जब अंग्रेजी सरकार ने भारत सरकार अधिनियम सन् 1858 के तहत भारत को अंग्रेजी सरकार के अधीन कर दिया।

एशिया के साथ यूरोपीय व्यापार का नया चरण
(A new Phase of European trade writh Asia)

सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक मार्गों पर अधिकार स्थापित करने के बावजूद यूरोपीय उस मूलभूत ढाँचे को सुलझा न सके जो बरसों से भारत तथा पश्चिम के साथ व्यापार में चलता चला आ रहा था। यूरोप में भारतीय वस्तुओं की माँग, भारत में यूरोपीय वस्तुओं की माँग की तुलना में कहीं ज्यादा थी। व्यापारी यूरोप में भारतीय वस्तुओं को बेचकर भारी मुनाफा कमा रहे थे, क्योंकि यूरोपीय वस्तुओं की तुलना में भारतीय वस्तुएँ उत्कृष्ट गुणवत्ता तथा कम मूल्य की थीं। इसके फलस्वरूप भारत में यूरोप

TOUCH 'n' PASS

का धन आने लगा तथा इसने उन यूरोपीय व्यापारियों के समक्ष कड़ी प्रतिद्वन्द्विता प्रस्तुत की जो न तो मूल्यों के साथ समता कर सकते थे और न ही भारतीय वस्तुओं की गुणवत्ता का मुकाबला कर सकते थे।

वास्तव में अपनी स्थापना के पहले 50 वर्षों तक अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रुचि उपनिवेश के विकास में न होकर व्यापार मे ही लगे रहने की थी जैसा कि पुर्तगालियों ने अपना ढाँचा स्थापित किया था। इस ढाँचे में 1650 ई० में बदलाव आया जब पुराने राजभक्त अंग्रेजी वफादार व्यापारियों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई तथा व्यापारियों के एक नये वर्ग ने कम्पनी पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने अमेरिका तथा वेस्ट इण्डीज में उपनिवेशवादी व्यापारियों द्वारा स्थापित ढाँचे का अनुसरण किया तथा इंग्लैण्ड, अफ्रीका तथा भारत को आपस में जोड़ दिया तथा उपनिवेशक बस्तियों का जालतन्त्र बिछा कर परस्पर सम्बन्धों का जटिल जालतन्त्र विकसित किया।

प्र.5. दोहरी शासन प्रणाली से क्या तात्पर्य है?

What do you mean by dual government system?

उत्तर

बंगाल में दोहरी शासन प्रणाली
(Dual Goverment System in Bengal)

बंगाल में कम्पनी शासन की आरम्भिक अवस्था में मुगल साम्राज्य की प्रशासन पद्धति का ही अनुसरण किया गया। मुगल प्रशासन मुख्यत: दो विभागों में कार्य करता था—निजामत तथा दीवानी। व्यापक अर्थों में निजामत से अर्थ कानून व्यवस्था एवं प्रशासन तथा फौजदारी मामलों से था तथा दीवानी राजस्व प्रशासन तथा नागरिक कानून से सम्बन्धित थी।

प्रान्तीय सूबेदार, निजामत का प्रभारी हुआ करता था (उसे नजीम भी कहा जाता था) तथा दीवान राजस्व प्रशासन का प्रभारी हुआ करता था। इलाहाबाद की संधि के उपरान्त अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल का दीवान बनाया गया। किन्तु लॉर्ड क्लाइव ने बंगाल शासन पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण न लेना ही पसन्द किया। यह जिम्मेदारी नवाब के नायब दीवान तथा नायब नजीम मुहम्मद रजा खान को सौंपी गई। नायब नजीम के तौर पर वह नवाब का प्रतिनिधि था वहीं नायब दीवान के नाते वह कम्पनी का प्रतिनिधित्व भी करता था। इस प्रकार नवाब को ही दीवानी तथा फौजदारी दोनों ही कानूनों को देखना पड़ता था। हालाँकि उसे अपना कार्य मुहम्मद रजा खान के माध्यम से करना था, जो अंग्रेजी कम्पनी के नियन्त्रण, निर्देशन तथा निरीक्षण में था। दीवान के तौर पर कम्पनी राजस्व की वसूली प्रत्यक्ष किया करती थी जबकि उप-निजाम की नियुक्ति के अधिकार द्वारा वह निजामत अर्थात् पुलिस/न्यायिक शक्तियों पर नियन्त्रण रखती थी। इस व्यवस्था को शासन की दोहरी प्रणाली के रूप में जाना गया। इस प्रणाली के तहत अंग्रेजों के पास बिना किसी जिम्मेदारी के शक्ति और संसाधन थे वहीं नवाब के पास बिना शक्ति के शासन चलाने की जिम्मेदारी थी। इस प्रकार कुशासन का पूर्ण उत्तरदायित्व नवाब का ही होता था। मुगल बादशाह को अदा की जाने वाली मामूली राशि के बदले में एकत्र राजस्व कम्पनी की आय का एक अनन्य साधन रहा।

प्र.6. मराठों की असफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

Mention the causes for the failure of the Marathas.

उत्तर

मराठों की असफलता के कारण
(Causes for the Failure of the Marathas)

मराठों की असफलता के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. 17वीं शताब्दी में जिन आदर्शों और भावनाओं ने मराठों के उत्कर्ष में योगदान दिया, वे 18वीं सदी के मध्य तक नष्ट हो चुके थे। पेशवा बालाजी, बाजीराव के समय से ही मराठों को अलग-अलग क्षेत्र में विशेष अधिकार सौंपने से आपसी गुटबन्दी व निजी स्वार्थों को बढ़ावा मिला। सिंधिया, होल्कर, भौंसले, गायकवाड़ स्वयं को मराठा राज्य का अंग न मानकर अलग-अलग इकाइयों में परिवर्तित हो गये। इस तरह ऐसा मराठा संघ अस्तित्व में आया जिसमें एकता व संगठन का अभाव था, जिसका प्रमुख पेशवा स्वयं निर्बल था। फलत: संगठित अंग्रेजी शक्ति के विरुद्ध यह असंगठित संघ प्रमुख चुनौती उत्पन्न नहीं कर सका।
2. मराठों की युद्ध कला अंग्रेजों की प्रशिक्षित सेना के समक्ष सफल नहीं हुई। वस्तुत: मराठों ने अपनी परम्परागत गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को त्याग कर घुड़सवार सेना की अवहेलना की तथा पद्धति एवं तोपखाने पर अधिक बल दिया। लेकिन वे इस तोपखाने को अंग्रेजों की तुलना में सशक्त नहीं बना पाये। अत: युद्ध में उनकी पराजय हुई।
3. मराठों ने नौसेना को प्राय: महत्त्व नहीं दिया। अंग्रेजों ने इस हीनता का लाभ उठाया और विजय प्राप्त की।

TOUCH 'n PASS

4. मराठों को योग्य नेतृत्व अंग्रेजों की तुलना में प्राप्त नहीं हो पाया और जो योग्य मराठे थे, वे 1800 ईस्वी तक मर चुके थे।
5. मराठों की चौथ, सरदेशमुखी नीति ने अन्य क्षेत्रीय राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनने नहीं दिए। साथ ही मराठों की अपनी कोई सुदृढ़ आर्थिक नीति नहीं थी। चौथ और सरदेशमुखी, आय का महत्त्वपूर्ण साधन थे। इससे प्राप्त धन का उपयोग आर्थिक सुदृढ़ीकरण एवं उत्पादन बढ़ाने में नहीं बल्कि भोग विलास में किया गया।
6. उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण व भावना का अभाव था। हथियार, बारूद, तोप के लिए वे स्वयं तकनीकी विकास नहीं कर पाए बल्कि विदेशियों पर ही निर्भर रहे।
7. मराठों की गुप्तचर प्रणाली विकसित नहीं हो सकी, कारण यह रहा कि अंग्रेजों की भाषा को समझने का कोई प्रयत्न उनके द्वारा नहीं हुआ जबकि अंग्रेजों ने उनकी भाषा सीख ली थी।
8. मराठों ने साम्राज्य शासन, संस्कृति, कला, साहित्य के क्षेत्र में कोई आदर्श व नए समाज का कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया, जिससे जनसाधारण आकर्षित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति करते, जैसा कि फ्रांसीसी क्रांति में दिखाई पड़ता है।
9. मराठों के पतनोन्मुख सामाजिक व्यवस्था ने भी उनके पतन को निश्चित कर दिया।
10. अंग्रेजों की कूटनीतिक क्षमता, कुशल नेतृत्व, श्रेष्ठ सैन्य शक्ति, सुदृढ़ वित्तीय प्रबंधन जैसे तत्त्वों ने उनकी विजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
11. दरअसल मराठों की पराजय का कारण यह था कि वे भी उसी पतनशील व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे जिसका नेतृत्व मुगलों ने किया था।

    वस्तुतः मराठा साम्राज्य एक बाढ़ की भाँति था जिसका पानी दूर-दूर तक फैला, परन्तु उसके समाप्त हो जाने पर उसके कोई अवशेष नहीं रहे।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में यूरोपियनों के आगमन की विवेचना कीजिए।

Describe the arrival of the Europeans in India.

उत्तर

भारत में यूरोपियनों का आगमन
(Arrival of the Europeans in India)

यूरोपियों के साथ भारत के संबंध प्राचीनकाल से रहे हैं। (यूनानी ईरानियों के माध्यम से) मध्यकाल में यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत का व्यापार अनेक मार्गों से चलता था। एशिया में इस व्यापार का अधिकांश भाग अरब व्यापारियों द्वारा चलाया जाता था। एशिया का माल यूरोप तक पहुँचने से पहले अनेक राज्यों और हाथों से गुजराता था। फिर भी यह व्यापार अत्यंत मुनाफे वाला था।

1453 में तुर्की सुल्तानों ने एशिया माइनर को जीतकर कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर लिया तो पूर्व और पश्चिम के बीच के पुराने व्यापारिक मार्ग तुर्कों के नियंत्रण में आ गए। इसके अलावा यूरोप और एशिया के व्यापार पर वेनिस और जेनेवा के व्यापारियों का अधिकार था और वे पश्चिमी यूरोप के नए राष्ट्रों, खासकर स्पेन और पुर्तगाल, को इन पुराने व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापार में भागीदार नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए पश्चिमी यूरोप के देश और व्यापारी भारत और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) के नए और अधिक सुरक्षित समसुद्री मार्गों की तलाश करने लगे। परिणामतः व्यापार में बाधा पहुँची और नए व्यापारिक मार्गों की खोज को प्रोत्साहन मिला। इसी क्रम में पुर्तगाल निवासी वास्कोडिगामा ने केप ऑफ गुड हॉप की यात्रा करते हुए भारत की खोज की। अभी तक भारत के समुद्री व्यापार पर अरब व्यापारियों का नियंत्रण था जिसे अब पुर्तगालियों ने शक्ति के बल पर अपने हाथ में ले लिया। फलस्वरूप यूरोप और भारत के मध्य समुद्री मार्ग द्वारा प्रत्यक्ष व्यापार फिर से स्थापित हो गया। इतिहासकार डाडवेल ने इस संदर्भ में लिखा कि "संभवतः मध्ययुग की किसी भी अन्य घटना का सभ्य संसार पर इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा, जितना की भारत जाने के समुद्री मार्ग खुल जाने से"।

पुर्तगालियों का आगमन (Arrival of the Portuguese)

पुर्तगालियों का आगमन निम्न प्रकार है—

1. सर्वप्रथम 15वीं-16वीं सदी में पुर्तगालियों ने भारत में व्यापारिक चौकियाँ स्थापित की। पुर्तगालियों का आरंभिक सौ वर्षों तक पूर्वी व्यापार पर लगभग एकाधिकार रहा। भारत में कोचीन, गोवा, दमन, दीव में उनके मुक्त व्यापार केन्द्र थे।

पुर्तगालियों ने आरंभ से ही व्यापार के साथ शक्ति का भी प्रयोग किया और इस काम में उन्हें समुद्र पर राज्य करने वाले अपने हथियारबंद जहाजों की श्रेष्ठता से मदद मिली। साथ ही उन्होंने एक कार्टेज आर्मेडा के माध्यम से समुद्री व्यापार पर नियंत्रण कायम किया। जमीन पर भारत और एशिया की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी किन्तु उनके मुकाबले मुट्ठी भर पुर्तगाली सैनिक समुद्र में अपनी स्थिति बनाए रखने में सफल रहे और मुगलों की जहाजरानी के लिए खतरे पैदा करके मुगल सम्राटों से भी व्यापार संबंधी छूट प्राप्त की। पुर्तगालियों ने फारस की खाड़ी में हर्मुज से लेकर मलाया में स्थित मलक्का और इण्डोनेशिया के मसाला द्वीपों तक एशिया के पूरे समुद्र तट पर अधिकार क्षेत्र बढ़ाने तथा यूरोपीय प्रतिबंधियों से अपने व्यापारिक एकाधिकार को सुरक्षित रखने के लिए लगातार लड़ाईयाँ लड़ी।

2. समुद्री डकैती और लूटपाट में भी वे पीछे नहीं रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उन्होंने धार्मिक कट्टरता पर बल देकर ईसाईकरण पर बल दिया। फलतः उन्हें विरोध का भी सामना करना पड़ा। कुल मिलाकर उनके व्यवहार के बावजूद भारत में एक सदी तक राज किया। अतः उनकी कुछ देन भी भारत में आज तक देखी जा सकती है। जैसे, प्रिंटिंग प्रेस का विकास, तंबाकू, फलों की तमाम जातियों को लाना आदि।

डच (Dutch)

डचों का आगमन निम्न प्रकार है—

1. सन् 1602 में डच ETC की स्थापना हुई और डच संसद ने एक चार्टर बनाकर कंपनी को युद्ध करने, संधियाँ करने, इलाके जीतने और किले बनाने का अधिकार दिया। डचों की खास दिलचस्पी भारत में नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया के मसाला द्वीपों में थी। अतः जल्दी ही उन्होंने पुर्तगालियों को यहाँ से खदेड़ दिया। इसी क्रम में 1623 में अंग्रेजों को हराया। उन्होंने पश्चिम भारत के गुजरात में सूरत, भड़ौच, कैम्बे, केरल के कोचीन, मद्रास के नेगपट्टनम, आंध्र के मसूलीपत्तनम, बंगाल के चिनसूरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के आगरा में भी व्यापारिक केन्द्र बनाया।
2. डचों ने भारत से भारतीय वस्त्रों के निर्यात को सर्वप्रमुख बनाया। व्यापारिक प्रतिद्वंदिता की वजह से अंग्रेजों के साथ इनका संघर्ष हुआ। फलतः 1659 में **बेदारा के युद्ध** में वे पराजित हुए और भारत में अंग्रेजों के लिए उनकी चुनौती समाप्त हो गई।

अंग्रेज (English)

अंग्रेजों का आगमन निम्न प्रकार है—

1. एशियाई व्यापार पर अंग्रेजों की लालच भरी निगाहें जमी हुई थी। पुर्तगालियों की सफलता तथा मसाले, मलमल, मोती, सोने से भरे उनके जहाजों से प्राप्त मुनाफों ने अंग्रेजी व्यापारियों की आँखें चकाचौंध कर दी। वे भी इस मुनाफे देने वाले व्यापार में शामिल होने के लिए बेचैन हो गए। फलतः सन् 1599 में EIC की स्थापना की गई जिसे महारानी ने पूर्व के साथ व्यापार करने का एकमात्र अधिकार दे दिया।
2. अंग्रेज कंपनी ने सन् 1608 में भारत के पश्चिमी तट सूरत पर व्यापारिक केन्द्र खोलने का प्रयास किया। इसी क्रम में अंग्रेज राजदूतों को मुगल दरबार में भेजकर व्यापारिक छूट वाले शाही फरमान को प्राप्त किया गया। सन् 1661 में पुर्तगालियों से बंबई प्राप्त हुआ। अतः गोवा दमन दीव को छोड़कर पुर्तगालियों के हाथ से भारत के सारे क्षेत्र निकल गए। तो दूसरी तरफ इण्डोनेशिया के द्वीपों में मसाला व्यापार के मुद्दे पर डच कंपनी के साथ संघर्ष शुरू हुआ और अंततः डचों को भी पराजित कर उन्होंने अपनी स्थिति सर्वोच्च बनाई।

फ्रांस (French)

फ्रांसीसियों का आगमन निम्न प्रकार है—

1. फ्रांस भी एशियाई व्यापार के प्रति आकर्षित था अतः फ्रांसीसी सरकार के माध्यम से एक व्यापारिक कंपनी की स्थापना हुई। जिसने सन् 1668 में भारत में पूर्व में अपनी व्यापारिक चौकी स्थापित की। इस समय तक भारत में अंग्रेजों की स्थिति मजबूत हो गई थी। फलतः फ्रांसीसी कंपनी के साथ उनका टकराव आरंभ हो गया। दूसरी बात यह है कि यूरोप में आंग्ल फ्रांसीसी संबंध के अनुरूप भारत में उनके संबंध कायम हुए। इसी क्रम में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच तीन कर्नाटक युद्ध लड़े गए जिसमें अंततः अंग्रेज विजयी रहे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. आंग्ल फ्रांसीसी संघर्ष एवं फ्रांसीसियों के पराजय के कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the Anglo-French conflict and the causes for the defeat of the french.

उत्तर

आंग्ल फ्रांसीसी संघर्ष
(Anglo-French Conflict)

आंग्ल फ्रांसीसी संघर्ष को कर्नाटक युद्धों के नाम से भी जाना जाता है। ये भारत के कर्नाटक प्रदेश में लड़े गए। जहाँ तक कर्नाटक युद्ध-1 के कारण का संबंध है, यह युद्ध यूरोप में फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के बीच आपसी संघर्ष का भारतीय परिणाम था। वस्तुत: पहले भी भारतीय भूमि पर विदेशी शक्तियों में संघर्ष होते थे, परंतु तब मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ता के कारण यह संघर्ष प्राय: समुद्र तट तक सीमित रहते थे। परन्तु ज्यों ही मुगल साम्राज्य का पतन हुआ ये लोग यूरोप में युद्ध छिड़ने पर भारत में भी लड़ने लगे। इस स्थिति को देखकर वाल्टेयर ने ठीक ही कहा था "हमारे देश (यूरोपीय) दागे जाने वाली तोप का पहला गोला अमेरिका और एशिया की सारी तोपों में चिंगारी का काम करता है।"

प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746-48) [First Carnatic war (1746-1748)]

यह युद्ध यूरोप में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध के साथ शुरू हुआ। इस युद्ध का कारण यह था कि अंग्रेजी नौसेना ने फ्रांसीसी जलयानों को अपने कब्जे में ले लिया था। अत: भारत में फ्रांसीसी गर्वनर डूप्ले ने अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए अन्य फ्रांसीसी बेड़ों से सहायता प्राप्त की। फ्रांसीसी सेना ने उसका विरोध किया तो फिर डूप्ले ने यह आश्वासन दिया कि वह मद्रास को जीतकर नवाब को दे देगा। किन्तु मद्रास पर नियंत्रण के बावजूद डूप्ले ने वादा पूरा नहीं किया अत: कर्नाटक के नवाब ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। नवाब की सैन्य संख्या फ्रांसीसियों की तुलना में कई गुना ज्यादा थी। परंतु युद्ध में नवाब की पराजय हुई। इसी समय यूरोप में 1748 में **एक्स ला शेपेल** की संधि के साथ अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच समझौता हो गया। अत: मद्रास अंग्रेजों को वापस मिल गया और फ्रांसीसियों को अमेरिका में कुछ क्षेत्र मिला।

महत्त्व (Importance)

यद्यपि प्रथम कर्नाटक युद्ध का संबंध भारतीय राजनीति से सीधा नहीं था किन्तु फिर भी इस युद्ध ने भारतीय राजनीति के खोखलेपन एवं सैनिक दुर्बलता को यूरोपीय शक्तियों के समक्ष स्पष्ट कर दिया। कर्नाटक का नवाब एक व्यापारिक कंपनी को युद्ध करने से रोकने में असफल रहा। नवाब की हार ने यूरोपीय शक्तियों को भारतीय राजनीति में ज्यादा दखल देने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी संदर्भ में यह कहा गया कि "इसने डूप्ले के प्रयोग एवं क्लाइव के लिए एक रंगमंच खड़ा कर दिया अब यूरोपीय शक्तियाँ सिर्फ व्यापारी न रहकर राजनीतिक शक्ति की दावेदार भी बन गई थी।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (Second Carnatic War)

यह युद्ध भारत में कर्नाटक के हैदराबाद के उत्तराधिकारियों के बीच संघर्ष के संदर्भ में अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच हुआ। इस युद्ध में फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले ने महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त की और हैदराबाद तथा कर्नाटक पर फ्रांसीसियों का प्रभाव स्थापित किया। फलत: अंग्रेज आशंकित हो उठे। उन्होंने भी अवसर तलाश कर उत्तराधिकार के मुद्दे में हस्तक्षेप किया जब कर्नाटक के मुहम्मद अली को समर्थन दिया। इस कर्नाटक युद्ध में क्लाइव की कूटनीतिक क्षमता सामने आयी और उसने फ्रांसीसियों का ध्यान त्रिचनापल्ली से हटाने के लिए चंदा साहब की राजधानी अर्काट पर घेरा डाल दिया। एक तरीके से चंदा साहब फ्रांसीसियों का पक्षधर था और इसकी हत्या अंग्रेजों ने कर दी। इस पराजय के साथ डूप्ले की राजनीतिक महत्वकांक्षा और भाग्य का भी अंत हो गया और उसे फ्रांस सरकार ने वापस बुला लिया।

तृतीय कर्नाटक युद्ध (Third Carnatic War)

सप्तवर्षीय युद्ध के कारण भारत में भी दोनों शक्तियाँ एक दूसरे से भिड़ गई। अंतत: वांडीवाश की लड़ाई में अग्रेजों ने फ्रांसीसियों को बुरी तरह पराजित किया और फ्रांसीसियों की चुनौती सदैव के लिए समाप्त कर दी। इस युद्ध ने भारत में अंग्रेजों की सर्वश्रेष्ठता को अंतिम रूप से प्रतिष्ठित किया। अब अंग्रेज सही अर्थों में भारत के भाग्यविधाता बन गए।

फ्रांसीसियों के पराजय के कारण (Causes for the Defeat of the Franch)

फ्रांसीसियों के पराजय के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. **फ्रांस की यूरोप में पराजय**—फ्रांस की यूरोप में इंग्लैण्ड के हाथों पराजय, भारत में फ्रांसीसियों की असफलता का मुख्य कारण बनी। ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध में फ्रांस की पराजय ने भारत की प्रथम कर्नाटक युद्ध की विजय को पराजय

में बदल दिया और एक्स ला शेपेल की संधि के अनुसार फ्रांसीसियों को भारत में अंग्रेजों से जीते हुए प्रदेश भी लौटाने पड़े। यद्यपि फ्रांस की उपनिवेश स्थापना की रुचि भारत की अपेक्षा अमेरिका में कहीं अधिक थी तथा फ्रांस ने अपनी सम्पूर्ण जल-थल शक्ति वहाँ पर लगा रखी थी, परंतु दुर्भाग्यवश उसे वहाँ भी असफलता का मुँह देखना पड़ा। यदि यह भी मान लिया जाए कि डूप्ले भारत में रहता और वह सम्पूर्ण भारत से अंग्रेजों को धकेल देता तब भी यूरोप में फ्रांस, इंग्लैण्ड से पराजित होने के बाद विवश होकर फ्रांसीसियों को भारत में सारे प्रदेश अंग्रेजों को वापस लौटाने पड़े।

2. **फ्रांस की दुर्बल नौसेना**—फ्रांसीसियों की नौसेना अत्यंत कमजोर थी तो दूसरी तरफ अंग्रेज एक बड़ी सामुद्रिक शक्ति से युक्त थे। स्मिथ ने कहा कि "न तो बुस्सी और न डूप्ले अलग-अलग रूप में और न दोनों मिलकर ऐसी सरकार के विरुद्ध सफलता प्राप्त कर सकते थे जिसका समुद्री मार्ग तथा गंगा घाटी पर अधिकार हो, फ्रांसीसी असफलता के लिए डूप्ले, लाली तथा छोटे व्यक्तिगत दोषों पर बल देना व्यर्थ है। न तो सिकंदर महान और न नेपोलियन ही भारत के साम्राज्य को जीत सकते थे यदि वे पॉण्डिचेरी को अपना केन्द्र बनाकर चलते और ऐसी शक्ति से उलझते जिसका बंगाल और समुद्र दोनों पर अधिकार था।"
3. **फ्रांसीसी कंपनी की आर्थिक निर्बलता**—फ्रांसीसी कंपनी स्वतंत्र व्यापारिक कंपनी नहीं थी। इसका निर्माण सरकार के द्वारा हुआ था। अत: कंपनी के अधिकारियों को व्यापार के लाभ की बहुत अधिक चिंता नहीं थी। इसके विपरीत अंग्रेजी कंपनी स्वतंत्र व्यापारिक कंपनी थी और इसने व्यापारिक रुचि बहुत ज्यादा दिखलाई। यही वजह है कि ब्रिटिश कंपनी का व्यापार फ्रांसीसी की तुलना में तीन गुना था।
4. **फ्रांस की सरकार की दोषपूर्ण नीति**—फ्रांस, यूरोप एवं USA (यू०एस०ए०) में लगातार उलझा रहा। इसके कारण भारत में उसने उपेक्षापूर्ण नीति अपनायी। फलत: फ्रांसीसियों के असफलता का एक कारण बनी।
5. **फ्रांसीसियों के पास सैनिक स्थलों का अभाव**—अंग्रेजों के पास कलकत्ता, मद्रास और बम्बई प्रमुख सैनिक स्थल उपलब्ध थे। इन सैनिक स्थलों की सहायता से साम्राज्य विस्तार का कार्य सुचारू रूप से तथा सफलतापूर्वक चलाया गया। जबकि फ्रांसीसियों के पास नाममात्र का पॉण्डीचेरी था। इस दृष्टि से अंग्रेज कम्पनी की स्थिति फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में अधिक सुरक्षित व अच्छी थी।
6. **फ्रांसीसी अधिकारियों में अनुशासन व एकता का अभाव**—फ्रांसीसी अधिकारी परस्पर झगड़ते थे। उनमें अनुशासन का अत्यंत अभाव था, जिसके फलरूवरूप फ्रांसीसियों को असफलता का मुँह देखना पड़ा। इसके कई उदाहरण मिल सकते हैं। जैसा कि डूप्ले की इच्छा के विरुद्ध ला-बर्डिनो ने रिश्वत के बदले मद्रास अंग्रेजों को लौटा दिया तथा डूप्ले को सहायता पहुँचाने के स्थान पर समुद्री तटों को असुरक्षित छोड़ दिया। काउन्ट-लाली की हठधर्मी से हैदराबाद से फ्रांसीसियों का प्रभाव समाप्त हो गया। इसके विपरीत अंग्रेज पदाधिकारियों में अनुशासन और संगठन था, जो उनकी सफलता का कारण बना।

प्र.3. बंगाल पर ब्रिटिश नियंत्रण एवं प्लासी के युद्ध के कारण एवं परिणामों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of British control of Bengal and the causes and the result of the battle of Plassey.

उत्तर

बंगाल पर ब्रिटिश नियंत्रण
(British Control of Bengal)

बंगाल पर ब्रिटिश नियंत्रण को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

1. दक्षिण के साथ-साथ अंग्रेजों ने बंगाल में भी अपने प्रभाव को जमाने का प्रयास किया। भारत के पूर्वी प्रांतों में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रदेश सबसे समृद्ध थे। अत: बंगाल पर नियंत्रण स्थापित करने में अन्य यूरोपीय शक्तियों की उपस्थिति करना ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के अनुकूल था। बंगाल में अन्य यूरोपीय शक्तियों की उपस्थिति भी बहुत प्रभावी नहीं थी। साथ ही बंगाल पर मुगल नियंत्रण भी प्राय: ढीला ढाला ही रहा। बंगाल में मराठों के समान चुनौती देने वाली क्षेत्रीय शक्ति उपस्थित नहीं थी। इस प्रकार बंगाल की आर्थिक समृद्धि एवं राजनीतिक अस्थिरता ने अंग्रेजों को बंगाल पर नियंत्रण जमाने के लिए प्रेरित किया।

TOUCH 'n' PASS

2. बंगाल पर ब्रिटिश नियंत्रण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया का परिणाम था। जिसकी शुरुआत सन् 1651 में हुगली में एक ब्रिटिश व्यापारिक कंपनी की स्थापना के रूप में हुई थी और जो 1765 में बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के साथ पूर्ण हुई।
3. बंगाल में औरंगजेब के समय से ही मुर्शीद कुली खाँ गवर्नर के रूप में मौजूद था और औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् लगभग स्वतंत्र स्थिति में राज्य कर रहा था। मुगल शासक समय-समय पर अंग्रेजों को बंगाल में व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करते थे जिन्हें बंगाल के गवर्नर मान्यता देते थे। इस क्रम में फर्रूखशियर द्वारा अंग्रेजों को दिया गया शाही फरमान प्रमुख था। इस फरमान का अंग्रेज व्यापारी प्राय: दुरुपयोग करते थे, जिससे नवाब को आर्थिक क्षति होती थी।
4. 1740-56 बंगाल का नवाब अलीवर्दी खां था, जो योग्य प्रशासक था उसने अंग्रेजों को कलकत्ता में और फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर में किलेबंदी नहीं करने दी। अलीवर्दी खां ने अंग्रेजों की तुलना मधुमक्खी के छत्ते से की।
5. 1756 ई० में बंगाल की नवाबी सिराजुद्दौला को प्राप्त हुई। किन्तु नवाब की गद्दी के अन्य दावेदार भी थे जिनमें शौकतजंग एवं घसीटी बेगम प्रमुख थी। इस तरह बंगाल में एक सिराजुद्दौला विरोधी गुट का आविर्भाव हुआ। अंग्रेजों ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। उन्होंने फ्रांस से युद्ध की संभावना का बहाना बनाकर सैनिक किलेबंदी आरंभ कर दी और नवाब विरोधी तत्त्वों को आश्रय प्रदान किया। जिसमें दीवान राजवल्लभ एवं उसका पुत्र कृष्णवल्लभ प्रमुख थे। व्यापारी अमीचंद भी लेन-देन में नवाब को अत्यधिक हानि पहुँचाकर अंग्रेजों के पास चला गया था, इस प्रकार अंग्रेजों की गतिविधियों ने सिराजुद्दौला को नाराज कर दिया। अत: सिराजुद्दौला के लिए अपने विरोधी तत्त्वों को कुचलना आवश्यक था।
6. सिराज ने 1756 में घसीटी बेगम, शौकतजंग को पराजित किया और कलकत्ता के किले को घेर लिया। इसी समय 20 जनवरी, 1756 को ब्लैकहोल दुर्घटना घटी थी। सिराज की उस सफलता से अंग्रेज बौखला गए और उनके आर्थिक हितों पर चोट पहुँची। अत: क्लाइव के नेतृत्व में जनवरी, 1757 में पुन: कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौला को पराजित कर उसके साथ 9 फरवरी, 1757 को अलीनगर की संधि की गई।
7. अलीनगर की संधि से अंग्रेजों को बंगाल, बिहार, उड़ीसा में बिना चुंगी दिए व्यापार करने की अनुमति मिली। सिक्के ढालने और कलकत्ता की किलेबंदी रखने का अधिकार अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। इस प्रकार बंगाल में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सामांतर सत्ता स्थापित हो गई। यह संधि सिराजुद्दौला के लिए अपमानजनक थी। इसी बिन्दु पर यह सवाल उठता है कि सिराजुद्दौला जैसे शासक ने इस अपमानजनक संधि को क्यों स्वीकार किया। वस्तुत: सिराज को उसके कर्मचारियों ने धोखा दिया और अंग्रेजों के विरुद्ध समय पर सैनिक सहायता नहीं भेजी। इस तरह सिराज को अपने कर्मचारियों की वफादारी पर संदेह हो गया। दूसरी और अहमदशाह अब्दाली दिल्ली तक आ चुका था, सिराज को उसके आक्रमण का भय था इसलिए उसने अंग्रेजों से संधि करना उचित समझा।
8. अब ब्रिटिश ने बंगाल में अपना नियंत्रण बढ़ाने के लिए प्रमुख प्रतिद्वन्दी शक्ति फ्रांसीसियों के विरुद्ध कार्यवाही की और चंद्रनगर पर कब्जा कर फ्रांसीसियों की शक्ति को नष्ट कर दिया और अब बंगाल में अपनी सत्ता को जमाने के लिए उन्हें एक कठपुतली नवाब की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति प्लासी के युद्ध से पूरी हुई।

प्लासी का युद्ध
(Battle of Plassey)

कारण (Causes)

प्लासी के युद्ध के कारण निम्नलिखित हैं—

1. अंग्रेजों द्वारा नवाब पर अलीनगर की संधि के उल्लंघन का आरोप।
2. अंग्रेजों का शत्रुतापूर्ण व्यवहार एवं नवाब के विरोधियों को अपने यहाँ शरण देना।
3. अंग्रेज बंगाल पर अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नवाब सिराजुद्दौला को पदच्युत कर अपना मनपसंद मोहरा बंगाल की गद्दी पर बैठाना।
4. **गतिविधियाँ**—अंग्रेजों ने सिराज के विरुद्ध मीरजाफर से गुप्त समझौता किया और षड्यंत्र कर नवाब के सेनापति रायदुर्लभ, जगतसेठ, अमीचंद व्यापारी को अपनी और मिला लिया। प्लासी के मैदान में वास्तव में युद्ध हुआ ही नहीं

क्योंकि नवाब के सैन्य अधिकारियों ने उसके साथ विश्वासघात किया और मैदान में मूकदर्शक की तरह खड़े रहे। स्वाभाविक रूप से यहाँ अंग्रेजों की विजय हुई।

प्लासी के युद्ध में नवाब की हार के कारण प्लासी—प्लासी के युद्ध में नवाब की हार के कारण निम्नलिखित हैं—

1. नवाब का व्यक्तित्व उसकी हार का प्रमुख कारण था। मीरजाफर के षड्यंत्र को जानते हुए भी नवाब ने उसे तथा उसके अन्य विश्वासघाती साथियों को गिरफ्तार नहीं किया। युद्ध के मैदान में भी वह घबराकर भाग गया। उसने अपनी सेना को धैर्य बंधाया होता तो उसे सफलता प्राप्त हो सकती थी। वह एक कुशल सेनापति नहीं था।
2. मीरजाफर व अन्य अधिकारियों ने उसके साथ विश्वासघात किया।
3. युद्ध में मीरमदान की मृत्यु ने नवाब के हौसले पस्त कर दिये।
4. नवाब की सेना शीघ्रता के साथ आगे नहीं बढ़ सकती थी।
5. नवाब की तोपें बहुत भारी थी। अतएव उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में कठिनाई होती थी। भारतीय बन्दूकों की मार अच्छी नहीं थी। इसके विपरीत अंग्रेजों की तोपें हल्की थीं और बन्दूकें दूर तक मार कर सकती थी। नवाब की तोपें व बन्दूकें व गोला-बारूद वर्षा के कारण भीग जाने से प्रभावहीन हो गए थे।
6. नवाब ने हाथियों का प्रयोग करके गलती की।
7. नवाब के घुड़सवार अंग्रेजों द्वारा प्रशिक्षित पैदल सैनिकों के सामने निकम्मे सिद्ध हुए।
8. मेजर किलपैट्रिक के अनुसार युद्ध आरम्भ होते समय नवाब के अधीन फ्रांसीसी तोपची ऊँचे मैदान से गोलाबारी करके अंग्रेजों पर दबाव डाल सकते थे, किन्तु कुछ समय बाद उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया। संभवत: बंगाली अधिकारियों के विश्वासघात के कारण उन्हें नवाब की सफलता में सन्देह होने लगा था।
9. क्लाइव ने छल-कपट व नीति निपुणता का प्रदर्शन किया। अदूरदर्शी सिराजुद्दौला, क्लाइव की कुटिल नीति और षड्यंत्र के सामने टिक नहीं सकता था।
10. भारतीयों की हार का एक महत्त्वपूर्ण कारण उनकी नैतिक दुर्बलता थी। उस समय में भारतीय राजनीति में स्वार्थ, षड्यंत्र तथा विश्वासघात का बोलबाला था। अतएव वे एक ऐसी कौम के सामने नहीं ठहर सकते थे जिसमें देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी।

प्लासी के युद्ध का महत्त्व एवं परिणाम
(Result and the Importance of the Battle of Plassey)

प्लासी के परिणामों को लेकर इतिहासकारों ने कई स्थापनाएँ की हैं—

1. मैलेसन की के अनुसार "प्लासी का युद्ध भारत के निर्णायक युद्धों में से एक था।"
2. ताराचंद के शब्दों में "प्लासी के युद्ध से परिणामों की लंबी शृंखला शुरू हुई जिसने भारत का रूख बदल दिया।"
3. के०एम० पनिक्कर के अनुसार "प्लासी एक सौदा था जिसमें बंगाल के कुछ धनी स्वार्थी लोगों ने अपना देश अंग्रेजों को बेच दिया।"

राजनैतिक महत्त्व—प्लासी के युद्ध में राजनैतिक महत्त्व निम्न प्रकार हैं—

1. मीरजाफर को नवाब बनाने से बंगाल में संरक्षित राज्य स्थापित हुआ, उसी से भारत में ब्रिटिश राज्य का निर्माण संभव हो सका।
2. बंगाल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई। अंग्रेज, राजा निर्माता (King maker) के रूप में जाने गए।
3. प्लासी की विजय ने EIC के स्वरूप में परिवर्तन ला दिया। अब वह केवल व्यापारिक कंपनी न रहकर राजनीतिक सत्ता हो गई।
4. अंग्रेजों को भारतीय राजनीति की दुर्बलताओं के विषय में सही ज्ञान हो गया। वे जान गए थे कि स्वार्थी असंतुष्ट अधिकारियों एवं व्यापारियों के साथ षड्यंत्र कर अपने साम्राज्य का विस्तार कर सकते हैं।
5. अंग्रेजों के लिए साम्राज्य विस्तार का मार्ग खुल गया। बंगाल एक उपजाऊ एवं समृद्धशाली प्रदेश था। दिल्ली से दूर होने के कारण बंगाल अन्य शक्तियों के प्रहार से दूर रह सकता था।
6. इस युद्ध ने मुगल साम्राज्य की दुर्बलता को प्रकट कर दिया। मुगल सम्राट अपने अधीन एक सूबेदार को एक विदेशी व्यापारिक संस्था द्वारा हटाए जाने के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सका।

TOUCH 'n PASS

7. बंगाल से डचों और फ्रांसीसियों की शक्ति को अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया जो भारत में उनके लिए चुनौती बन सकती थी।

सैनिक महत्त्व—प्लासी के युद्ध में सैनिकों का महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. प्लासी में अंग्रेजों की एक छोटी प्रशिक्षित सेना ने एक बड़ी भारतीय सेना के रहते विजय प्राप्त की। इससे यह सिद्ध हो गया कि भारतीय सेना एक भीड़ है जिसे आसानी के साथ तितर-बितर किया जा सकता है।
2. मीरजाफर ने अंग्रेजों को बारूद की खानों पर एकाधिकार प्रदान किया। इससे अंग्रेजों का तोपखाना और शक्तिशाली हुआ।

आर्थिक महत्त्व—प्लासी के युद्ध में आर्थिक महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. प्लासी युद्ध के पश्चात् बंगाल की वह लूट आरंभ हुई जिसने भारत के सबसे धनी प्रदेश को निर्धन बना दिया। इस लूट में सिर्फ अंग्रेज ही शामिल हुए।
2. मीरजाफर ने ₹ 3 करोड़ कंपनी के अधिकारियों को दिए अगले आठ वर्षों में कंपनी ने 15 करोड़ से अधिक का लाभ कमाया। कंपनी को बंगाल, बिहार, उड़ीसा में मुफ्त व्यापार का निर्विरोध अधिकार प्राप्त हुआ एवं कलकत्ता के समीप 24 परगना की जमींदारी भी प्राप्त हुई।
3. बंगाल के संसाधनों का प्रयोग करके अंग्रेजों ने अपने प्रतिद्वन्दियों की शक्ति को नष्ट किया।
4. आर्थिक दृष्टि से प्लासी युद्ध के पश्चात् एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ जिसमें राज्य विस्तार व्यापार के साथ जुड़ गया एवं भारत की दासता का वह युग आरंभ हुआ जिसमें भारत का आर्थिक व नैतिक शोषण अत्यधिक हुआ। 1757 से पहले बंगाल का 74% व्यापार ब्रिटेन से आयायित सोने-चाँदी से होता था, प्लासी के पश्चात् सोना-चाँदी का निर्यात अब चीन को होने लगा फलतः बंगाल को आर्थिक क्षति हुई।

नैतिक महत्त्व—प्लासी के युद्ध में नैतिक महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. षड्यंत्र द्वारा प्राप्त सफलता से उत्साहित अंग्रेजों ने अपने कुचक्रों में वृद्धि की।
2. भारतीयों की विश्वासघाती प्रवृत्ति का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने अपने प्रभाव का विस्तार किया।
3. अंग्रेजों ने 'फूट डालो-राज करो' नीति की सफलता को देखकर भविष्य में इसे अपनाया।

निष्कर्ष—प्लासी के युद्ध का निष्कर्ण निम्न प्रकार है—

1. प्लासी की विजय ने बंगाल में अंग्रेजों का प्राधान्य स्थापित कर दिया किन्तु प्लासी में इस बात का निर्णय नहीं हुआ कि बंगाल में वास्तविक शांसक कौन है? नवाब और अंग्रेजों में इसके लिए एक संघर्ष होना स्वाभाविक था। अतः बक्सर के युद्ध के बीज प्लासी में बोए गए।
2. चूँकि इसमें विजय विश्वासघात के माध्यम से प्राप्त की गई थी अतः सैनिक दृष्टिकोण से इसका महत्त्व कम रहा।
3. अब बंगाल से धन की निकासी शुरू हुई। 1757 से पूर्व अंग्रेज कंपनी भारत से सामान खरीदने के बदले सोना व चाँदी का आयात करती थी। 1757 के पश्चात् वह बंगाल के उपलब्ध धन से सामान ले जाने लगी। इस प्रकार बंगाल की लूट आरंभ हुई।

प्लासी के बाद—प्लासी के युद्ध के बाद का परिणाम निम्न प्रकार है—

1. प्लासी क पश्चात् मीरजाफर बंगाल का नवाब बनाया गया जिसने 57-60 तक बंगाल में शासन किया। इसके समय राजकोष रिक्त हो गया, प्रशासनिक अव्यवस्था फैल गई। चूँकि मुगल शहजादे अलीगौहर का बंगाल पर आक्रमण का अंदेशा था अतः मीरजाफर अंग्रेजों पर पूरी तरह निर्भर था।
2. कंपनी के किस्तों का भुगतान न कर पाने की स्थिति से नवाब को बर्दवान, नादिया, हुगली के क्षेत्रों का राजस्व कंपनी को सौंपना पड़ा। किन्तु इससे अंग्रेजों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही थी। अतः अंग्रेज मीरजाफर के स्थान पर किसी अन्य कठपुतली को बैठाना चाह रहे थे। यह मौका उन्हें 1760 में मिला जब उसके पुत्र मीरन की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार का षड्यंत्र होने लगा।
3. अंग्रेजों ने मीरजाफर को गद्दी छोड़ने के लिए बाध्य किया और उसके दामाद मीरकासिम को बंगाल का नवाब बनाया। इसे 1760 ई० की 'रक्तहीन क्रांति' का नाम दिया गया। किन्तु इसे क्रांति कहना उचित नहीं है क्योंकि सर्वप्रथम तो इसमें बंगाल की जनता की कोई भूमिका नहीं थी। दूसरी बात, राजनीतिक क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। एक कठपुतली के बदले दूसरे कठपुतली नवाब की नियुक्ति की गई और बंगाल की वास्तविक शक्ति तो उसी के पास रही जिसके पास पहले थी और वह शक्ति थी, अंग्रेज।

TOUCH 'n' PASS

4. मीरकासिम ने कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर, चटगाँव के क्षेत्र दिए साथ ही एक बड़ी धनराशि दी। इस तरह उसने अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति मान ली। वस्तुत: मीरकासिम एक कुशल और महात्वाकांक्षी सेनानायक था। उसने बंगाल के आर्थिक और प्रशासनिक सुदृढ़ीकरण का प्रयास किया। सेना को प्रशिक्षित करने के लिए फ्रांसीसियों की नियुक्ति की गई। अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त होने के लिए राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर स्थानांतरित की। अंग्रेजी संरक्षण प्राप्त अनुशासनहीन जमींदार रामनारायण के विरुद्ध भी कासिम ने दमनात्मक कारवाई की। फलत: अंग्रेजों और मीरकासिम के संबंध कटु होते चले गए।
5. अंग्रेज व्यापारी अपने दस्तक (Pass) का दुरूपयोग करते थे इससे नवाब के राजस्व को भारी नुकसान हो रहा था। अत: मीरकासिम ने समस्त आंतरिक व्यापार को करों से मुक्त कर दिया। इस कदम से अंग्रेज अत्यधिक क्रोधित हुए क्योंकि यह उनके विशिष्ट अधिकारों पर कुठाराघात था। अत: मीरकासिम एवं अंग्रेजों के मध्य 1763 में संघर्ष छिड़ गया। नवाब भाग कर अवध पहुँचा जहाँ नवाब शुजाउद्दौला एवं मुगल संग्रह शाह आलम के साथ कंपनी के विरुद्ध गठबंधन किया। यही बक्सर के युद्ध की पृष्ठभूमि थी।

प्र.4. अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियों एवं इनकी सफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the conditions favourable to the British and the causes of their success.

उत्तर

अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियाँ
(Conditions Favourable to the British)

केन्द्रीय सत्ता का अभाव (Lack of Central Authority)

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का केन्द्रीकृत स्वरूप छिन्न भिन्न हो गया, परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में नए क्षेत्रीय राज्यों का उद्भव हुआ, यथा—हैदराबाद, अवध, मैसूर बंगाल इत्यादि ये क्षेत्रीय राज्य अपने संकीर्ण हितों से परिचालित थे। फलत: अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट होकर चुनौती पेश नहीं कर सके।

1. **आर्थिक दुर्बलता**—नवीन क्षेत्रीय राज्यों के उदय से एक तरफ तो मुगल सत्ता के राजस्व स्रोतों में कमी आई तो दूसरी तरफ स्वयं ये क्षेत्रीय शक्तियाँ भी वित्तीय स्रोत के विकास के प्रति उदासीन रहीं। मराठे चौथ और सरदेशमुखी से अपने राजस्व की पूर्ति करते थे। एक सुदृढ़ आर्थिक आधार के अभाव ने क्षेत्रीय राज्यों की राजनीतिक व्यवस्था को भी लाचार बना दिया। जबकि दूसरी तरफ अंग्रेज, जो कि ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी के रूप में आए थे, उन्हें अपने गृहदेश से पर्याप्त वित्तीय सहायता मिल रही थी।
2. **दूरदर्शिता का अभाव**—क्षेत्रीय राज्यों में आपसी संघर्ष था और वे अंग्रेजों को महज एक व्यापारी ही समझते थे। फलत: एक दूसरे के विरुद्ध अंग्रेजों का सहयोग व समर्थन किया। जैसे मराठों को प्रतिसंतुलित करने के लिए अंग्रेजों ने निजाम के साथ संधि की थी। इस अदूरदर्शिता का लाभ अंग्रेजों ने उठाया और इन सभी को आपस में लड़ाकर कोई सशक्त गठबंधन बनने नहीं दिया। फिर एक-एक कर सभी क्षेत्रीय शक्तियों को पराजित किया।

अंग्रेजों की सफलता के कारण (Causes for the success of the British)

अंग्रेजों की सफलता के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. **सामाजिक-धार्मिक विभेद**—सामाजिक-धार्मिक दृष्टि से भारत विभिन्न वर्गों, जातियों और संप्रदायों में विभक्त था। जिसके कारण उनकी वफादारी केवल अपनी जाति एवं क्षेत्र तक सीमित रह जाती थी। फलत: ब्रिटिश के विरुद्ध वे एकजुट होकर बड़ा प्रतिरोध नहीं कर सके।
2. **शासक वर्ग का नैतिक पतन**—भारतीय शासक वर्ग प्राय: विलासी एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में विश्वास रखते थे। ये स्वार्थी, षड्यंत्रकारी जैसे चारित्रिक अवगुणों से युक्त थे। यद्यपि कुछ शासक नैतिक चरित्रों से युक्त थे, किन्तु प्राय: अंग्रेजों का मुकाबला उन भ्रष्ट, स्वार्थी शासकों से हुआ जिन्होंने अंग्रेजों के समक्ष कोई कड़ी चुनौती प्रस्तुत नहीं की। ऐसे प्रतिद्वन्द्वियों से विजय प्राप्त करना अंग्रेजों के लिए बड़ी आसान बात थी।
3. **योग्य नेतृत्व**—भारतीयों की तुलना में अंग्रेजों को अपेक्षाकृत योग्य नेतृत्व प्राप्त हुआ। वस्तुत: हैदरअली, टीपू, महाद जी सिंधिया, रणजीत सिंह जैसे प्रमुख शासक योग्य थे, परन्तु अंग्रेजों के प्रत्यक्ष संघर्ष के अवसर पर टीपू के अतिरिक्त इनमें से कोई भी भारतीयों को नेतृत्व प्रदान करने के लिए मौजूद नहीं था और इनके उत्तराधिकारी भी बहुत योग्य नहीं रहे। जबकि अंग्रेजों को लॉर्ड वेलेज्ली, हेस्टिंग्स, क्लाइव, एलफिंस्टन, आउट्रम जैसे योग्य एवं कूटनीतिज्ञ प्रशासक प्राप्त थे।

TOUCH 'n' PASS

4. **नौसैनिक श्रेष्ठता**—ब्रिटिश नौसेना संपूर्ण विश्व में व्याप्त थी। इसी नौसेना की श्रेष्ठता के बल पर ब्रिटेन ने सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश का दर्जा प्राप्त किया था। भारत में भी अंग्रेजों की सफलता का यह एक प्रमुख कारण था। भौगोलिक रूप से भारत तीन तरफ से समुद्र से घिरा है। ऐसे में नौसैनिक श्रेष्ठता एक निर्णायक पहलू हो जाता है। भारतीय शक्तियों के पास नौसेना का अभाव था और अंग्रेजों की प्रतिद्वन्दी यूरोपीय शक्ति फ्रांसीसियों के पास जो नौसेना थी वह अंग्रेजों की तुलना में दुर्बल सिद्ध हुई जो भारत में उनकी पराजय का भी एक कारण बनी।
5. **अंग्रेजों का सैन्य संगठन**—अंग्रेजों के पास सैन्य संगठन और शस्त्र अत्यधिक विकसित थे। सैनिकों में अनुशासन आज्ञापालन जैसे तत्त्व प्रमुख थे। उनके पास अच्छी तोपें एवं बंदूकें थी। युद्ध पूर्व वे रणनीति बनाते थे और कूटनीति के सहारे अपनी विजय को सुनिश्चित करते थे। इनकी तुलना में भारतीयों का सैन्य संगठन कमजोर सिद्ध हुआ। यद्यपि टपू जैसे कुछ एक शासकों ने यूरोपीय पद्धति पर सैन्य संगठन करने का प्रयास किया। किन्तु इस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके।
6. **ब्रिटेन में हुए आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, राजनीतिक परिवर्तन**—16वीं सदी में हुए पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आंदोलन ने यूरोपीय व्यक्तियों की बौद्धिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रवृत्तियों तथा संगठनों में परिवर्तन करने आरंभ कर दिए थे, जिनके कारण यूरोप आधुनिक कहलाने के योग्य हुआ। इस आधुनिकता ने उसे वह शक्ति प्रदान की जिससे यूरोप विश्व के महाद्वीपों में श्रेष्ठता प्राप्त कर सका। लेनिक यूरोप में भी ब्रिटेन अन्य राज्यों से सभी क्षेत्रों में अग्रणी रहा जिसके कारण वह विश्व की श्रेष्ठ शक्ति कहलाने के योग्य था। भारत की विजय तो शक्ति के इस विस्तार का अहसास मात्र था। यूरोप में 16वीं सदी में सामंतवाद का पतन हो गया और उसका स्थान वाणिज्यवाद ने ले लिया। फलत: राज्य ने व्यापार वाणिज्य को प्रोत्साहन देने का दायित्व अपने ऊपर लिया। फलत: पूँजी का निर्माण शुरू हुआ। अब कृषि, उद्योग, व्यापार में उन्नति हुई और इसके और भी समृद्धि के लिए प्रयास आरम्भ हुआ। इसी क्रम में नवीन खोजें की गई, विदेशों से संपर्क स्थापित हुआ और इन सबने औद्योगिक क्रांति को संभव बनाया। औद्योगिक क्रांति ने कच्चे माल की माँग में वृद्धि की और तैयार माल की खपत के लिए बाजार की आवश्यकता प्रस्तुत की। फलत: नए बाजार की तलाश में नवीन देशों की ओर ब्रिटिश का प्रवेश हुआ। इसी क्रम में एशिया और अफ्रीका के विभिन्न भागों पर साम्राज्यवादी विस्तार की प्रक्रिया शुरू हुई। ब्रिटेन इस साम्राज्यवादी विस्तार की प्रक्रिया में अग्रणी था। उसने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति करने के लिए व्यापारी के रूप में भारत में प्रवेश किया और अंतत: अपने राज्य निर्माण की प्रक्रिया को पूरा किया।
   भारत में 18वीं सदी में भी सामंतवादी व्यवस्था थी। यह विडम्बना ही है कि जब यूरोप पूँजीवादी परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था तो भारत में उस समय भी शासन व्यवस्था सामाजिक स्थिति, अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था के सामंती स्वरूप में कोई परिवर्तन न हो सका। इसलिए A.R. Desai का यह कहना सही है कि "ब्रिटेन द्वारा भारत की विजय एवं आधुनिक देश की सामंतवादी देश पर विजय थी।"
   ब्रिटेन एक आधुनिक देश इसलिए बना क्योंकि उसने आर्थिक परिवर्तन करते हुए अन्य परिवर्तनों को भी ग्रहण कर लिया। आर्थिक क्षेत्र में जहाँ ब्रिटेन ने पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित की वहीं शासन में केन्द्रीभूत राज्य की व्यवस्था को भी स्थापित कर लिया। सामाजिक व्यवस्था में मध्यवर्ग का निर्माण हो जाने से बौद्धिक प्रगति भी कर ली। आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। ये सभी कुछ देश को आधुनिक बनाने को पर्याप्त थे जबकि भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। इस कारण जब ब्रिटेन ने भारत की विजय की उस समय वह पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत एक शक्तिशाली आधुनिक देश था जबकि भारत एक मध्ययुगीन सामंतवादी देश था। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन द्वारा भारत की विजय कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। वस्तुत: यह एक साम्राज्यवादी देश की विजय थी जिस प्रक्रिया की शुरुआत वास्कोडिगामा के भारत आगमन से शुरू हुई थी।

प्र.5. मराठों पर ब्रिटिश नियंत्रण की विवेचना कीजिए।

Analyse the British Control over the Marathas

उत्तर

मराठों पर ब्रिटिश नियंत्रण
(British Control over the Marathas)

मुगल साम्राज्य के पतन का लाभ उठाकर मराठे और अंग्रेज अपने-अपने क्षेत्रों में प्रभावशाली हो रहे थे। बंगाल पर नियंत्रण के पश्चात् अंग्रेज, यूरोपीय शक्तियों में अपनी सर्वोच्चता प्रमाणित कर चुके थे, तो भारतीय शक्तियों में मराठे एवं मैसूर प्रमुख थे।

TOUCH 'n' PASS

भारत में ब्रिटिश सर्वोच्चता के लिए यह आवश्यक था कि इन देशी शक्तियों के विरुद्ध अपनी विजय सुनिश्चित करें। इसी क्रम में अंग्रेजों ने मराठों के साथ तीन लड़ाईयाँ लड़ी और तत्पश्चात् भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।
मराठावाड़ा क्षेत्र पर नियंत्रण कंपनी के वाणिज्यिक हितों से भी परिचालित था। भारत के पश्चिमी भाग में विस्तार हेतु अधिक बड़े समुद्री क्षेत्र की उन्हें तलाश थी जहाँ से अपनी गतिविधियाँ संचालित की जा सके। सन् 1784 के बाद चीन के साथ कंपनी का कपास व्यापार हेतु इस क्षेत्र पर प्रभावी नियंत्रण जरूरी था। गुजरात से कपास को बम्बई के रास्ते चीन ले जाया जाना था और यह व्यापार तभी सुगमतापूर्वक चल सकता था जब मराठा चुनौती इस क्षेत्र से समाप्त हो जाए। वाणिज्यिक हितों को सुरक्षित रखना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था क्योंकि ब्रिटिश को यूरोप में नेपोलियन से संघर्ष करना था।

प्रथम आंग्ल मराठा संघर्ष (1775-1782 ई०) [First Anglo-Maratha War (1775-1782)]

प्रथम आंग्ल मराठा संघर्ष को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. ईस्ट इंडिया कंपनी को मराठों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का मौका तब मिला जब मराठा संघ के प्रमुख के लिए मराठों में आंतरिक संघर्ष शुरू हुआ।
2. पानीपत की लड़ाई के पश्चात् 1761 ई० में माधवराज पेशवा बना और शीघ्र ही उसने मराठा शक्ति का पुनर्गठन कर दिया। अत: अंग्रेजों के लिए मराठे चिन्ता का कारण बने।
3. 1772 ई० में पेशवा माधवराज प्रथम की मृत्यु के साथ मराठों में गृह-कलह आरम्भ हो गया। उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा बना परन्तु 1773 ई० में चाचा रघुनाथ राव ने उसकी हत्या कर स्वयं को पेशवा घोषित कर दिया।
4. नाना फड़नवीस के नेतृत्व में मराठा सरदारों द्वारा रघुनाथ राव का विरोध किया गया और उसने नारायणराव के पुत्र माधवराव को पेशवा घोषित कर दिया। ऐसी स्थिति में रघुनाथ राव भागकर अंग्रेजों की शरण में बम्बई चला गया। इस तरह अंग्रेजों को मराठा राजनीति में हस्तक्षेप करने का मनोवांछित मौका मिल गया।
5. बंबई सरकार द्वारा रघुनाथ राव से 1775 ई० में सूरज की संधि की गई। इस संधि के तहत रघुनाथ राव को सैन्य सहायता का वचन दिया। बंबई सरकार ने बदले में सैन्य खर्च, साल्सेट एवं बेसिन का क्षेत्र मिलने का सौदा हुआ।
6. कलकत्ता की ब्रिटिश काउंसिल ने इस संधि का विरोध किया और इसे नासमझी और अनुचित बताया। अत: मराठों के साथ (1776) पुरन्दर की संधि हुई, जिसके तहत अंग्रेजों ने माधवराज द्वितीय को पेशवा माना और बदले में साल्सेट प्राप्त किया।
7. बम्बई की सरकार ने पुरन्दर की संधि का विरोध किया और उसने Board of Directors से अनुमति लेकर मराठों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। तेलगाँव की लड़ाई (1779) में ब्रिटिश पूरी तरह पराजित हुए और बड़गाँव की अपमानजनक संधि की। जिसके तहत् अंग्रेजों ने समस्त विजित प्रदेश मराठों को लौटा दिए। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स ने इस अपमानजनक संधि को स्वीकार नहीं किया और संघर्ष जारी रखा। कई स्थानों पर उसने मराठों को पराचित किया। फलत: 1782 ई० में महादजी सिंधिया के प्रयास से सालबाई की संधि हुई।

साल्बाई की संधि (1782 ई०) [Treaty of Salbai (1782)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. साल्सेट एवं ऐलिफेन्टा द्वीप अंग्रेजों के पास रहेंगे। दोनों पक्षों द्वारा युद्धकाल के दौरान जीते गए क्षेत्र एक दूसरों को वापस कर दिया जाएगा।
2. पेशवा द्वारा रघुनाथ राव को पेंशन मिलने लगी।
3. दोनों ने भविष्य में एक दूसरे पर आक्रमण न करने का आश्वासन दिया गया।

मराठा राजनीति (1800-02 ई०) [Maratha Politics (1800-02)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. पेशवा बाजीराव द्वितीय का सलाहकार दौलतराव सिंधिया था। जिससे मराठा सरदार यशवंतराव होल्कर ईर्ष्या करता था। फलत: होल्कर ने सिंधिया के क्षेत्रों में लूटपाट कर आतंक फैला दिया। जब बाजीराव द्वितीय एवं सिंधिया की सेना ने होल्कर के भाई बिठुर जी के विरुद्ध अभियान किया तब यशवंतराव होल्कर ने अक्टूबर, 1802 में पूणे को घेरा और

TOUCH 'n' PASS

बाजीराव द्वितीय तथा सिंधिया को पराजित किया। फलत: बाजीराव द्वितीय दिसंबर, 1802 में अंग्रेजों की शरण में पहुँच गया और जहाँ बेसिन की संधि के रूप में सहायक संधि स्वीकार की।

2. इस समय भारत में गवर्नर जनरल के रूप में वेलेजली मौजूद था जो घोर साम्राज्यवादी नीति का पोषक था। उसकी नीति थी सभी भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करना और कंपनी के प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि करना। मराठों के आपसी संघर्ष ने वेलेजली को अपनी नीति का अंजाम देने का सुअवसर प्रदान किया। बेसिन की संधि को इसी पृष्ठभूमि में देखे जाने की जरूरत है।

बेसिन की संधि (31 दिसम्बर, 1802) [Treaty of Bassein (31 December, 1802)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. पेशवा ने अपने यहाँ 6000 अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार किया और इसके खर्च के लिए पेशवा ने ₹ 26 लाख वार्षिक आय वाले क्षेत्र अंग्रेजों को प्रदान किए।
2. पेशवा ने स्वीकार किया कि किसी भी यूरोपीय अथवा अंग्रेजों की विरोधी शक्ति को अपनी सीमाओं में नहीं रहने देगा।
3. पेशवा ने स्वीकार किया कि निजाम और गुजरात के गायकवाड़ के साथ अपने मतभेदों का निर्णय अंग्रेजी मध्यस्थता से करेगा।
4. पेशवा ने सूरत पर अपने अधिकार को छोड़ा और वहाँ अंग्रेजों का पूर्ण नियंत्रण स्वीकार किया।
5. अंग्रेजों की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी भारतीय या विदेशी राज्य से संधि या युद्ध करने के लिए पेशवा स्वतंत्र नहीं रहा। इस प्रकार पेशवा ने अपनी विदेश नीति अंग्रेजों के हाथों में सौंप दी।

बेसिन की संधि का महत्त्व (Importance of Treaty of Bassein)

बेसिन की संधि का महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. अंग्रेजों की दृष्टि से इस संधि का महत्त्व यह था कि यह संधि एक राज्य के साथ न होकर राज्यों के संघ के साथ थी। पेशवा पूना का ही नहीं मराठा संघ का अध्यक्ष भी था। अब चारों प्रमुख राज्यों की राजधानियों (अवध) लखनऊ, हैदराबाद, मैसूर और पूना में अंग्रेजी दूत एवं प्रतिनिधि रहने लगे। इस प्रकार मराठा क्षेत्र अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया। इसी आधार पर कहा गया कि इस संधि के पूर्व भारत में एक अंग्रेजी साम्राज्य था वह अब भारत का अंग्रेजी साम्राज्य हो गया।
2. बेसिन की संधि मराठा नियंत्रण की दिशा में पहला महत्त्वपूर्ण प्रयास था क्योंकि साल्बाई की संधि से मराठा आंग्ल संबंध निश्चित नहीं हुए थे।
3. मराठा संघ के प्रमुख पेशवा से संधि करके उससे सहायक संधि की शर्तों को स्वीकार करा कर अंग्रेजों के सम्मान में वृद्धि हुई थी क्योंकि मराठे उस समय भारत की एक प्रमुख शक्ति थे। परन्तु भारत की सर्वोच्चता प्राप्त करने के लिए यह संधि ही पर्याप्त न थी। इस संधि के उपरांत जो युद्ध हुए उन युद्धों में अंग्रेजों की सफलता ने अंग्रेज कंपनी की स्थिति को सर्वोच्च बनाया।

द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध (1803-05) [Second Anglo-Maratha War (1803-05)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. बेसिन की संधि ने द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध की पृष्ठभूमि का निर्माण कर दिया।
2. सहायक संधि में बंध जानार मराठों के लिए अपमानजनक था। अत: भोंसले, सिंधिया और पेशवा ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया लेकिन इस संघर्ष में भी सभी मराठा सरदार एकजुट नहीं रहे। गायकवाड़ और होल्कर इस संघर्ष से अलग रहे।
3. भोंसले को पराजित कर अंग्रेजों ने सन् 1803 में देवगाँव की संधि की तथा कटक और बरार का प्रांत प्राप्त किया।
4. सिंधिया के साथ सुर्जीअर्जन गाँव की संधि की और दोआब प्रदेश राजस्थान के कुछ क्षेत्र तथा भड़ोच, अहमदनगर का क्षेत्र अंग्रेजों ने प्राप्त किया।
5. यद्यपि होल्कर संघर्ष में शामिल नहीं था फिर भी अंग्रेजों ने उसके साथ युद्ध किया और राजपुरघाट की संधि (1805) कर चंबल के उत्तरी प्रदेश तथा बुदलेखंड प्राप्त किया।
6. इस प्रकार द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध में मराठों पर अंग्रेजी नियंत्रण मजबूत हुआ।

TOUCH 'n' PASS

तृतीय आंग्ल मराठा युद्ध (1817-18) [Third Anglo-Maratha War (1817-18)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. वेलेजली के बाद अंग्रेजों ने अहस्तक्षेप तथा तटस्थता की नीति अपनाई और यह नीति 1813, लॉर्ड हेस्टिंग्स के आने तक जारी रही।
2. लॉर्ड हेस्टिंग्स, वेलेजली की तरह ही प्रखर साम्राज्यवादी नीति का पोषक थाा और इसी समय 1813 में ब्रिटिश ने मुक्त व्यापार की नीति लागू की। अत: अब ब्रिटिश प्रत्यक्ष नियंत्रण वाले क्षेत्रों की आवश्यकता थी।
3. द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध ने मराठा शक्ति को नि:शक्त कर दिया गया था, मराठा भावनाओं को नहीं।
4. पिंडारी जो मराठों की सेना में शामिल हुआ करते थे अब वे स्वतंत्र रूप से लूट मार कर रहे थे। लूटमार का एक अंश वे मराठों को भी कर के रूप में देते थे।
5. पिंडारियों के विरुद्ध हेस्टिंग्स ने अभियान किया इससे मराठों के प्रमुख को भी चुनौती मिली। दूसरी तरफ मराठे स्वयं अंग्रेजों का मुकाबला करने की पुन: तैयारी कर रहे थे। अत: लॉर्ड हेस्टिंग्स ने नागपुर के अप्पा साहिब को 1816 में, पेशवा को 1817 में, सिंधिया को 1817 में पराजित कर उनके साथ कठोर संधियाँ की।
6. मराठों की समस्त सेना पराजित हुई और पेशवा को पेंशन देकर कानपुर के पास बिठुर भेज दिया। इस प्रकार मराठा संघ के विघटन का कार्य पूरा हुआ तथा ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने वाली अंतिम महत्त्वपूर्ण शक्ति का पतन हो गया और अंग्रेज भारत में सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित हो गए।

प्र.6. मैसूर पर नियंत्रण की व्याख्या कीजिए।
Explain control over Mysore.

उत्तर

मैसूर पर नियंत्रण
(Control Over Mysore)

हैदरअली का उद्‌भव (Rise of Hyder Ali)

हैदरअली के उद्‌भव को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल शासन के प्रभाव के कारण केन्द्रीय सत्ता क्षीण हो गई और प्रांतीय शासक अपनी सत्ता स्थापित करने लगे थे। उत्तर भारत में बंगाल व अवध में अंग्रेज, दक्षिण में निजाम, मराठे एवं यूरोपीय शक्तियाँ उभर रही थी। इन्हीं स्थितियों में मैसूर में हैदर व टीपू ने अपनी सत्ता स्थापित की। इस समय इतिहास की खास प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने से जो क्षेत्रीय शक्तियाँ उभर कर आई और उनका नेतृत्व राजघराने के स्थान पर सामान्य वर्ग के किन्तु योग्य लोगों ने किया।
2. मैसूर की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि दक्षिण की सारी रियासतें चाहती थी कि वह एक स्वतंत्र एवं शक्तिशाली राज्य बना रहे। मद्रास सरकार यह नहीं चाहती थी कि मराठे मैसूर को जीत ले और उनकी सीमाओं के पास आ जाए। मराठे चाहते थे कि यूरोपीय शक्तियाँ समुद्र तट तक ही सीमित रहे। निजाम चाहता था कि मैसूर पर न तो कंपनी का अधिकार हो न मराठा का। अपने बचाव व शक्ति संतुलन की दृष्टि से मैसूर के अस्तित्व को सब बनाए रखना चाहते थे। उन राजनीतिक परिस्थितियों ने हैदरअली को बहुत सहायता पहुँचाई।
3. हैदरअली ने मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों से समझैता किया और अंग्रेजों के विरुद्ध मराठे, निजाम और फ्रांसीसियों का सहयोग प्राप्त किया। उसकी नीति के तीन मुख्य पहलू थे—प्रथम, वह सब यूरोपीय शक्तियों के बीच एक संतुलन रखे। दूसरा, सब यूरोपीय शक्तियों से अपने लिए सैनिक सामान प्राप्त करे और तीसरा, युद्ध के समय उनसे सहायता प्राप्त करे।
4. जबकि ब्रिटिश भारत की सर्वोच्च यूरोपीय शक्ति बनना चाह रहे थे और भारत में अपनी सत्ता का विस्तार चाह रहे थे। 1765 ई० में बंगाल की दीवानी मिलने के पश्चात् दक्षिण में विस्तार व नियंत्रण आवश्यक था। इसी कारण अंग्रेज और मैसूर के बीच चार युद्ध हुए और अंतत: ने मैसूर पर अधिकार कर लिया।

TOUCH 'n PASS

ब्रिटिश द्वारा मैसूर पर नियंत्रण के कारण (Causes for the British Control over Mysore)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. दक्षिण में मैसूर अंग्रेजों के प्रमुख विरोधी शक्ति के रूप में उभर रहा था और यह ब्रिटिश साम्राज्य के दक्षिण विस्तार का एक बहुत बड़ा रोड़ा था।
2. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दक्षिण में प्रसार हेतु आर्थिक व राजनैतिक आवश्यकताएँ थी।
3. हैदर व टीपू द्वारा फ्रांसीसियों से संबंध EIC के लिए खतरा था।

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध (1767-69 ई०) [First Anglo-Mysore War (1767-69)]

कारण—इसके कारण निम्नलिखित हैं—

1. हैदरअली द्वारा अंग्रेजी शक्ति के लिए चुनौती उत्पन्न करना।
2. 1766 ई० में हैदर अली के विरुद्ध मराठे, निजाम और अंग्रेज का त्रिगुट गठबंधन बनना।
3. अपने कूटनीतिक कौशल से हैदर द्वारा मराठों को त्रिगुट से अलग किया जाना।
4. अंतत: कई स्थानों पर अंग्रेज-हैदर के बीच संघर्ष हुआ और 1769 में अंग्रेजों द्वारा मद्रास की सुरक्षात्मक संधि की गई।

परिणाम—इसके परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. इस संधि से दोनों ने एक दूसरे के जीते प्रदेश वापस किए। आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे को सैनिक सहायता देने का वचन दिया।
2. संधि ने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को काफी चोट पहुँचाई। मैसूर पर नियंत्रण का उनका सपना पूरा नहीं हो सका।
3. यह संधि दो मित्रों के बीच न थी, बल्कि अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए की गई थी।

द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1780-84 ई०) [Second Anglo-Mysore War (1780-84)]

कारण—इसके कारण निम्नलिखित हैं—

1. 1771 ई० में मराठों ने हैदर पर आक्रमण किया तब अंग्रेजों ने मैसूर की कोई सहायता नहीं की। इस तरह 1769 की संधि का उल्लंघन अंग्रेजों ने किया।
2. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के चलते यूरोप में फ्रांस और ब्रिटेन एक दूसरे से उलझ पड़े। भारत में भी अंग्रेजों ने फ्रांसीसी बस्तियाँ—माही और गुंटूर पर अधिकार का प्रयास किया। यह क्षेत्र हैदर अली के नियंत्रण में था।
3. इस समय प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध चल रहा था अत: हैदर ने अंग्रेजों के विरुद्ध मैसूर, निजाम और मरराठा का त्रिगुट बनाया। यही वह समय था जब अंग्रेजों की स्थिति सर्वाधिक दयनीय थी।

परिणाम—इसके परिणाम निम्नलिखित हैं—

1. आरंभिक युद्ध में हैदर सफल हुआ, किन्तु अंग्रेजों द्वारा कूटनीति से मराठे और निजाम को त्रिगुट से अलग कर दिया गया। फलत: हैदर अंग्रेजों से अकेला संघर्षरत रहा। पोर्टोनोवो के युद्ध में पराजित हुआ और 1782 में उसकी मृत्यु हो गई।
2. टीपू ने युद्ध को जारी रखा। अंतत: टीपू और अंग्रेजों के बीच 1784 में मंगलौर की संधि द्वारा युद्ध समाप्त हुआ।
3. संधि के द्वारा दोनों ने जीते हुए प्रदेश वापस कर दिए और कैदियों को भी वापस कर दिया।

तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1790-92 ई०) [Third Anglo-Mysore War (1790-92)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. मंगलौर की संधि ने कंपनी एवं टीपू के बीच झूठी शांति कायम की थी। टीपू इस बात को समझता था कि अंग्रेज मौका मिलते ही पुन: आक्रमण करेंगे। अत: उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु फ्रांसीसियों को अपने पक्ष में किया तथा अपने राजदूत को फ्रांस-तुर्की भेजा।
2. टीपू ने अपनी सेना यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षित करना शुरू किया।
3. इस समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल कार्नवालिस था और उसने कंपनी के हित में टीपू की शक्ति को कुचलना आवश्यक समझा।

TOUCH 'n' PASS

4. युद्ध का तात्कालिक कारण यह था कि कार्नवालिस ने अपने मित्रों की सूची में टीपू का नाम उल्लेखित नहीं किया, अत: 1789 में टीपू ने ब्रिटिश संरक्षित त्रवाणकोर राज्य पर हमला कर दिया। फलत: कार्नवालिस ने युद्ध छेड़ दिया।
5. आरंभिक विजय के पश्चात् अंतत: टीपू श्रीरंगपत्तनम के युद्ध में पराजित हुआ और 1792 ई० में श्रीरंगपत्तनम की संधि की।

श्रीरंगपत्तनम की संधि (1792) [Treaty of Serirangapatinam (1792)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. टीपू का आधा राज्य अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। इसमें से एक बड़ा भाग निजाम को प्राप्त हुआ, एक भाग मराठों को मिला।
2. अंग्रेजों को मालाबार, डिंडिगुल आदि क्षेत्र मिले जिनसे उनके राज्य का ही विस्तार नहीं हुआ बल्कि सैनिक और आर्थिक महत्त्व के स्थान भी प्राप्त हुए।
3. टीपू को ₹ 30 लाख युद्ध हर्जाना भी देना पड़ा तथा अपने दो पुत्रों को सुरक्षा व शांति के गारंटी के लिए अंग्रेजों को सौंपना पड़ा।

समीक्षा (Review)—इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कुछ इतिहासकारों ने कार्नवालिस द्वारा इस संधि की आलोचना की है क्योंकि उसने मैसूर राज्य को पूर्णत: अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया और टीपू को अपनी शक्ति संगठित करने के लिए छोड़ दिया।
2. परंतु कार्नवालिस की यह संधि सोच विचार और सूझ-बूझ के साथ की गई थी। उस समय क्रांति ग्रस्त फ्रांस की स्थिति सुधर रही थी और संभव था कि टीपू को फ्रांसीसी सहायता प्राप्त हो जाती।
3. कार्नवालिस को इससे भी अधिक कठिनाई मैसूर राज्य के विभाजन की थी। यदि वह संपूर्ण मैसूर राज्य को अपने अधिकार में ले लेता तो उसे अपने सहयोगी मित्रों निजाम और मराठों को भी विस्तृत भू-प्रदेश देना पड़ता और यह सहयोगी मित्र भी अंग्रेजों के लिए एक चुनौती थे और ज्यादा क्षेत्र तथा शक्ति प्राप्त कर अंग्रेजों के लिए और कड़ी चुनौती बन सकते थे। इसके लिए कार्नवालिस तैयार नहीं था। यहीं वजह है जब श्रीरंगपत्तनम की संधि वार्ता टूटने की स्थिति में पहुँच गई तब कार्नवालिस ने उपरोक्त कठिनाई को समझते हुए अपनी चिन्ता इन शब्दों में व्यक्त की थी कि हे ईश्वर! अब मैं इस स्थान का क्या करूँगा?
4. इन्हीं कारणों से परिचलित होकर उसने संधि की और संधि के बाद उसने कहा भी कि "हमने अपने मित्रों को बहुत शक्तिशाली बनाए बगैर अपने दुश्मनों को बुरी तरह से दुर्बल कर दिया।" यह कथन अक्षरश: सत्य है क्योंकि अंग्रेजों के मित्र निजाम और मराठे तो शक्तिशाली नहीं हुए और दूसरी तरफ टीपू की शक्ति को दुर्बल बना दिया गया। फलत: मैसूर राज्य को समाप्त करना अब कुछ समय की बात थी और यह कार्य वेलेजली ने भारत आते ही 1799 में कर दिया।

चतुर्थ मैसूर युद्ध (1799 ई०) [Fourth Mysore War (1799)]

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. टीपू द्वारा श्रीरंगपत्तनम की अपमानजनक संधि का बदला लेने का प्रयास और इसी क्रम में अफगानिस्तान, तुर्की, मारीशस में अपने दूतमंडलों को भेजा।
2. उसने 'स्वतंत्रता के वृक्ष' को फ्रांसीसियों के साथ मिलकर आरोपित किया तथा फ्रांस के जैकोवियन दल की सदस्यता अर्जित की।
3. इस समय भारत का गवर्नर जनरल वेलेजली था, जो साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था। वह टीपू और मैसूर की शक्ति को पूर्णत: कुचल देना चाहता था। फलत: उसने फ्रांसीसियों के साथ सांठ-गांठ करने का आरोप टीपू पर लगाकर उसके विरुद्ध युद्ध किया और 1799 में उसे पराजित कर मैसूर पर अंग्रेजी नियंत्रण स्थापित किया। डीनहट्टन के शब्दों में "सैनिक, आर्थिक और शांति स्थापना की दृष्टि से मैसूर की विजय क्लाइव के समय के पश्चात् अंग्रेजी शक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण विजय थी।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का क्षेत्रीय विस्तार
Territorial Expansion of East India Company

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1793 ई० के प्रथम चार्टर एक्ट द्वारा दिए गए प्रावधानों को लिखिए।
Write the provisions of the first charter Act of 1793.

उत्तर इसके प्रावधान निम्न प्रकार हैं—

1. इस एक्ट के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अगले 20 वर्ष के लिए भारत में व्यापार करने का अधिकार दिया गया।
2. बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सदस्यों का पद अभी तक अवैतनिक था, परन्तु इस ऐक्ट के द्वारा उनका पद वैतनिक बना दिया तथा उनका वेतन भारत के कोष से देना तय किया गया।
3. इस एक्ट के द्वारा कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स को यह आदेश दिया गया कि कम्पनी की आय और व्यय का विवरण वह प्रतिवर्ष ब्रिटिश संसद के सम्मुख उपस्थित करे।
4. इस एक्ट द्वारा 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' को यह अधिकार दिया गया कि वह सम्राट की सेना को भारत में भेज सके तथा उसका व्यय भारतीय कोष से करने की व्यवस्था कर सकें।
5. भारत के गवर्नर जनरल की तरह ही बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों को इस एक्ट द्वारा यह अधिकार मिल गया कि वे भी अब अपनी कौंसिल के बहुमत के निर्णय को रद्द कर सकते हैं।

प्र.2. 1813 ई० के चार्टर एक्ट से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by charter Act of 1893.

उत्तर इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. इस एक्ट के द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक बार पुन: 20 वर्षों के लिए भारत से व्यापार की अनुमति दी गई, परन्तु भारत व चीन के साथ उसके चाय व्यापार के एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया।
2. इस एक्ट के द्वारा गवर्नर जनरल की परिषद् में एक चौथा सदस्य विधि सदस्य जोड़ दिया गया।
3. इस एक्ट के द्वारा प्रान्तों के गवर्नरों के कानून बनाने के अधिकार को समाप्त कर दिया गया।
4. इसके द्वारा आगरा को एक नया प्रान्त बनाया गया।
5. इस एक्ट की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि रूप-रंग, वंश, जाति-भेद के बिना भारतीयों के लिए भी ऊँची नौकरियों का प्रावधान किया गया था।

प्र.3. 1853 ई० के चार्टर एक्ट प्रावधानों को संक्षेप में लिखिए।
Write in brief the provisions of the charter Act of 1853.

उत्तर यह कम्पनी का अन्तिम चार्टर एक्ट था, क्योंकि 1857 ई० के बाद कम्पनी का अस्तित्व समाप्त हो गया। इस एक्ट के प्रावधान निम्नलिखित थे—

1. इस एक्ट के द्वारा **'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स'** की सदस्य संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई तथा इसमें से 6 की नियुक्ति सम्राट द्वारा होनी थी।
2. कम्पनी में नौकरी प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता परीक्षा की गई।

TOUCH 'n' PASS

3. कम्पनी के लिए एक लेफ्टिनेण्ट गवर्नर की व्यवस्था की गई तथा गवर्नर-जनरल की परिषद् के विधि सदस्य को स्थायी कर दिया गया। इसके साथ की उसकी परिषद् में कानून बनाने के लिए 6 अतिरिक्त सदस्य जोड़ दिए गए।

1858 ई० में जब कम्पनी का अस्तित्व समाप्त हो गया, तब भारत में ब्रिटेन के सम्राट और उसकी संसद ही विधि-निर्माण की सर्वोच्च संस्था हो गई तथा उसके द्वारा पारित नियम भारत-परिषद् अधिनियम के अन्तर्गत आने लगे।

प्र.4. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापारिक नीति को समझाइए।

Explain the mercantile policy of East India.

उत्तर प्रारम्भ में कम्पनी ने विशुद्ध व्यापारिक नीति का अनुसरण किया था। इस अवधि में उसका प्रमुख ध्येय शान्तिपूर्वक व्यापार करके व्यापारिक लाभ कमाना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कम्पनी ने बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में अपने व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना की थी।

प्र.5. प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध के कोई तीन कारण बताइए।

Mention any three causes of the first Anglo-Mysore War.

उत्तर प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध के तीन कारण निम्न हैं—

1. हैदर अली और अंग्रेज दोनों ही अपने राज्य विस्तार की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील थे।
2. हैदर अली की प्रगति को रोकने के लिए अंग्रेजों ने षड्यन्त्र रचे थे, जिसके कारण वह अंग्रेजों से रुष्ट था।
3. हैदर अली अंग्रेजों के कट्टर शत्रु फ्रांसीसियों का मित्र था।

प्र.6. कम्पनी राज का क्या अर्थ है?

What is the meaning of Company Rule?

उत्तर कम्पनी राज का अर्थ है ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत पर शासन। यह 1773 में शुरू किया है, जब कम्पनी ने कोलकाता में एक राजधानी की स्थापना की, अपने प्रथम गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स को नियुक्त किया और सन्धि के एक परिणाम के रूप में 1764 बक्सर के युद्ध के बाद सीधे प्रशासन, में शामिल हो गया। 1765 में, जब बंगाल के नवाब कम्पनी से हार गया था, और दीवानी प्रदान की गई थी, या बंगाल और बिहार में राजस्व एकत्रित करने का अधिकार है शासन 1858 से, 1857 जब तक चला और फलस्वरूप भारत सरकार के अधिनियम 1858 के भारतीय विद्रोह के बाद, ब्रिटिश सरकार सीधे नए ब्रिटिश राज में भारत के प्रशासन के कार्य ग्रहण किया।

प्र.7. ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत पर कैसे शासन किया?

How did East India Company rule India?

उत्तर इसने 1757 में भारतीय उपमहाद्वीप पर बंगाल का नियंत्रण हासिल कर लिया, और चूँकि कम्पनी ब्रिटिश साम्राज्यवाद की एजेंट थी, इसके शेयरधारक वहाँ ब्रिटिश नीति को प्रभावित करने में सक्षम थे, अंततः यह सरकारी हस्तक्षेप का कारण बना।

प्र.8. ईस्ट इण्डिया कम्पनी कैसे सबसे शक्तिशाली बन गई?

How did East India Company become most powerful?

उत्तर विलियम डेलरिम्पल ने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने 31 दिसम्बर, 1600 को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना को मंजूरी दी। इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी उम्मीदों से भी ज्यादा तेजी से आगे बढ़ी। इसके जरिए क्षेत्र के कारोबार में ब्रिटेन का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

प्र.9. ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अंत कैसे हुआ?

How did the East India Company end?

उत्तर वर्ष 1857 में भारतीय सेना के विद्रोह के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी को 1 जनवरी, 1874 को भंग कर दिया था।

प्र.10. भारत सरकार अधिनियम, 1858 का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief descriptions of Government of India Act, 1858.

उत्तर इसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **वर्ष 1857 के विद्रोह के परिणाम**—1857 के विद्रोह ने प्रशासन में कम्पनी की सीमा को उजागर कर दिया था।

TOUCH 'n' PASS

2. विद्रोह ने कम्पनी द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्र पर अधिकार के विभाजन की माँग के रूप में अवसर प्रदान किया।
3. **कम्पनी के शासन का अंत**—पिट्स इण्डिया एक्ट द्वारा शुरू की गई दोहरी प्रणाली का अंत हो गया। अब भारत को राज्य के सचिव और 15 सदस्यों की एक परिषद् के माध्यम से क्राउन के नाम पर शासित किया जाने लगा।
4. यह परिषद् प्रकृति में सिर्फ सलाहकार थी।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Briefly mention the First Anglo-Mysore War.

उत्तर

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध (1767-69 ई०)
[First Anglo-Mysore War (1767-69)]

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

1. हैदर अली और अंग्रेज दोनों ही अपने राज्य विस्तार की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील थे।
2. हैदर अली की प्रगति को रोकने के लिए अंग्रेजों ने षड्यन्त्र रचे थे, जिसके कारण वह अंग्रेजों से रुष्ट था।
3. हैदर अली अंग्रेजों के कट्टर शत्रु फ्रांसीसियों का मित्र था।

युद्ध—उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप 1767 ई० में अंग्रेजों और हैदर अली के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। प्रारम्भ में अंग्रेजों को कुछ सफलता मिली किन्तु शीघ्र ही हैदर अली की सेनाओं ने अंग्रेजों को चारों ओर से घेर लिया और अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित कर मंगलौर पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् हैदर अली ने मद्रास को घेर लिया और मद्रास पर भीषण आक्रमण किए। भयभीत हुए अंग्रेजों ने उससे 4 अप्रैल, 1769 ई० को मद्रास में एक तिरस्कारपूर्ण सन्धि कर ली।

मद्रास की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के विजित प्रदेश लौटा दिए। अंग्रेजों ने क्षति पूर्ति के रूप में हैदर को बहुत-सा धन दिया और दोनों पक्षों ने संकट के समय एक-दूसरे को सहायता देने का वचन दिया। इस विजय से हैदर अली की शक्ति और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई किन्तु अंग्रेज इस सन्धि के प्रति निष्ठावान नहीं रहे। जब 1771-72 ई० में माधवराव पेशवा के नेवृत्व में मराठों ने हैदर अली पर आक्रमण किया, डरे अंग्रेजों ने उसकी सहायता नहीं की। इस विश्वासघात के परिणामस्वरूप हैदर अली के क्रोध की सीमा न रही और वह अंग्रेजों से बदला लेने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

प्र.2. कार्नवालिस के न्यायिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।
Describe the judicial reforms of Cornwallis.

उत्तर

न्याय सम्बन्धी सुधार
(Judicial Reforms)

कार्नवालिस ने न्याय के क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए—

1. **दीवानी अदालतों का संगठन**—इसके अन्तर्गत चार अदालतें थी। सबसे छोटी अदालत अमीन अथवा मुन्सिफ के नेतृत्व में कार्य करती थी। इन अदालतों को ₹ 50 से लेकर ₹ 200 तक के मुकदमे सुनने का अधिकार था। छोटी अदालतों के ऊपर जिला अदालतों की व्यवस्था की गई। जिला अदालतों का प्रधान न्यायधीश अंग्रेज होता था तथा उसके सहायतार्थ हिन्दू व मुसलमान परामर्शदाता नियुक्त किए जाते थे। जिला अदालतों में छोटी अदालतों के विरुद्ध अपील सुनी जाती थी। जिला अदालतों के ऊपर प्रान्तीय अदालतें थीं। जिनकी संख्या चार थी—ढाका, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद तथा पटना। प्रत्येक प्रान्तीय अदालत में तीन अंग्रेज न्यायाधीश तथा इनकी सहायता के लिए एक काजी, एकमुफ्ती तथा एक पण्डित की नियुक्ति की जाती थी। प्रान्तीय अदालतों में ₹ 1,000 तक के मुकदमों के लिए प्रान्तीय न्यायालयों में अपील की जा सकती थी। प्रान्तीय न्यायालयों के ऊपर सदर दीवानी अदालत की व्यवस्था की गई। सदर दीवानी अदालत का मुख्यालय कलकत्ता में था। इसका अध्यक्ष गवर्नर जनरल होता था। प्राय: सभी प्रकार के दीवानी मुकदमों के लिए यह अन्तिम अदालत केवल ₹ 15,000 से अधिक के मुकदमों की अपील लन्दन में सम्राट की कौंसिल में जा सकती थी।
2. **निजामत (फौजदारी अदालतों का संगठन)**—दीवानी अदालतों की भाँति निजामत अथवा फौजदारी अदालतों का संगठन किया गया। सबसे छोटी फौजदारी अदालत का अध्यक्ष दरोगा होता था। इसके ऊपर जिला फौजदारी अदालत

TOUCH 'n PASS

कार्य करती थी। जिला अदालत का प्रमुख अंग्रेज न्यायाधीश होता था। जिला फौजदारी अदालतों के ऊपर प्रान्तीय फौजदारी अदालत कार्य करती थी। ये अदालतें कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका और पटना में थी। प्रत्येक प्रान्तीय फौजदारी अदालत में दो-दो अंग्रेज न्यायाधीश होते थे। इन अदालतों द्वारा दिए गए मृत्युदण्ड की स्वीकृति सदर फौजदारी अदालत से लेनी पड़ती थी प्रान्तीय अदालतों के ऊपर सदर निजामत (फौजदारी) अदालत थी, इसका मुख्यालय कलकत्ता में था तथा इसका अध्यक्ष स्वयं गवर्नर जनरल होता था। इसका निर्णय अन्तिम होता था।

3. **कार्नवालिस कोड़**—लॉर्ड कार्नवालिस ने 1793 ई० में न्याय व्यवस्था में सुधार लाने के उद्देश्य से विभिन्न धर्मों के कानूनों को समाप्त करके नियमों की एक संहिता तैयार करवाई जिसे कार्नवालिस कोड़ कहा जाता है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—(i) निजामत (फौजदारी) अदालतों में भारतीय न्यायाधीशों के स्थान पर अंग्रेज न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं (ii) न्याय व्यवस्था को साम्राज्य प्रशासन से अलग करना। अब कलेक्टरों से न्याय का कार्य छीन लिया गया और उनके स्थान पर जिला जजों की व्यवस्था की गई।
   कार्नवालिस कोड़ में अमानवीय दण्डों को समाप्त कर दिया गया। हाथ-पाँव काटने, सूली पर चढ़ाकर मारना आदि दण्डों को समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार न्याय सम्बन्ध में इन सुधारों से उसने भारतीय जनता को प्रसन्न करने का प्रयास किया।
4. **कार्नवालिस की विदेश नीति**—कार्नवालिस ने पिट्स इण्डिया एक्ट के अनुसार, अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया। मराठों के साथ सम्बन्धों में उसने मौन रखा और उनका समर्थन प्राप्त करने में भी सफल रहा। कर्नाटक का नवाब कम्पनी का अत्यधिक ऋणी हो गया था अत: उसने कर्नाटक का शासन कम्पनी के नियन्त्रण में कर दिया। किन्तु उसे टीपू सुल्तान के साथ युद्ध लड़ना पड़ा। जो इतिहास में तृतीय मैसूर युद्ध के नाम से जाना जाता है।

प्र.3. वॉरेन हेस्टिंग्स के भूमि-कर एवं व्यापार सम्बन्धी सुधारों का उल्लेख कीजिए।
Mention the revenue and business reforms of Warren Hastings.

उत्तर

भूमि-कर सम्बन्धी सुधार
(Revenue Reforms)

मुगल सम्राट शाहआलम से प्राप्त दीवानी की व्यवस्था अब तक ठीक नहीं हो पायी थी। भूमि कर वसूल करने वाले कर्मचारी बेईमान तथा सुस्त थे इससे कम्पनी को बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ रही थी। अत: उसने भूमि कर सम्बन्धी निम्नलिखित सुधार किए—

1. **राजस्व समिति की स्थापना**—राजस्व व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने के लिए उसने अपनी अध्यक्षता में एक राजस्व समिति की स्थापना की। इस समिति ने विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर राजस्व वसूलने के कार्य का निरीक्षण किया। इसके पश्चात् वसूलने के कार्य का निरीक्षण किया। इसके पश्चात् उसने इस व्यवस्था में कई परिवर्तन किए।
2. **भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध**—प्रतिवर्ष राजस्व एकत्र करने की कठिनाई से बचने के लिए वॉरेन हेस्टिंग्स ने समस्त भूमि विभिन्न ठेकेदारों को पाँच-पाँच वर्ष के लिए नीलाम कर देने का आदेश दिया। बोली में जो अधिक राजस्व देने का वचन देता, वही भूमि का ठेका प्राप्त कर लेता। इस पंचवर्षीय प्रबन्ध के बड़े बुरे परिणाम सामने आए। अत: 1776 ई० में पुन: भूमि का एकवर्षीय प्रबन्ध लागू किया।

व्यापार सम्बन्धी सुधार (Business Reforms)

वॉरेन हेस्टिंग्स ने व्यापार-सम्बन्धी दोषों को दूर करने के निम्नलिखित प्रयास किए—

1. **चुँगी में कमी**—उसने नमक, पान तथा तम्बाकू को छोड़कर शेष सभी वस्तुओं पर ढाई प्रतिशत चुँगी निश्चित कर दी। जो भारतीय तथा यूरोपीय सभी व्यापारियों को समान रूप से देनी पड़ती थी। इससे व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई।
2. **चुँगी-चौकियों में कमी**—जमींदारों द्वारा विभिन्न स्थानों पर स्थापित चुँगी चौकियों से व्यापारिक माल के आने-जाने में अनेक रुकावटें आती थीं। अतएव समस्त चुँगी-चौकी समाप्त घोषित कर दी गई, केवल पाँच चुँगी-चौकियाँ रहने दी गईं, जो कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, हुगली, पटना तथा ढाका में थी। इन पर भी सख्ती से नियन्त्रण रखे जाने की व्यवस्था की गई।
3. **व्यक्तिगत व्यापार पर प्रतिबन्ध**—हेस्टिंग्स ने कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया, परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि कम्पनी के कर्मचारी अब व्यापार भारतीय व्यापारियों के नाम से करने लगे।
4. **कलकत्ते में बैंक की स्थापना**—व्यापारियों की सुविधा के लिए कलकत्ते में एक बैंक की स्थापना की गई।

TOUCH n PASS

5. **सरकारी टकसाल की व्यवस्था**—कलकत्ते में एक सरकारी टकसाल की स्थापना की गई, जिसमें एक निश्चित आकार तथा मूल्य की मुद्रा ढाली जाने लगी।
6. **नमक तथा अफीम के व्यापार पर नियन्त्रण**—हेस्टिंग्स द्वारा नमक तथा अफीम के व्यापार पर पूर्ण रूप से सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।
7. **दस्तक प्रथा का अन्त**—'दस्तक' प्रथा (कररहित व्यापार) का अधिकार पत्र भी समाप्त कर दिया। इससे सर्वसाधारण को भी व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया और अब चुँगी से होने वाली आय सीधे कम्पनी को मिलने लगी।
8. **व्यापारिक सन्धियाँ**—वॉरेन हेस्टिंग्स ने व्यापार की वृद्धि के लिए भूटान, तिब्बत, मिस्र आदि दूर विदेशों में व्यापार मंडल (मिशन) भेजे और व्यापारिक सन्धियाँ की।

प्र.4. प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई०) का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Briefly mention the first anglo-maratha war (1775-82).

उत्तर

प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई०)
[First Anglo-Maratha War (1775-82)]

सूरत की सन्धि के अनुसार बम्बई की सरकार ने एक सेना रघुनाथ राव की सहायता के लिए भेज दी। 18 मई, 1775 ई० अर्रास नामक स्थान एक अनिर्णायक युद्ध लड़ा गया। इस घटना की सूचना जब वॉरेन हेस्टिंग्स को लगी तो सूरत की सन्धि मानने से इंकार कर दिया, क्योंकि यह सन्धि कलकत्ता कौंसिल से पूछे बिना की गई थी। गवर्नर जनरल ने बम्बई की सरकार की निन्दा की और उसके द्वारा की गई सूरत की सन्धि को अस्वीकार कर दिया।

पुरन्दर की सन्धि (Treaty of Purandar)—इसके पश्चात् कलकत्ते की कौंसिल ने एक प्रतिनिधि पूना की सरकार के पास भेजा और 1776 ई० में एक नयी सन्धि कर ली, जो पुरन्दर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि द्वारा यह तय हुआ कि सालसिट का द्वीप अंग्रेजों के ही अधिकार में रहेगा। मराठे ₹ 12 लाख अंग्रेजों को क्षतिपूर्ति के रूप में देंगे अंग्रेज रघुनाथराव राघोवा की सहायता नहीं करेंगे और उसकी सेना भंग कर दी जाएगी। इस प्रकार इस सन्धि से दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित हो गई। किन्तु इंग्लैण्ड स्थित डायरेक्टरों ने बम्बई सरकार द्वारा की गई 'सूरत की सन्धि' को स्वीकृति दे दी और पुरन्दर की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप अंग्रेजों और मराठों में पुनः युद्ध शुरू हो गया।

तालेगाँव युद्ध और बड़गाँव की सन्धि (Battle of Talegram and Treaty of Badagaon)—सूरत की सन्धि की स्वीकृति तथा पुरन्दर की सन्धि की अस्वीकृति के कारण अंग्रेज और मराठा सेनाएँ पुनःयुद्धरत हो गई। 19 जनवरी, 1779 ई० को तालेगाँव नामक स्थान पर नाना फड़नवीस ने महादजी सिंधिया और होल्कर की संयुक्त सेनाओं की सहायता से अंग्रेजों को बुरी तरह से परास्त किया। विवश होकर अंग्रेजों ने 15 जनवरी, 1779 ई० को बड़गाँव की सन्धि की। इस सन्धि द्वारा यह तय हुआ कि 1773 ई० के पश्चात् अंग्रेजों ने जितनी भूमि विजित की है उस सबको वे लौटा देंगे। यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बहुत अपमानजनक थी। वॉरेन हेस्टिंग्स ने बम्बई की सरकार द्वारा की गई इस सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया। उसने बम्बई के गवर्नर को लिखा कि अब जब युद्ध प्रारम्भ हो गया है तो पीछे हटने की आवश्यकता नहीं है। उसने कलकत्ते से दो सेनाएँ और भेजी। एक कैप्टन पोफेम के नेतृत्व में ग्वालियर पर आक्रमण करने और दूसरी गोडार्ड के नेतृत्व में पूना पर आक्रमण करने के लिए।
जनरल गोडार्ड ने मध्य भारत में से गुजरते हुए फरवरी, 1780 ई० में अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया और इसके पश्चात् उसने वेसिन पर भी अधिकार कर लिया। दूसरी ओर पोफेम ने ग्वालियर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। विवश होकर मराठों को सन्धि करनी पड़ी।

सालबाई की सन्धि (17 मई, 1782 ई०) (Treaty of Salbai)—ग्वालियर के निकट सालबाई नामक स्थान पर अंग्रेजों तथा मराठों में सन्धि हो गई। इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थीं—

1. बेसिन तथा सालसिट के प्रदेश अंग्रेजों को दिए गए।
2. यमुना का पश्चिमी प्रदेश महादजी सिन्धिया को दे दिया गया।
3. अंग्रेजों ने रघुनाथराव 'राघोबा' की मदद न करने का वचन दिया।
4. अंग्रेजों ने नारायणराव के पुत्र माधवराव द्वितीय को पेशवा स्वीकार कर लिया।

TOUCH 'n' PASS

5. पेशवा ने राघोबा को ₹ 25,000 मासिक पेंशन देना स्वीकार किया।
6. फतेहसिंह गायकवाड़ को बड़ौदा का स्वतंत्र शासक मान लिया गया और उसके सभी प्रदेश लौटा दिए गए।

सालबाई की सन्धि के द्वारा भारतीय राजनीति में अंग्रेजों की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित हो गई। डॉडवेल ने लिखा है कि सालबाई की सन्धि भारत में अंग्रेजी प्रभुसत्ता के इतिहास को एक नवीन मोड़ देने वाली घटना थी। इस सन्धि के फलस्वरूप अंग्रेजों और मराठों के मध्य लगभग 20 वर्ष तक युद्ध विराम रहा और भारत में अंग्रेजों के प्रभाव में वृद्धि हुई। इस प्रकार प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध समाप्त हुआ।

प्र.5. तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1790-92 ई०) के कारणों को लिखिए।
Write the causes of third anglo-mysore war (1790-92).

उत्तर

तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध के कारण (1790-92 ई०)
[Third Anglo-Mysore War (1790-92)]

1790 से 1792 ई० के बीच हुए तृतीय मैसूर युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

1. **टीपू की अंग्रेजों से शत्रुता**—अपने पिता हैदर अली की भाँति टीपू भी अंग्रेजों से नफरत करता था तथा उनका कट्टर शत्रु था। वह उन्हें दक्षिण भारत से निकलना चाहता था दूसरी ओर अंग्रेज भी टीपू की शक्ति का अन्त करना चाहते थे।
2. **गुंटूर का प्रदेश**—मराठा युद्ध के समय हेस्टिंग्स ने निजाम को मराठों से अलग रखने के उद्देश्य से गुंटूर का प्रदेश दे दिया था। इस महत्त्वपूर्ण प्रदेश को कार्नवालिस पुन: प्राप्त करना चाहता था, लेकिन निजाम इसके लिए तैयार नहीं था। अन्त में निजाम ने गुंटूर का प्रदेश अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया, किन्तु बदले में उसने मैसूर के वे प्रदेश माँगे जो हैदर अली ने उससे छीन लिए थे।
   कार्नवालिस ने निजाम को इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार कर लिया कि वह अंग्रेजों की सहायता का उपयोग उनके मित्रों के विरुद्ध नहीं करेगा। कार्नवालिस ने जिन मित्रों की सूची दी उसमें मैसूर के सुल्तान टीपू का नाम नहीं था। कार्नवालिस के इस आचरण से टीपू को स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों के साथ संघर्ष अनिवार्य है।
3. **टीपू की तैयारियाँ**—टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के इस आचरण को देखकर युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी। उसने तुर्की के खलीफा तथा फ्रांस के सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट से सहायता माँगी। इन सब बातों से अंग्रेजों ने भी युद्ध को अनिवार्य मानकर तैयारियाँ शुरू कर दीं।
4. **अंग्रेजों द्वारा त्रिगुट का निर्माण**—कार्नवालिस ने निजाम के साथ मराठों से भी सहयोग माँगा तथा टीपू के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने में सफल रहा। जिसमें निजाम और मराठे उसके सहयोगी बन गए। संयुक्त मोर्चा बनाने पर कार्नवालिस टीपू के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा।
5. **तात्कालिक कारण**—तृतीय मैसूर युद्ध का तात्कालिक कारण यह था कि टीपू ने अपनी शक्ति को अंग्रेजों के विरुद्ध सुदृढ़ करने के लिए 1789 ई० अंग्रेजों के सहयोगी तथा मित्र ट्रावनकोर के राजा पर आक्रमण कर दिया। इससे कार्नवालिस को टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का अवसर मिल गया।

युद्ध—कार्नवालिस ने मराठों तथा निजाम के साथ सन्धि कर रखी थी। अत: तीनों की सेनाओं ने मैसूर राज्य को चारों ओर से घेर लिया। दो वर्षों तक टीपू अकेले ही बड़े साहस एवं वीरता से अपने शत्रुओं का मुकाबला करता रहा। अन्त में मार्च, 1791 ई० में टीपू की सन्धि को बातचीत शुरू करनी पड़ी।

श्रीरंगपट्टम की सन्धि (1792 ई०) [Treaty of Serirangapatinam (1792)]

इस सन्धि के अनुसार टीपू को अपने राज्य का आधा भाग अंग्रेजों को देना पड़ा, जो मित्र राष्ट्रों में विभक्त कर दिया गया। अंग्रेजों का मालाबार का क्षेत्र, डिण्डीगल और उसके आस-पड़ोस के जिले तथा बारामहल तथा कुर्ग के राज्य पर अधिकार स्थापित हो गया। निजाम को कृष्णा और पन्ना नदियों के मध्य का क्षेत्र और मराठों को कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच का भू-भाग मिला। युद्ध के हर्जाने के रूप में तीन-लाख पौंड अंग्रेजों को देने पड़े। इसके अतिरिक्त टीपू को अपने दो पुत्रों को अंग्रेजों के पास बन्धक के रूप में रखना पड़ा। इस सन्धि से टीपू की शक्ति को बहुत आघात पहुँचा।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार में लॉर्ड कार्नवालिस (1805 ई०), सर जार्ज बार्लो (1805-1807 ई०) तथा लॉर्ड मिण्टो (1807-1813 ई०) में क्या योगदान रहा था? संक्षेप में विवरण दीजिए।

What were the contributions of Lord Cornwallis (1805), Sir George Barlowe (1805-1807) and Lord Minto in the expansion British state in India? Describe in brief.

उत्तर

लॉर्ड कार्नवालिस (1805 ई०)
[Lord Cornwallis (1805)]

लॉर्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति के कारण भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ, परन्तु साथ-ही-साथ उसकी नीतियों के कारण कम्पनी का ऋण अत्यधिक बढ़ गया। इसलिए कम्पनी के संचालक मण्डल ने लॉर्ड वलेजली को 1805 ई० को वापिस बुला लिया और उसके स्थान पर लॉर्ड कार्नवालिस को दूसरी बार भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया। कार्नवालिस को भारत यह आदेश देकर भेजा गया, कि वह भारत में तटस्थता और अहस्तक्षेप की नीति का पालन करे। इस समय भारत में अंग्रेजी कम्पनी का मराठा सरदार होल्कर के साथ युद्ध चल रहा था। अत: कार्नवालिस ने भारत आते ही इस युद्ध को समाप्त करने तथा छोटे-छोटे राजपूत राज्यों पर से कम्पनी का संरक्षण हटाने का निश्चय कर लिया, किन्तु जब तक वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ कर पाता, तब तक 5 अक्टूबर, 1805 ई० को उसकी गाजीपुर में मृत्यु हो गई।

सर जार्ज बार्लो (1805-1807 ई०)
[Sir George Barlowe (1805-1807)]

लॉर्ड कार्नवालिस की मृत्यु के उपरान्त सर जार्ज बार्लो को 1805 ई० में भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। उसने भी कार्नवालिस की भाँति तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया। उसने मराठा सरदार होल्कर से 7 अक्टूबर, 1806 ई० में 'राजापुरघाट' की सन्धि कर उसके जीते हुए प्रदेश वापिस कर दिए। सिन्धिया से सन्धि कर उसके राज्य का कुछ भाग उसे वापिस कर दिया और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। वह 1807 ई० तक भारत का गवर्नर जनरल बना रहा। उसने छोटे-छोटे राजपूत राज्यों से कम्पनी का संरक्षण हटा लिया और उनके आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। **वैलोर का विद्रोह** उसके शासनकाल की एकमात्र महत्त्वपूर्ण घटना है। वैलोर के सेनापति ने जब वैलोर के सिपाहियों को अपने सिर पर एक नई पगड़ी धारण करना और ड्यूटी के समय माथे पर तिलक न लगाने का आदेश दिया तो वैलोर के सिपाहियों ने इसे अपने धर्म विरुद्ध कार्यवाही समझा। अत: 1807 ई० में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने वैलोर के दुर्ग पर अधिकार करके अनेक अंग्रेज सैनिकों का वध कर दिया। अन्त में बार्लो ने एक सेना भेजकर वैलोर के विद्रोह का दमन कर दिया। 1807 ई० में सर जार्ज बार्लो को मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया और उसके स्थान पर लॉर्ड मिण्टो को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया।

लॉर्ड मिण्टो (1807-1813 ई०)
[Lord Minto (1807-1813)]

लॉर्ड मिण्टो 1807 ई० से 1813 ई० तक भारत का गवर्नर जनरल रहा। उसे भी कम्पनी के संचालकों ने तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति के अनुसरण का आदेश देकर भारत भेजा था। किन्तु भारत में उस समय इस प्रकार की स्थिति विद्यमान थी कि तटस्थता और अहस्तक्षेप की नीति का पालन नहीं किया जा सकता था। अत: मिण्टो ने अपनी नीति में कुछ परिवर्तन किया और आवश्यकता होने पर हस्तक्षेप की नीति का भी पालन किया। वह भारत में आन्तरिक और बाह्य दोनों ही नीतियों में सफल रहा। उसने बुन्देलखण्ड में व्याप्त अराजकता को समाप्त किया और वहाँ शान्ति की स्थापना की। वह अफगानिस्तान के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने में भी सफल रहा। इसके शासनकाल में पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। मिण्टों ने 1809 ई० में महाराजा रणजीत सिंह से **'अमृतसर की सन्धि'** की। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि सतलज नदी प्रभुत्व की सीमा होगी, न रणजीत सिंह सतलज नदी के पूर्व में बढ़ेगा और न कम्पनी सतलज नदी के पश्चिम में बढ़ने का प्रयास करेगी। रणजीत सिंह ने वचन का पालन किया और पूर्व की ओर बढ़ने का कोई प्रयास नहीं किया। मिण्टो के समय में ही 1813 ई० का चार्टर एक्ट आया। जिसके अनुसार कम्पनी के चार्टर की अवधि को 20 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया। इस चार्टर से ईसाइयों को भारत में धर्म-प्रचार की अनुमति मिल गई और यहाँ गिरजाघरों की स्थापना होने लगी। 1813 ई० में लॉर्ड मिण्टो वापिस इंग्लैण्ड चला गया।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. लॉर्ड एमहर्स्ट के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the main events of the reign of Lord Amherst (1824-26).

उत्तर

लॉर्ड एमहर्स्ट के शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ
(Main Events of the Reign of Lord Amherst)

लॉर्ड एमहर्स्ट के शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **बर्मा का प्रथम युद्ध (1824-26 ई०)** [First Burma War (1824-26)]—18वीं शताब्दी के मध्य में बर्मा में क्रान्ति हुई और वहाँ अलोम्प्रास नामक साहसी व्यक्ति ने आवा नामक स्थान पर एक नए राज्य की नींव रखी। यह साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने पश्चिम में राज्य विस्तार करना प्रारम्भ किया और अराकान को विजित कर लिया। परिणामस्वरूप उसके राज्य की सीमाएँ भारत से स्पर्श करने लगीं। कुछ समय पश्चात् बर्मा की सेनाओं ने भारत के उत्तर-पूर्वी कई स्थानों पर अधिकार कर लिया; जैसे—मनीपुर, शाहपुर (चटगाँव के निकट), आसाम आदि। इससे बंगाल को खतरा पैदा हो गया। लॉर्ड एमहर्स्ट इसे सहन न कर सका। उसने पहले तो बर्मी शासन से समझौता करने का प्रयत्न किया, किन्तु अलोम्प्रा के इन्कार करने पर 28 फरवरी, 1824 ई० को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।
   लॉर्ड एमहर्स्ट ने जल तथा स्थल दोनों मार्गों से युद्ध शुरू कर दिया। बर्मा के सेनापति ने रामू नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना को पराजित कर दिया। लेकिन अंग्रेज सेनापति आर्चीबेल्ड कैम्पबल ने रंगून जीत लिया। बर्मी सेनापति महाबन्दुला ने 60 हजार सैनिकों के साथ रंगून वापिस लेने का प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रहा। इसी समय एक अन्य सेना ने बर्मी राजधानी आवा पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इसे युद्ध में पराजित होकर वापिस लौटना पड़ा। कैम्पबेल ने रंगून से आगे बढ़कर महाबन्दुला को बुरी तरह से पराजित कर दिया, उसे युद्ध में मार डाला। इसके पश्चात् प्रोम पर भी अधिकार कर लिया। महाबन्दुला की मृत्यु तथा प्रोम पर अधिकार हो जाने के फलस्वरूप बर्मा ने सन्धि की प्रार्थना की।
2. **यांडबू की सन्धि** (Treaty of Yandbu)—24 फरवरी, 1825 ई० में अंग्रेजों और बर्मा के मध्य यांडबू की सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार—(1) अराकान, मनीपुर, आसाम, कोचर, तेनासीराम के पक्ष अंग्रेजों को मिले। (2) एक अंग्रेज रेजीडेन्ट आवा दरबार में रखा गया। (3) बर्मा में अंग्रेजों को व्यापारिक सुविधाएँ मिलीं। (4) एक करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति के रूप में अंग्रेजों को मिला।
3. **बैरकपुर का सैनिक विद्रोह (1824 ई०)** [Barrackpur Revolt (1824)]—बर्मा के युद्ध के परिणामस्वरूप बैरकपुर में सैनिक विद्रोह हो गया। इसका कारण यह था कि बैरकपुर के हिन्दू सैनिकों को जब समुद्र पार बर्मा में लड़ने का आदेश दिया गया तो समुद्र पार जाना धर्म विरुद्ध समझकर उन्होंने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का दमन करने के लिए कलकत्ता से एक अंग्रेजी सेना भेजी गई, जिसने विद्रोहियों अर्थात् हिन्दू सैनिकों को चारों ओर से घेरकर उन पर गोली चलाई गई जिससे बहुत से सैनिक मारे गए। कुछ को अंग्रेजों ने प्राणदण्ड दिए तथा कुछ को कारागार में डाल दिया। अंग्रेजों ने जिस क्रूरता से इस विद्रोह का दमन किया उसकी अनेक विद्वानों ने बड़ी कटु आलोचना की है।
4. **भरतपुर का घेरा (1826 ई०)** [Seige of Bharatpur (1826)]—द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध, भरतपुर (राजस्थान) के जाट शासक ने अंग्रेजों का साथ छोड़कर मराठों का पक्ष ग्रहण किया था। जनरल लेक ने उस समय चार बार भरतपुर को विजित करने का अथक प्रयास किया था किन्तु उसे इसमें सफलता नहीं मिली थी। अत: अंग्रेज अपनी इस असफलता से अत्यधिक पीड़ित थे। अतएव भरतपुर की स्वतंत्रता उनके लिए बड़ी अपमानजनक घटना थी। 1823 ई० में भरतपुर के राजा रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् बलदेव सिंह व दुर्जनसाल के मध्य उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष छिड़ गया। अंग्रेज रेजीडेन्ट ने अपना निर्णय बलदेव सिंह के पक्ष में दे दिया और उसको सिंहासन पर बैठा दिया। बलदेव सिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने अब बलदेव के नाबालिग पुत्र को शासक बनाना चाहा लेकिन दुर्जनसाल ने बलपूर्वक दुर्ग पर कब्जा कर लिया। अत: अंग्रेजों ने सेनापति काम्बरमिअर के नेतृत्व में एक सेना भेजी। उस सेना ने भरतपुर दुर्ग का घेरा डाल दिया तथा दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार भरतपुर के अजेय दुर्ग पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इसके पश्चात् अंग्रेजों ने बलदेव सिंह के पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लॉर्ड वेलेजली की 'सहायक सन्धि' से आप क्या समझते हैं? उसके द्वारा भारत में ब्रिटिश साम्राज्य विस्तार हेतु किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए।

What do you understand by Subsidiary Alliance of Lord Wellesley? Also mention his efforts for the expansion of British Empire in India.

उत्तर

लॉर्ड वेलेजली (1798-1805 ई०)
[Lord Wellesley (1798-1805)]

26 अप्रैल, 1798 ई० को लॉर्ड वेलेजली सरजॉन शोर के पश्चात् भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। वह एक उत्साही और साहसी युवक था। जिस समय अंग्रेज यूरोप और भारत में काफी परेशानियों में फँसे हुए थे। यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट के आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना आवश्यक था अत: उसने अहस्तक्षेप की नीति को त्याग दिया। इस समय भारत में मैसूर में टीपू सुल्तान का राज्य था। जो अंग्रेजों से बदला लेने के लिए आतुर था तथा फ्रांसीसियों से चुपचाप गठजोड़ कर रहा था। मराठे भी अपनी शक्ति में वृद्धि कर रहे थे। ग्वालियर में सिन्धिया अपनी सेना को फ्रांसीसियों की देख-रेख में पुनर्गठित कर रहा था। हैदराबाद का निजाम भी अपनी सेना को यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षित कर रहा था। पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्ख अपनी शक्ति में वृद्धि कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में लॉर्ड वेलेजली ने हस्तक्षेप की साम्राज्य नीति को कियान्वित करने के लिए एक नीति से काम लिया। उसने एक सहायक सन्धि की घोषणा की। इसके अनुसार उसने भारतीय राज्यों को अंग्रेजों के साथ मित्रता के लिए आह्वान किया। यह कोई नई नीति नहीं थी। कुछ विद्वानों के अनुसार, जिनमें महादेव गोविन्द रानाडे प्रमुख है, इस नीति की शुरुआत मराठों ने की थी। अगर ध्यान से देखा जाए तो इस प्रकार की नीति क्लाइव, हेस्टिंग्स ने भी प्रयोग की थी। किन्तु इस नीति को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय वेलेजली को ही जाता है।

सहायक सन्धि (Subsidiary Alliance)

सहायक सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थीं—

1. मित्र राज्य को एक अंग्रेजी सेना अपने यहाँ रखनी होगी, जो शत्रु के आक्रमण के समय उनकी रक्षा करेगी। इस सेना का खर्च मित्र राज्य को उठाना पड़ेगा।
2. यह राज्य अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना किसी दूसरे राज्य से सन्धि नहीं करेगा।
3. वह अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकरी पर नहीं रख सकेगा। उसे अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना होगा।
4. इन शर्तों के पालन के बदले में अंग्रेज शत्रुओं से उनकी रक्षा करेंगे। सहायक सन्धि को स्वीकार करने वाले दो राज्यों में अगर परस्पर झगड़ा हो जाएगा जो अंग्रेजों का निर्णय स्वीकार करना पड़ेगा।
5. अंग्रेज सहायक सन्धि करने वाले राज्यों की आन्तरिक नीति में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

इन शर्तों से स्पष्ट था कि इन्हें स्वीकार करने वाला राज्य अंग्रेजों की सर्वेच्च सत्ता के नीचे अर्ध-स्वतंत्र की भाँति रहेगा।

सहायक सन्धि के लाभ या गुण—यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई। जिसके निम्नलिखित लाभ हुए—

1. **कम्पनी के साधनों का विस्तार**—सहायक सन्धि के द्वारा अंग्रेजों को अनेक भारतीय शक्तियों से जो धन और प्रदेश मिले उससे कम्पनी के साधनों में अत्यधिक विस्तार हुआ। कम्पनी भारत में अब सर्वोच्च सत्ता बन गई। अब उसका देशी राज्यों की बाह्य नीति पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया।
2. **सैनिक व्यय में कमी**—इस सन्धि के द्वारा वेलेजली ने अंग्रेजी सेनाओं को देशी राजाओं के यहाँ रखा। इससे जहाँ अंग्रेजी सेना में वृद्धि हुई वही उसके व्यय से भी मुक्ति मिली रही। इस प्रकार सैनिक शक्ति के विकास के साथ सैनिक व्यय में कमी आयी।
3. **फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त**—इस सन्धि की एक शर्त के अनुसार किसी भी देशी राजा को अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना विदेशियों को अपनी सेवा में रखने की अनुमति नहीं थी। इससे देशी राज्यों में फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त हो गया।

TOUCH 'n PASS

4. **कम्पनी के प्रदेश में शान्ति**—इस सन्धि के अनुसार देशी रियासतों के पारस्परिक झगड़े समाप्त हो गए जिससे वहाँ भी जनता शान्तिपूर्वक रहने लगी। अंग्रेजी साम्राज्य में लोगों का जीवन सुरक्षित हो गया। इस प्रकार कम्पनी के प्रदेशों में शान्ति स्थापित हो गई।
5. **अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार**—इस सन्धि का सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि अंग्रेजी साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया। अंग्रेजों ने अनेक देशी राज्यों को, जहाँ अच्छे शासन का प्रबन्ध नहीं था तथा उत्तराधिकार की समस्या थी, अंग्रेजी साम्राज्य में विलय कर लिया गया। इस प्रकार भारत में अंग्रेजों के साम्राज्य में अत्यधिक वृद्धि हुई।

सहायक सन्धि के दोष या हानियाँ—यह सन्धि भारतीयों के लिए बहुत ही हानिकारक रही। इस सन्धि में भारतीयों के निम्नलिखित दोष थे—

1. **देशी राज्यों की स्वतंत्रता समाप्त**—देशी राज्यों ने सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर करके एक तरीके से अपनी स्वतंत्रता, अंग्रेजी सत्ता को बेच दी। **सर टॉमस मुनरो** ने लिखा है—"राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चरित्र अथवा वह सब जो किसी देश को प्रतिष्ठित करते हैं, बेचकर सुरक्षा मोल ले ली।"
2. **देशी राज्यों का निर्बल होना**—इस सन्धि से देशी राज्य निर्बल हो गए। उनके राज्य की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। अब वे अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना न तो किसी से सन्धि कर सकते थे और न ही युद्ध कर सकते थे। वास्तव में वेलेजली की सहायक सन्धि की शर्तों पर हस्ताक्षर करते ही देशी राज्य पूर्णत: निर्बल हो गए।
3. **आर्थिक संकट**—देशी राज्यों को अपने यहाँ न केवल अंग्रेजी सेना रखनी होती थी वरन् इस सेना का खर्च भी उठाना पड़ता था, इससे देशी राज्यों में आर्थिक संकट पैदा हो गया।
4. **बेकारी की समस्या**—इस सन्धि के अनुसार देशी राज्यों को अपने यहाँ अनिवार्य रूप से अंग्रेजी सेना रखनी पड़ती थी तथा उसका खर्च भी वहन करना पड़ता था। अत: देशी राजाओं ने अपनी स्थायी सेना में कमी कर दी। फलस्वरूप देशी राज्यों में बेकारी की समस्या पैदा हो गई।
5. **भारतीय जनता के कष्टों में वृद्धि**—इस सन्धि के फलस्वरूप जहाँ देशी राज्यों में बेकारी फैली वहीं राजाओं को आर्थिक संकट की समस्या के निवारण के लिए करों में वृद्धि करनी पड़ी। अत: भारतीय जनता जो पहले से ही कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही थी अब उनके कष्टों में और वृद्धि हो गई।
6. **देशी राजाओं का विलासी तथा निष्क्रिय होना**—इस सन्धि के फलस्वरूप देशी राजा पूर्णत: कम्पनी पर आश्रित हो गए। अब उन्हें राज्य की आन्तरिक और बाह्य रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं करनी थी क्योंकि इसकी जिम्मेदारी अंग्रेजों ने अपने ऊपर ले रखी थी। ऐसी स्थिति में देशी राजाओं में निष्क्रियता बढ़ी और वे अपना सारा समय भोग विलास में व्यतीत करने लगे।

सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य—सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य निम्नलिखित हैं—

1. **हैदराबाद**—इस सहायक सन्धि की घोषणा के बाद इस व्यवस्था को स्वीकार करने वाला सर्वप्रथम हैदराबाद का निजाम था। 1798 ई० में कम्पनी तथा निजाम के मध्य सन्धि हो गई। सन्धि के अनुसार छ: बटालियन अंग्रेजी सेना हैदराबाद में रखी गई, जिसके बदले में 24 लाख 17 हजार रुपये वार्षिक व्यय निजाम ने अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार निजाम तथा कम्पनी में मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गए। चतुर्थ मैसूर युद्ध में निजाम ने टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों को सहायता प्रदान की। 1800 ई० में मैत्री को दृढ़ करने के लिए तथा सैनिक व्यय को कम करने के लिए उसने पुन: सन्धि की। जिसके अनुसार निजाम ने अंग्रेजों को वे प्रदेश दे दिए जो तृतीय मैसूर युद्ध में उसे प्राप्त हुए थे। इस प्रकार निजाम पूर्ण रूप से कम्पनी के नियन्त्रण तथा संरक्षण में आ गया और सदा के लिए अंग्रेजों का मित्र बना रहा।
2. **अवध**—इस सन्धि के अधीन आने वाला दूसरा देशी राज्य अवध था। किन्तु उसने निजाम की भाँति स्वेच्छा से सहायक सन्धि स्वीकार नहीं की। उसे आतंकित किया कि अगर वह सन्धि को स्वीकार नहीं करेगा तो उसे अपदस्थ कर दिया जाएगा। अत: 1801 ई० में बाध्य होकर उसने सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। उसने अंग्रेजी सेना को रखने के बदले रुहेलखण्ड, गोरखपुर तथा गंगा जमुना के बीच के प्रदेश अंग्रेजों को प्रदान कर दिए। इस प्रकार अवध चारों दिशाओं से अंग्रेजों से घिर गया।
3. **बड़ौदा**—बड़ौदा के मराठा शासक गायकबाड़ की शक्ति व साधन बहुत कम थे अत: उसने विवश होकर सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया।

TOUCH 'n PASS

4. **मैसूर**—चतुर्थ मैसूर युद्ध में टीपू की मृत्यु के बाद वहाँ के पुराने हिन्दू राजवंश के ही एक राजकुमार कृष्णराज को राजा बना दिया गया और उससे 1799 ई० में सहायक सन्धि कर ली गई।
5. **पेशवा**—1802 ई० में बेसीन की सन्धि से पेशवा बाजीराव द्वितीय ने, 1803 ई० में देव गाँव की सन्धि से रघुजी भोंसले ने तथा 1803 ई० में सुर्जी अर्जुन गाँव की सन्धि से सिन्धिया ने सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया, किन्तु सिन्धिया तथा भोंसले मराठा सरदारों ने अपने राज्य में सहायक सेना रखना स्वीकार नहीं किया।
6. **राजपूत राज्य**—राजपूत राज्यों जोधपुर, जयपुर, बून्दी, भरतपुर आदि राज्यों ने मराठो व पिण्डारियों से तंग आकर सहायक सन्धि स्वीकार कर ली अब इन राज्यों पर अंग्रेजों का संरक्षण स्थापित हो गया।

इस प्रकार वेलेजली की सहायक सन्धि ने भारत के बहुत बड़े भू-भाग पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया और उनकी स्थिति भारत में सर्वोच्च हो गई और उनके मुकाबले का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा।

वेलेजली के युद्ध
(Wars of Wellesley)

वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति केवल सहायक सन्धियों तक ही सीमित न रही, वरन् उसके अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए युद्धों का भी सहारा लिया।

चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध (1799 ई०) [Four Anglo-Mysore War (1999)]

कारण—तृतीय मैसूर युद्ध में पराजित हो जाने के कारण टीपू मन ही मन अंग्रेजों से इसका बदला लेने के लिए तैयार हो रहा था। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तुर्की से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। वेलेजली टीपू की इन तैयारियों से बहुत चिन्तित हुआ। विशेषतया फ्रांसीसियों के कारण जो उस समय नेपोलियन बोनापार्ट के नेतृत्व में बहुत शक्तिशाली हो गए थे। अत: वेलेजली ने टीपू के राज्य को उन्मूलित करने का निश्चय कर लिया। निजाम अंग्रेजों की सहायक सन्धि स्वीकार करने के कारण मित्र राज्य था। मराठों को वेलेजली ने यह लालच दिया कि विजित प्रदेश का कुछ भाग पेशवा को दे दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त वेलेजली ने मैसूर राज्य के पदाधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार पूर्ण तैयारी करने के बाद सहायक सन्धि का प्रस्ताव टीपू के पास भेजा गया, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। अत: वेलेजली ने टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध—वेलेजली ने 1799 ई० में टीपू पर आक्रमण कर दिया। उसे इस आक्रमण में मराठों व निजाम का सहयोग मिल रहा था। वह स्वयं युद्ध के निरीक्षण के लिए मद्रास पहुँच गया, मैसूर को दो ओर से घेरने के लिए एक सेना मद्रास से जनरल हेस्टिंग्स के नेतृत्व में भेजी गई और दूसरी सेना बम्बई से आई। फलस्वरूप टीपू को श्रीरंगपट्टम के किले में शरण लेनी पड़ी। जहाँ वह युद्ध करता हुआ 4 मई, 1999 ई० को वीरगति को प्राप्त हो गया और मैसूर पर अंग्रेजों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।

युद्ध के पश्चात् मैसूर का उत्तर-पूर्व का कुछ भाग सहायता के बदले निजाम को दे दिया गया और मध्यवर्ती प्रदेश पेशवा को दे दिया गया। पेशवा ने इस प्रदेश को लेने से मना कर दिया। अत: अंग्रेजों ने इसे भी अपने अधिकार में रख लिया। कनारा, कोयम्बटूर तथा श्रीरंगपट्टम के जिले भी अंग्रेजों ने अपने पास रखे। शेष बचे हुए थोड़े से प्रदेश में मैसूर राज्य का नाम रखने के लिए वहाँ के पहले हिन्दू राजवंश के राजकुमार कृष्णराज को गद्दी पर बैठा दिया। कृष्ण राज से भी सहायक सन्धि स्वीकार करा ली गई। इस प्रकार मैसूर राज्य अंग्रेजों की अधीनता में चला गया।

टीपू सुल्तान का मूल्यांकन (Appraisal of Tipu Sultan)

टीपू सुल्तान अपने पिता की मृत्यु के बाद 1782 ई० में गद्दी पर आसीन हुआ और 1799 ई० तक मैसूर राज्य का सुल्तान रहा। टीपू योग्य पिता का योग्य पुत्र था। कुछ इतिहासकारों ने टीपू को अन्यायी, निर्दयी, निष्पक्ष रूप से अध्ययन करने पर पता चलता है कि टीपू विद्वान, उच्च चरित्र और सहनशील व्यक्ति था। टीपू के चरित्र का चित्रण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है—

1. **वीर योद्धा तथा कुशल सेनापति**—टीपू सुल्तान एक वीर योद्धा और कुशल सेनापति था। टीपू ने अपने युद्ध-कौशल का परिचय दिया। टीपू सुल्तान ने तृतीय मैसूर महर ने जनरल मीडोज का डटकर सामना किया।
   "अन्त में हारकर स्वयं लॉर्ड कार्नवालिस को सेना का संगठन करना पड़ा। टीपू ने चतुर्थ मैसूर युद्ध में अंग्रेजों का अन्तिम समय तक वीरतापूर्वक सामना किया तथा युद्ध में लड़ते हुए 4 मई, 1799 ई० को वीरगति को प्राप्त हुआ।"
2. **विद्वान और प्रजा सेवक**—टीपू सुल्तान फारसी, उर्दू और तेलुगू भाषाओं का जानकार था। वह बहुत मेहनती शासक था, टीपू ने प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए कोई कसर न उठा रखी। टीपू ने अपना समस्त जीवन युद्ध में बिता दिया और प्रजा के समक्ष सेवक के रूप में प्रसिद्ध रहा।

TOUCH 'n' PASS

3. **स्वतन्त्रता का रक्षक**—टीपू सुल्तान स्वतन्त्रता का रक्षक था। टीपू सुल्तान में कूट-कूट कर देशभक्ति भरी हुई थी। टीपू मैसूर राज्य के लिए मृत्युपर्यन्त संघर्ष करता रहा। टीपू सुल्तान ने मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। किन्तु अंग्रेजों के समक्ष घुटने टेककर अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों के पास गिरवी रखने से मना कर दिया। टीपू सुल्तान की मौत एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। **डॉ० जी०एस० छाबड़ा** लिखते हैं कि 'टीपू स्वतन्त्रता का पुजारी था तथा ब्रिटिश गुलामी को किसी भी रूप या रंग में पसन्द नहीं करता था। वह समझौतों में विश्वास नहीं करता था और शत्रु के समक्ष घुटने टेकने की बजाय एक साधारण सैनिक की भाँति मर जाना पसन्द करता था।''
4. **धर्मसहिष्णु**—कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों ने टीपू सुल्तान पर धर्मान्धता का आरोप लगाया है। किन्तु टीपू सुल्तान पर धर्मान्धता का आरोप लगाना न्यायसंगत नहीं है। वह योग्यता को दिखाते हुए हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त करता था। पूर्णिया व कृष्णराज उच्च पदो पर आसीन थे। वह हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव करता था और हिन्दू-मन्दिरों को दान-दक्षिणा भी देता था।
5. **योग्य शासक**—टीपू सुल्तान एक योग्य शासक था। उसने प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार किए और सेना, राजस्व, व्यापार आदि के प्रबन्ध में नवीनता लाने का प्रयत्न किया। **मुर्रे** का कथन है कि "जब कोई व्यक्ति एक नवीन यात्रा करते हुए इसे अच्छा कृषि सम्पन्न, नवनिर्मित नगरों, विस्तृत व्यापार और प्रत्येक समृद्धिशील वस्तु से युक्त देखेगा तो वह इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि वह देश एक ऐसी सरकार के अधीन है जो जनता के मन के अनुकूल है यह टीपू के देश का चित्र है। यही हमारा निष्कर्ष है और उसकी सरकार के प्रति हमारी आदर की भावना है।

वेलेजली और मराठे (Wellesley and the Marathas)

वेलेजली एक साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था। मराठे ही अंग्रेजों के सबसे शक्तिशाली शत्रु थे। वेलेजली ने मराठों की शक्ति का दमन करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किए। शीर्ष ही उसे इसका अवसर मिल गया। 1800 ई० में नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई। वह एक प्रतिभाशाली तथा कूटनीतिज्ञ सरदार था और जब तक वह जीवित रहा तब तक अपने दूरदर्शिता पूर्ण नीति से मराठों के आपसी संघर्ष को दबाता रहा। उसके मरते ही पूना की राजनीति में प्रभुत्व स्थापित करने के लिए दौलत राव सिन्धिया, जसवन्त राव होल्कर तथा पेशवा बाजीराव द्वितीय में त्रिकोणीय संघर्ष आरम्भ हो गया। इस संघर्ष में सिन्धिया तथा पेशवा ने मिलकर होल्कर का विरोध करना शुरू कर दिया। होल्कर ने राघोबा के दत्तक पुत्र के बेटे विनायक राव को पेशवा बना दिया। पेशवा बाजीराव द्वितीय अंग्रेजों की शरण में चला गया। वेलेजली इसी अवसर की तलाश में था। उसने पेशवा को सहायता का आश्वासन दिया फलतः पेशवा से सहायक सन्धि स्वीकार कर ली जो बेसीन की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

बेसीन की सन्धि (1802 ई०)—इस सन्धि के अनुसार—दोनों ने एक-दूसरे के राज्य की रक्षा करने तथा सहायता देने का वचन दिया। पेशवा ने सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया और उस सेना के खर्च कुछ जिले जिनकी वार्षिक आय लगभग 26 लाख रुपये थी कम्पनी को दे दिए। पेशवा ने यह भी स्वीकार किया कि वह कभी यूरोपीय को अंग्रेजों की आज्ञा के बिना अपने राज्य में नहीं रखेगा। पेशवा ने यह भी वचन दिया कि वह भविष्य में अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना युद्ध या सन्धि नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त पेशवा ने सूरत से अपना दावा त्याग दिया। इस सन्धि से मराठों की शक्ति व प्रतिष्ठा को बहुत अधिक धक्का लगा, वहाँ अंग्रेजों की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई।

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1803-06 ई०) [Second Anglo-Maratha War (1803-06)]

पेशवा द्वारा बेसीन भी सन्धि को स्वीकार कर लेने के समाचार से मराठा सरदार बहुत क्रुद्ध हुए। उनके स्वाभिमान को बहुत ठेस पहुँची। उनका कहना था कि पेशवा ने मराठा सरदारों की सलाह किए बिना मराठों की स्वतन्त्रता व देश को अंग्रेजों के हाथों बेच दिया। परन्तु इस आपत्तिकाल में भी मराठा सरदार संयुक्त मोर्चा बनाने में असफल रहे। यद्यपि सिन्धिया तथा भोंसले संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए प्रयत्नशील थे किन्तु होल्कर तथा गायकवाड़ ने उन्हें सहयोग प्रदान नहीं किया। फिर भी दौलत राव सिन्धिया तथा रघुजी भौंसले ने मिलकर युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध दक्षिण और उत्तर की दोनों दिशाओं में हुआ, दक्षिण में युद्ध का नेतृत्व वेलेजली कर रहा था और उत्तर में जनरल लेक ने किया। दक्षिण में वेलेजली ने साधारण प्रयासों से अहमद नगर पर अधिकार कर लिया और तब आगे बढ़कर उसने संयुक्त सेनाओं को परास्त कर दिया। कुछ समय पश्चात् अरगाँव नामक स्थान पर वेलेजली ने भोंसले की सेनाओं को पुनः हराया। इससे घबराकर रघुजी भोंसले ने अंग्रेजों से 17 दिसम्बर, 1803 ई० में देवगाँव की सन्धि कर ली। इस सन्धि के द्वारा भोंसले ने कटक प्रान्त तथा वर्धा नदी के पश्चिम का भाग अंग्रेजों को दे दिया, अपनी राजधानी नागपुर में एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर लिया। किन्तु सहायक सेवा रखना स्वीकार नहीं किया।

TOUCH 'n' PASS

उत्तर भारत में जनरल लेक का अभियान जारी था उसने कानपुर से रवाना होकर अलीगढ़ पर अधिकार किया। वहाँ से वह दिल्ली की ओर बढ़ा और मार्ग में सिन्धिया की सेना को पराजित किया। इस प्रकार दिल्ली पर अंग्रेजी अधिकार स्थापित हो गया और अन्धा मुगल सम्राट शाहआलम अंग्रेजों के हाथ में आ गया। आगरे का भी शीघ्र पतन हो गया। इससे दिल्ली व आगरे पर से मराठो का नियन्त्रण समाप्त हो गया और अंग्रेज भारत की राजधानी के स्वामी बन गए। लेक आगरा से अलवर की ओर बढ़ा जहाँ उसका सिन्धिया से पुन: युद्ध हुआ। इस युद्ध में दौलत राव सिन्धिया की पराजय हुई और उसने घबराकर अंग्रेजों से 30 दिसम्बर, 1803 ई० में 'सुर्जी अर्जुन गाँव' की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार सिन्धिया ने अपने राज्य के कई जिले अंग्रेजों को सौंप दिए, सिन्धिया ने मुगल सम्राट, पेशवा, निजाम, गायकवाड़ तथा राजपूत राज्यों से अपने सभी दावे त्याग दिए, अपनी राजधानी में ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया और यह वचन भी दिया कि वे अंग्रेज-विरोधी किसी शत्रु को अपने राज्य की सेना में नहीं रखेगा। भोंसले की भाँति सिन्धिया ने भी सहायक सेना रखने से इन्कार कर दिया, किन्तु बाद में वह राज्य की सीमा के निकट सहायक सेना रखने के लिए तैयार हो गया। द्वितीय मराठा युद्ध का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि अब मराठा-संघ के दो शक्तिशाली सरकार अर्थात् सिन्धिया और भौंसले कम्पनी के सम्मुख नतमस्तक हो गए और अब उनकी ओर से किसी भी प्रकार भय समाप्त हो गया। बाजीराव द्वितीय, जो अंग्रेजों की कटपुतली था, पेशवा स्वीकार कर लिया गया। अब पंजाब को छोड़कर सारा भारत ही उनके प्रभाव में आ गया था।

द्वितीय मराठा युद्ध में मराठों के दो सरदार सिन्धिया तथा भोंसले पूर्णरूप से पराजित हो गए थे। किन्तु होल्कर इस युद्ध से बिल्कुल अलग रहा था। अंग्रेज जो देवगाँव की सन्धि तथा सुर्जी अर्जुन गाँव की सन्धि से अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ कर चुके थे, अब होल्कर से युद्ध करने का बहाना खोजने लगे। इसी समय एक घटना घटी। होल्कर द्वितीय मराठा युद्ध में मराठों की पराजय से बहुत दु:खी था। उसने किसी अपराध में अपने राज्य में तीन अंग्रेज अधिकारियों को मृत्युदण्ड दे दिया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों के अधीनस्थ जयपुर राज्य में लूटपाट की। इन घटनाओं का बहाना लेकर अंग्रेजों ने होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आरम्भ में होल्कर को काफी सफलता मिली। अत: उत्साहित होकर उसने अक्टूबर, 1804 ई० में दिल्ली का घेरा डाल दिया। 8 अक्टूबर से 14 अक्टूबर तक होल्कर दिल्ली पर घेरा डाले रहा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। मराठों से दिल्ली की रक्षा का श्रेय कैप्टन डॉक्टर लोनी को जाता है विवश होकर होल्कर को घेरा उठाना पड़ा। 1804 ई० में डीग तथा फर्रुखाबाद के युद्ध में होल्कर की सेना पराजित हुई। इसी समय जनरल लेक ने भरतपुर पर आक्रमण कर दिया। भरतपुर का जाट राजा रणजीत सिंह होल्कर का मित्र था। भरतपुर का दुर्ग मिट्टी का बना हुआ था और सुदृढ़ था कि उसकी गणना अजेय दुर्गों में की जाती थी। जनरल लेक ने चार बार प्रयास किया किन्तु भरतपुर के दुर्ग को जीतने में असफल रहा। अत: विवश होकर उसे रणजीत सिंह से 10 अप्रैल, 1805 ई० में सन्धि करनी पड़ी। इस युद्ध में जनरल मानसन तथा लेक जैसे वीर सेनापतियों की पराजय और सिन्धिया के विद्रोह को देखकर कम्पनी के डायरेक्टर घबरा गए और उन्होंने समझा कि मराठों से टक्कर लेने में कहीं वे भारत का नवप्राप्त राज्य ही न खो बैठें। अत: उन्होंने वेलेजली को वापिस इंग्लैण्ड बुला लिया। उसके स्थान पर लॉर्ड कार्नवालिस को पुन: गवर्नर जनरल नियुक्त कर भेजा। किन्तु लॉर्ड कार्नवालिस को 5 अक्टूबर, 1805 ई० में मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् सर जार्ज बार्लो को गवर्नर जनरल बना कर भेजा गया। उसने अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया तथा सिन्धिया, होल्कर और भोंसले से समझौता किया। 17 जनवरी, 1806 ई० में होल्कर के साथ 'राजपुर घाट' की सन्धि की।

देशी राज्यों का अंग्रेजी राज्य में विलय (Merger of Local Kingdoms in British State)

वेलेजली ने न केवल सहायक सन्धि के माध्यम से अंग्रेजी राज्य तथा उसकी प्रभुत्व शक्ति का विस्तार किया वरन् कई देशी राजाओं तथा नवाबों को पेंशन देकर उनके राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला भी लिया। इस तरह से अंग्रेजी राज्य मिलाए जाने वाले राज्य थे तंजौर (25 अक्टूबर, 1799 ई०) सूरत (मार्च, 1800 ई०) कर्नाटक (31 जुलाई, 1801 ई०) तथा फरुखाबाद।

ब्रिटिश राज्य का विस्तार (Expansion of British State)

आर्थर वेलेजली को भले ही मराठों के तीसरे युद्ध में सफलता प्राप्त न होने के कारण वापिस बुला लिया गया हो किन्तु वेलेजली ने भारत में अंग्रेजी राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। 1805 ई० में कम्पनी का राज्य भारत को पश्चिमी तट के साथ-साथ सिन्धु नदी के मुहाने से कन्याकुमारी तक, फिर उत्तर-पूर्व बंगाल की खाड़ी के साथ-साथ म्याँमार (बर्मा) की सीमा तक, उत्तर भारत में कम्पनी का राजनीतिक अधिकार बंगाल से सिन्ध के मरुस्थल तक फैल गया। अवध, नागपुर, ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर आदि देशी राज्यों ने कम्पनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया था।

TOUCH 'n' PASS

वेलेजली की उपलब्धियों का मूल्यांकन (Appraisal of Wellesley's Achievement)

लॉर्ड आर्थर वेलेजली भारत के महान गवर्नर जनरलों में से एक था। उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति से अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार किया। अंग्रेजों के प्रबल शत्रु टीपु सुल्तान को पूर्णत: पराजित किया। मराठो पर भी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। देशी राज्यों की सहायक सन्धि के द्वारा शक्तिहीन तथा निर्बल बना दिया तथा कुछ राज्यों के राजाओं व नवाबों को पेशन देकर उनका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इसके अतिरिक्त भारत में फ्रांसीसी प्रभाव को समाप्त कर दिया। पी०ई० राबर्ट्स ने लिखा है कि "वेलेजली भारत के महान शासकों में से एक था केवल क्लाइव, वॉरेन हेस्टिंग्स तथा डलहोजी की उसकी तुलना कर सकते हैं। वास्तविक सफलताओं में वह सफलतम था। "ओवन ने वेलेजली के उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "वेलेजली ने भारत में अंग्रेजी राज्य को अंग्रेजों के भारत के राज्य में परिणित कर दिया।"

प्र.2. लॉर्ड डलहौजी की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। अंग्रेजों के साम्राज्य विस्तार के लिए इन्होंने किन उपायों को अपनाया वर्णन कीजिए?

Describe the achievement of Lord Dalhousie. Explain the means he employed to expand the British empire?

उत्तर

लॉर्ड डलहौजी (1848-56 ई०)
[Lord Dalhousie (1848-56)]

लॉर्ड हार्डिंग के जाने के पश्चात् जनवरी, 1848 ई० में डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। वह उग्र साम्राज्यवादी, महान, सुधारक तथा अग्रगामी नीति का समर्थक था। उसका उद्देश्य कम्पनी के राजनीतिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक हितों की सुरक्षा करना था।

डलहौजी की नीति का स्वरूप (Nature of Dalhousie's Policy)

अपनी साम्राज्यवादी नीति को सफलीभूत बनाने के लिए डलहौजी ने चार उपायों से काम लिया—(क) युद्ध की नीति, (ख) राज्य हड़पने की नीति, (ग) कुशासन का आरोप लगाकर राज्यों का अपहरण, (घ) पदों तथा पेन्शनों की समाप्ति।

(क) युद्ध की नीति—लॉर्ड डलहौजी ने युद्ध की नीति द्वारा निम्नलिखित राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया—

द्वितीय सिक्ख युद्ध (1848-49 ई०)—प्रथम सिक्ख युद्ध में अंग्रेजों ने कूटनीति तथा विश्वासघात द्वारा विजय प्राप्त की थी। सिक्ख इसे पराजय नहीं मानते थे। उधर अंग्रेजी रेजीडेंट का प्रशासन में हस्तक्षेप भी सिक्खों को असह्य था। सिक्ख लोग अंग्रेजों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। फलस्वरूप द्वितीय सिक्ख युद्ध हुआ जिसके प्रमुखक कारण निम्नलिखित थे—

1. अल्प वयस्क दिलीप सिंह की संरक्षिका रानी झिन्दन तथा उसका मन्त्री लाल सिंह ब्रिटिश रेजीडेन्ट के विरोध के फलस्वरूप पदच्युत कर दिए गए थे। इससे रानी जिन्दा और मन्त्री लाल सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध विषैला प्रचार आरम्भ कर दिया जो अंग्रेजों में आक्रोश पैदा कर रहा था।
2. ब्रिटिश रेजीडेन्ट लारेन्स महत्त्वपूर्ण पदों पर सिक्खों के स्थान पर अंग्रेजों की नियुक्ति करने में लगा था जिससे सिक्ख क्रोधित हो गए।
3. सिक्ख सेना को सीमित कर दिया। सैनिकों का वेतन कम कर दिया। इससे सिक्खों में असन्तोष फूट पड़ा।
4. अंग्रेजों द्वारा किए गए सामाजिक सुधार भी असन्तोष का कारण बने। सती प्रथा निषेध, अंग-भंग दण्ड निषेध आदि समाज सुधार के कार्य सिक्खों को पसन्द नहीं थे। वे परम्पराओं में छेड़-छाड़ पसन्द नहीं करते थे।
5. युद्ध का तात्कालिक कारण मुल्तान के शासक मूलराज की पदच्युति का प्रयास था। अंग्रेजों के षड्यन्त्रों से सिक्ख परेशान थे। सिक्ख सैनिकों ने जब देखा की मूलराज को त्याग-पत्र देना पड़ रहा है तो वे क्रोधित हो गए और उन्होंने दो अंग्रेज अधिकारियों की हत्या कर बगावत का झंडा बुलंद कर दिया।

युद्ध का घटना चक्र—अक्टूबर, 1848 ई० में लॉर्ड डलहौजी ने युद्ध की घोषणा कर दी। चिनाव पर स्थित रामनगर स्थान पर शेर सिंह से युद्ध किया। किसी भी पक्ष की विजय निश्चित नहीं हो सकी। जनवरी, 1849 ई० में चिलियान वाला नामक स्थान पर भीषण संग्राम हुआ। अंग्रेज पराजित हुए और उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी। 22 जनवरी, 1849 ई० में अंग्रेज सेना विजयी रही। मूलराज बन्दी बना लिया गया। शेरसिंह तथा अन्य सिक्ख सरदारों ने पराजय स्वीकार कर ली।

युद्ध के परिणाम—(क) लॉर्ड डलहौजी ने 29 मार्च, 1849 ई० में पंजाब को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। (ख) महाराजा दिलीप सिंह को पचास हजार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देकर इंग्लैण्ड भेज दिया। (ग) पंजाब का प्रशासन चलाने के लिए तीन

TOUCH 'n PASS

कमिश्नरों की एक विशिष्ट समिति बना दी गई। (घ) विद्रोही सरदारों की जागीरें छीन ली गईं और कुछ को जेल में डाल दिया गया। (ङ) सिक्खों को निरस्त्र कर दिया गया। (च) प्रान्त का शासन प्रत्यक्ष रूप से गवर्नर-जनरल के अनुशासन में आ गया। (छ) कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा सुरक्षित हो गई।

सिक्किम पर आक्रमण—भारत के उत्तर-पूर्व में हिमालय के चरणों में नेपाल तथा भूटान के मध्य में सिक्किम का छोटा राज्य स्थित था। सिक्किम के अन्वेषण के लिए यात्रा कर रहे दो अंग्रेज अफसरों को सिक्किम के राजा ने गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। जब राजा ने उन्हें छोड़ने से मना कर दिया तो युद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजी सेना द्वारा सिक्किम पर अधिकार कर लिया गया तथा 1849 ई० में सिक्किम को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

बर्मा का द्वितीय युद्ध (1852 ई०)—अपनी विस्तारवादी नीति के अन्तर्गत लॉर्ड डलहौजी ने बर्मा को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का निश्चय किया। उसे कारण मिल गया और युद्ध आरम्भ हो गया।

युद्ध के कारण—बर्मा के द्वितीय युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. बर्मा का नया राजा थेरावादी यांडबू की सन्धि को स्वीकार करने के लिए तत्पर न था।
2. यांडबू की सन्धि के फलस्वरूप रंगून में बहुत से अंग्रेज व्यापारी बस गए थे जिसके लिए बर्मा सरकार को शिकायत थी कि वे कर देने में आनाकानी करते थे।
3. इधर अंग्रेज व्यापारी अपनी क्षति की शिकायत करते थे जिसकी माँग डलहौजी ने बर्मा सरकार से की।
4. यद्यपि बर्मा सरकार ने डलहौजी की माँग को स्वीकार कर लिया था परन्तु लॉर्ड डलहौजी तो युद्ध करने पर तुला था। अंग्रेजी सेना ने बर्मा के राजा के एक जहाज को पकड़ लिया और बन्दरगाह के अन्दर भेज दिया। विवश होकर बन्दरगाह के संरक्षकों को गोली चलानी पड़ी। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में अंग्रेजों ने रंगून नगर पर गोलाबारी शुरू कर दी।

युद्ध का घटना चक्र—रंगून पर अंग्रेजों ने भीषण आक्रमण किया और लूटमार की। इसके एक महीने बाद अंग्रेजी सेना ने ईरावदी नदी के डेल्टा में स्थित बेसीन पर अपना अधिकार जमा लिया। अक्टूबर के महीने में प्रोम पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। दक्षिणी बर्मा पर आधिपत्य कर डलहौजी उत्तर की ओर बढ़ा। 20 दिसम्बर को एक घोषणा के द्वारा पीगू प्रान्त को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इस सम्बन्ध में **आरनोल्ड** का कथन है कि बर्मा का द्वितीय युद्ध किसी भी दशा में न्यायोचित स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(ख) राज्य हड़पने की नीति—डलहौजी उग्र साम्राज्यवादी था। उसने अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए 'गोद-निषेध' नियम बनाकर अनेक राज्यों को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। 'गोद-निषेध' नियम का अर्थ यह था कि कोई भी भारतीय राजा सन्तानहीन होने पर ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी को उत्तराधिकारी बनाने के लिए गोद नहीं ले सकता था। सन्तानहीन राजाओं की मृत्यु के पश्चात् उनके राज्य पर कम्पनी का अधिकार माना जाता था। डलहौजी ने अपनी इस गोद निषेध नीति के अन्तर्गत निम्न सात राज्यों को कम्पनी के राज्य में मिला लिया था—

1. **सतारा**—सन् 1848 ई० में सतारा के राजा की मृत्यु के उपरान्त मृत्यु से पूर्व गोद लिए बालक को लॉर्ड डलहौजी ने उत्तराधिकारी मानने से इंकार कर दिया। गोद-निषेध नीति से सतारा को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। उसका यह कार्य बहुत निन्दनीय था।
2. **नागपुर**—सन् 1853 ई० में नागपुर के राजा राघोजी का स्वर्गवास हो गया। उसने डलहौजी के पास एक आवेदन पत्र गोद लेने हेतु भेजा था परन्तु इसके उत्तर आने से पूर्व ही राजा का देहावसान हो गया। राजा की पूर्व इच्छानुसार रानी ने उसके अत्यन्त निकटवर्ती सम्बन्धी यशवन्तराव को गोद लिया परन्तु डलहौजी ने यह कहकर कि बिना कम्पनी की पूर्व स्वीकृति के यह असम्भव है, नागपुर राज्य को कम्पनी के राज्य में मिला लिया।
3. **झाँसी**—1853 ई० में झाँसी के गंगाधर राव की मृत्यु हो गई। उसने मृत्यु से पूर्व कम्पनी सरकार से आज्ञा लेकर दामोदर राव नामक बालक को गोद ले लिया था लेकिन डलहौजी ने दामोदर राव को अवैध घोषित कर दिया तथा रानी लक्ष्मीबाई को हटाकर झाँसी को भी ब्रिटिश राज्य में मिला लिया।
4. **सम्भलपुर**—उड़ीसा का यह राज्य पहले भोंसलों के प्रभुत्व में था। भोंसलों के पतनोपरान्त यह राज्य कम्पनी के प्रभुत्व में आ गया। यहाँ के राजा के भी कोई पुत्र न था और न उसने किसी को गोद ही लिया था। फलस्वरूप सन् 1849 ई० में इसे भी डलहौजी ने कम्पनी के राज्य में मिला लिया।
5. **जैतपुर**—बुन्देलखण्ड में स्थित इस राज्य के राजा के भी कोई पुत्र न था। अतएव उसकी मृत्यु उपरान्त 1849 ई० में उसके राज्य को भी कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया।

TOUCH 'n' PASS

6. **बघात**—पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में स्थित यह अत्यन्त छोटा राज्य था। लॉर्ड डलहौजी ने इसे भी गोद निषेध नीति के तहत अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।
7. **उदयपुर**—यह राज्य मध्य-प्रान्त में स्थित था। राजा का और पुत्र न था। राजा की मृत्यु के उपरान्त सन् 1852 ई० में इसे भी कम्पनी के राज्य में मिला लिया।

(ग) कुशासन का आरोप लगाकर राज्यों का अपहरण—अनेक राज्यों को अनुचित एवं अनैतिक ढंग से हड़प कर डलहौजी ने कुशासन का आरोप लगाकर अन्य अनेक राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। यह आरोप लगाकर उसने निम्नलिखित राज्यों को अंग्रेजी राज्य में मिलाया—

1. **बरार**—बरार हैदराबाद के निजाम के अधीन था। वहाँ प्राय: हिन्दुओं और मुसलमानों में झगड़ा चलता रहता था। इन झगड़ों को समाप्त करने के लिए अंग्रेजों ने एक सेना नियुक्त कर दी। एक सहायक सेना वहाँ पहले भी तैनात थी। दोनों सेनाओं का व्यय-भार निजाम को ही सहन करना पड़ा। इस व्यय को निजाम समय पर नहीं दे पाता था। इस बहाने को लेकर डलहौजी ने निजाम से बरार बलपूर्वक छीन लिया।
2. **अवध**—अवध के नवाब वाजिद अजीशाह पर डलहौजी ने कुशासन का आरोप लगाया। ब्रिटिश रेजीडेण्ट आउटरम ने नवाब से भेंट की और उससे एक ऐसे पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा जिसमें लिखा था कि नवाब स्वेच्छा से कम्पनी को अपना राज्य हस्तान्तरित करने को तैयार है। नवाब के हस्ताक्षर करने के इंकार करने पर कम्पनी की सहायक सेना ने बलपूर्वक लखनऊ के महलों में प्रवेश कर लिया। लूटमार की, बेगमों को अपमानित किया और नवाब को बन्दी बनाकर कलकत्ते भेज दिया। 13 फरवरी, 1856 ई० की एक घोषणा द्वारा डलहौजी ने अवध को भी हड़प कर अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(घ) पदों तथा पेन्शनों की समाप्ति—डलहौजी ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के अन्तर्गत देशी राजाओं को उनकी उपाधियों तथा पेन्शनों से वंचित करने का निश्चय किया। डलहौजी की इस नीति का क्रियात्मक स्वरूप निम्नलिखित था—

1. **पेशवा की पेन्शन**—पेशवा बाजीराव द्वितीय की पेन्शन आठ लाख पौंड वार्षिक थी। 1853 ई० में उसका देहावसान हो गया। बाजीराव ने नाना साहब को गोद ले लिया था। नाना साहब ने डलहौजी से अपने को पेशवा की पेन्शन का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेने की प्रार्थना की। डलहौजी ने नाना साहब की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और पेशवा की आठ लाख की वार्षिक पेन्शन उसे देने से इंकार कर दिया।
2. **कर्नाटक का नवाब**—सन् 1853 ई० में कर्नाटक के नवाब का परलोकवास हो गया। उसकी कोई सन्तान नहीं थी। नवाबी समाप्त करने का यह अच्छा अवसर था। कर्नाटक की वास्तविक सत्ता पहले ही कम्पनी के हाथ में थी, नवाब का पद केवल शेष था। नवाब का पद बनाए रखने से उसका रदबार षड्यंत्र तथा कुचक्र का केन्द्र बन सकता था। फलस्वरूप डलहौजी ने नवाब के पद की समाप्ति कर कर्नाटक को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।
3. **तंजौर का राजा**—तंजौर का राजा कर्नाटक के नवाब की भाँति बिना राज्य का राजा था। 1855 ई० में तंजौर के राजा शिवाजी राव का परलोक वास हो गया। उसके कोई पुत्र न था। डलहौजी ने उसके वंश के किसी भी व्यक्ति को राजा की उपाधि देना उचित नहीं समझा। इस प्रकार तंजौर के प्राचीन राजवंश का भी खात्मा कर दिया।
4. **मुगल सम्राट**—डलहौजी ने मुगल सम्राट के पद को भी समाप्त करने का निश्चय किया। यद्यपि कम्पनी के संचालक इस मत से सहमत नहीं थे परन्तु डलहौजी ने अपना निश्चय नहीं बदला। उसने बहादुरशाह के एक पुत्र को अपनी ओर मिलाकर यह वचन ले लिया कि यदि वह युवराज बना दिया जाएगा तो वह दिल्ली का लालकिला खाली कर देगा और जहाँ अंग्रेज कहेंगे वहाँ वह जाकर रहने लगेगा।

इस प्रकार उपरोक्त चार उपायों से निन्दनीय कूटनीति का सहारा लेकर डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभुत्व का विस्तार किया। अत: उसके सम्बन्ध में यह कथन उचित ही है कि "लॉर्ड डलहौजी साम्राज्यवादी नीतियों का पोषक था।"

लॉर्ड डलहौजी के सुधार
(Reforms of Lord Dalhousie)

लॉर्ड डलहौजी ने साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ अनेक सुधार भी किए। इसी कारण उसे आधुनिक भारत के निर्माताओं में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसके शासन-काल में निम्नलिखित सुधार किए गए—

1. **सैनिक सुधार**—डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति से कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार हो गया। चूँकि साम्राज्य विस्तार और नियन्त्रण के लिए सुसंगठित एवं विशाल सेना की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए उसने सैन्य व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण सुधार

किए। मेरठ को सेना का केन्द्र और शिमला को फौजी छावनी का केन्द्र बनाया। भारतीय सैनिकों पर विश्वास न करने के कारण भारतीय सैनिकों की संख्या कम की और उन्हें इधर-उधर बिखरा दिया जिससे वे षड्यन्त्र न रच सकें। गोरखों को भर्ती कर उनकी अलग सेना बना दी। पंजाब के लिए भी अलग सेना बनाई।

2. **यातायात के साधनों में वृद्धि**—सड़कों तथा रेलों की व्यवस्था करके डलहौजी ने यातायात के साधनों में वृद्धि की। सैनिक दृष्टिकोण से भी इस व्यवस्था की अत्यन्त उपयोगिता थी। इस दिशा में डलहौजी का सबसे महत्त्वपूर्ण कदम भारत में रेल का आरम्भ करना था। 1853 ई० में अपने प्रसिद्ध 'रेलवे पत्र' में उसने रेलवे के विकास की एक योजना बनायी। इस योजना के तहत बम्बई से थाने के बीच पहली रेल लाईन 1854 ई० में चालू की गई। जिन अंग्रेज कम्पनियों को रेलों व सड़कों का ठेका दिया गया, उन्होंने अपार सम्पत्ति अर्जित की।
3. **व्यवसायिक सुधार**—लॉर्ड डलहौजी उन्मुक्त व्यापार (Free Trade) का समर्थक था। अत: उन्मुक्त व्यापार का सिद्धान्त भारत में लागू किया गया। भारत के सभी बन्दरगाह सबके लिए खोल दिए गए। फलत: समुद्र तट का सारा व्यापार तथा कारोबार अंग्रेज पूँजीपतियों के हाथ में आ गया और भारतीयों की पूँजी तथा व्यवसाय पर कठोर आघात लगा। भारतीय कारोबार नष्ट हो गया। भारतवासी केवल कृषि पर आधारित हो गए और उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई।
4. **सार्वजनिक निर्माण-विभाग का संगठन**—सार्वजनिक निर्माण-विभाग की स्थापना लॉर्ड डलहौजी का महत्त्वपूर्ण कार्य था। पुनर्संगठित इस विभाग ने नहरों, सड़कों तथा पुलों का निर्माण अपने हाथ में ले लिया। ग्राण्ड ट्रंक रोड का निर्माण डलहौजी के समय में हुआ और गंग नहर भी उसी के समय में पूरी हुई जिससे कृषि की उन्नति हुई और सरकारी आय में वृद्धि हुई।
5. **डाक-व्यवस्था का संगठन**—डलहौजी ने 1854 ई० में डाक व्यवस्था सम्बन्धित एक्ट पास किया जिससे भारत में एक उचित डाक प्रणाली की व्यवस्था हुई। डलहौजी ने टिकिट व्यवस्था चलाई। समस्त देश में एक तौला तक वजन वाले पत्र भेजने के लिए केवल दो पैसे का टिकिट लगता था। यह टिकिट पत्र-प्रेषक को लगाना पड़ता था। इस व्यवस्था से भारतीयों को भी बड़ा लाभ हुआ।
6. **शिक्षा-सम्बन्धी सुधार**—शिक्षा के पुन: संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। 1854 ई० में सर चार्ल्स वुड ने शिक्षा सम्बन्धी एक वृहत् योजना भारत सरकार के पास भेजी। जिसे 'वुड डिस्पैच' कहा जाता है इसके अनुसार शिक्षा का पूरा प्रबन्ध एक डाइरेक्टर जनरल ऑफ एजुकेशन के नियन्त्रण तथा संचालन में रखा गया। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में सरकारी स्कूलों की स्थापना की गई। सरकारी सहायता से अनेक स्कूल खोले गए। इसीलिए इसे प्राय: भारतीय शिक्षा का मेग्नाकार्टा भी कहा जाता है। डलहौजी ने स्त्री की शिक्षा पर भी बड़ा बल दिया और इसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता बताया।
7. **वैधानिक सुधार**—सन् 1853 ई० का चार्टर एक्ट वैधानिक सुधारों के लिए पास किया गया। इसके द्वारा निम्नलिखित सुधार किए गए—
   (i) कम्पनी को सम्राट की तरफ से भारत का शासन तब तक चलाने का अधिकार दिया गया जब तक कि ब्रिटिश संसद उसे इस अधिकार से वंचित न कर दे।
   (ii) कम्पनी ने डाइरेक्टरों की संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई और इनमें से 6 सम्राट द्वारा मनोनीत होते थे।
   (iii) बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अध्यक्ष के अधिकार बढ़ा दिए गए और उसे इंग्लैण्ड के अन्य यात्रियों के समकक्ष बना दिया गया।
   (iv) गवर्नर जनरल के कार्यभार को हल्का करने के लिए बंगाल प्रान्त का शासन उससे लेकर उसके लिए एक अलग लेफ्टीनेंट गवर्नर नियुक्त किया गया।
   (v) गवर्नर जनरल की कौंसिल के कानूनी सदस्य को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया।
   (vi) कानून निर्माण के लिए व्यवस्थापित समिति की स्थापना की गई। अब गवर्नर जनरल की कौंसिल में कानून बनाने के लिए 6 अतिरिक्त सदस्य जोड़ दिए गए। इसमें गवर्नर जनरल, प्रधान सेनापति, प्रत्येक प्रांत की सरकार का एक प्रतिनिधि बंगाल का प्रधान न्यायाधीश तथा उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश सम्मिलित था।
8. **सामाजिक सुधार**—लॉर्ड डलहौजी ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में दो क्रान्तिकारी कानून पारित किए थे। प्रथम कानून 1850 ई० में पारित करके उसमें किसी भी प्रकार का धर्म परिवर्तन करने वालों के लिए व्यवस्था की थी कि वे उन्हें पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा। साथ ही उसने 1855 ई० में विधवा-विवाह को कानूनी स्वरूप व स्वीकृति दे दी। इन सुधारों से भारतीय जनता में आक्रोश फैला।

TOUCH 'n' PASS

लॉर्ड डलहौजी के कार्यों का मूल्यांकन
(Appraisal of the Works of Lord Dalhousie)

लॉर्ड डलहौजी ने अपने सात साल के कार्यकाल में भारत में साम्राज्य-निर्माण को जिस कार्य को क्लाइव ने आरम्भ किया था उसकी पूर्ति कर दी। भारत में उसने ब्रिटिश-साम्राज्य को प्राकृतिक सीमाएँ प्रदान की और उनकी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था की। देशी नरेशों का अन्त करके कम्पनी के राज्य को संगठित किया और सुदृढ़ बनाया। सेना का समुचित प्रबन्ध किया। उसने इंग्लैण्ड के लिए पूँजी तथा माल के लिए क्षेत्र तथा बाजार उपस्थित किए। परन्तु भारतीयों के दृष्टिकोण से लॉर्ड डलहौजी की नीति घृणास्पद थी। साम्राज्यवादी नीति ने भारतीयों की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया और उसकी व्यवसायिक नीति से भारतीयों का आर्थिक शोषण आरम्भ हुआ। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उसने जितने कार्य किए वे सब अपने देश और अपनी जाति के कल्याण के लिए किए। यह और बात है कि संयोगवश उससे भारतीयों का कल्याण हो गया और उसे 'आधुनिक भारत' का निर्माता कहा जाने लगा।

प्र.3. लॉर्ड विलियम बैंटिंक के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक सुधारों का ब्रिटिश विस्तार में वर्णन कीजिए।
Describe in detail the social, economic and educational reforms of Lord William Bentinck in British expansion.

उत्तर

लॉर्ड विलियम बैंटिंक (1828-1835 ई०)
[Lord William Bentinck (1828-1835)]

लॉर्ड एमहर्स्ट के पश्चात् 1828 ई० में लॉर्ड विलियम बैंटिंक भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। वह यूरोप में नेपोलियन के विरुद्ध लड़ा था। उसे, सैनिक अनुभव के कारण 1803 ई० में मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया था। 1806 ई० में उसने भारतीय सैनिकों को माथे पर जातीय चिह्न लगाने तथा कानों में बालियाँ पहनने से मना कर दिया जिससे बैल्लोर में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोह तो दबा दिया गया था किन्तु कम्पनी के संचालक मण्डल के सदस्यों ने उसे उस समय वापिस बुला लिया। इसके बाद जब वह 1828 ई० में भारत में गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने अपने उदारवादी कार्यों से विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। उसका शासनकाल भारत में शान्ति तथा सुधारों का काल कहा जाता है। जिसके कारण आज भी आधुनिक भारत के इतिहास में उसका नाम बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ लिया है।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के सुधार (Reforms of Lord William Bentinck)

लॉर्ड विलियम बैंटिंक अत्यन्त उदार एवं सुधारवादी गवर्नर जनरल था। एक प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न परिवार में उसका जन्म हुआ था। अत: उसका अपना निजी स्वार्थ नहीं था। उसमें जन सेवा की भावना भरी हुई थी। लॉर्ड बैंटिंक को सुधार एवं संगठन के कार्य करने के लिए भेजा गया था। उसने अपने इस उत्तरदायित्व को बहुत धैर्य एवं साहस के साथ प्रारम्भ किया और एक सुधारक एवं संगठनकर्त्ता के रूप में ऐसी कीर्ति प्राप्त की जो अजर तथा अमर है। लॉर्ड बैंटिंक द्वारा किए गए सुधार निम्न प्रकार से हैं—

(अ) आर्थिक सुधार—जब लॉर्ड बैंटिंक भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया उस समय कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी। इसलिए उसका ध्यान आर्थिक सुधारों पर गया। आर्थिक दशा सुधारने के लिए उसने निम्नलिखित कार्य किए—

1. **वेतन एवं भत्तों में कमी**—सर्वप्रथम व्यय में कमी करने के लिए बैंटिंक ने सैनिकों की संख्या कम कर दी। असैनिक कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते कम कर दिए। सैनिक को पहले दूना भत्ता दिया जाता था। बैंटिंक ने इस व्यवस्था को समाप्त कर केवल आधा भत्ता देना तय किया। इस सुधार से प्रतिवर्ष काफी धन की बचत हुई।
2. **असैनिक विभाग के अफसरों के वेतन में कमी**—कम्पनी में असैनिक विभाग के अफसरों को काफी वेतन दिया जाता था। लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने इनके वेतन को कम कर दिया, इससे काफी धन की बचत हुई।
3. **अनावश्यक पदों की समाप्ति**—लॉर्ड बैंटिंक ने कई अनावश्यक पद हटा दिए जिनके बिना भी शासन कार्य चलाया जा सकता था।
4. **भ्रमणकारी अदालतों की समाप्ति**—बैंटिंक ने अपील एवं घूम-घूमकर न्याय करने वाली अदालतों को समाप्त कर दिया। इस कार्य से सरकार के व्यय में बहुत कमी आयी।

TOUCH 'n' PASS

5. **भारतीयों की नियुक्ति से बचत**—लॉर्ड बैंटिंक ने ऊँचे-ऊँचे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति की क्योंकि भारतीय अफसर अंग्रेजों से कम वेतन पर काम करने के लिए तैयार हो जाते थे।
6. **अफीम के निर्यात पर नियन्त्रण**—लॉर्ड बैंटिंक के समय मध्य भारत में अफीम का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता था तथा इसे चीन एवं पूर्व के अन्य देशों में कराची के बन्दरगाह से भेजा जाता था। बैंटिंक ने इस मार्ग को बदल दिया तथा बम्बई के बन्दरगाह से अफीम भेजने की व्यवस्था की गई। अफीम के व्यापारियों को कम्पनी से लाइसेंस लेना पड़ता था। इस व्यवस्था से कम्पनी को बहुत आर्थिक लाभ हुआ।
7. **माफी भूमि का अधिग्रहण**—अनेक भारतीय नरेशों एवं नवाबों ने बहुत से लोगों को राजस्व से मुक्त भूमि खण्ड दे रखे थे। यह भूमि माफी की भूमि कहलाती थी। बैंटिंक ने ऐसी भूमि का सर्वेक्षण कराकर उनके प्रमाण पत्रों की जाँच करवायी और जिनके पास प्रमाण पत्र नहीं मिले, उनकी भूमि को जब्त कराकर उन पर लगान वसूल किया। इससे कम्पनी को लगभग वार्षिक 30 लाख रुपये की आय हुई।
8. **लगान की आय में वृद्धि**—बंगाल में जो लगान वसूल नहीं की गई थी वह वसूल की गई। जो भूमि बिना लगान के थी उस पर लगान लगाया गया। लगान की इस सुव्यवस्था से भी कम्पनी की आय में वृद्धि हुई।
9. **व्यापार द्वारा कम्पनी की आय में वृद्धि**—लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने सिन्ध के अमीरों एवं महाराजा रणजीत सिंह के साथ व्यापारिक संधियाँ कीं। इससे अंग्रेजों को सतलज एवं सिन्ध नदियों के मार्ग से स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार व्यापार के द्वारा कम्पनी की आय में वृद्धि हुई। बैंटिंक के इन सुधारों के परिणामस्वरूप कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था काफी सुधर गई।

(ब) शासन एवं न्याय सम्बन्धी सुधार—आर्थिक सुधारों के बाद लॉर्ड बैंटिंक ने प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधारों पर ध्यान दिया। बैंटिंक के प्रशासनिक सुधारों से राज्य एवं जनता दोनों को लाभ हुआ एवं भारतीयों का सम्मान बढ़ा। बैंटिंक ने इन क्षेत्रों में निम्नलिखित सुधार किए—

1. **भारतीयों के लिए बड़ी-बड़ी नौकरियाँ**—लॉर्ड कार्नवालिस ने यह नियम बना रखा था कि 500 पौण्ड वार्षिक वेतन वाले पद पर कोई भारतीय नियुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वह भारतीयों की ईमानदारी और कार्य कुशलता पर विश्वास नहीं करता था। बैंटिंक ने 1832 ई० में एक कानून पारित कर भारतीयों की सभी उच्च पदों पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति के द्वार खोल दिए। इन पदों पर भारतीयों को अंग्रेजों की अपेक्षा कम वेतन दिया गया इससे कम्पनी को आर्थिक लाभ हुआ।
2. **लगान सम्बन्धी सुधार**—बैंटिंक ने मद्रास में "रैयतवाड़ी प्रथा" चलायी। जिसमें जमींदार नहीं होते थे बल्कि किसान सीधे सरकार को लगान देता था। यह तरीका सीधा एवं सरल था। आगरा प्रान्त में भूमि सुधार का श्रेय बैंटिंक को ही जाता है।
3. **न्याय सम्बन्धी सुधार**—लॉर्ड कार्नवालिस की न्याय व्यवस्था के तीन प्रमुख दोष थे—सर्वप्रथम न्याय बहुत विलम्ब से होता था, दूसरे उसमें बहुत धन व्यय होता था एवं तीसरा दोष यह था कि न्याय अनिश्चित था। बैंटिंक ने इन्हें दूर करने का प्रयास किया। न्याय व्यवस्था में सुधार लाने के लिए बैंटिंक ने निम्नलिखित कार्य किए—
   (i) सर्वप्रथम लॉर्ड बैंटिंक ने प्रान्तीय अपील कोर्ट एवं सर्किट अदालतों को समाप्त कर दिया। बैंटिंक ने न्यायालयों के कार्यों को कमिश्नरों को सौंप दिया।
   (ii) 1829 ई० में लॉर्ड बैंटिंक ने एक कानून पास कर कलेक्टरों के दो वर्ष की सश्रम कारावास का दण्ड देने का अधिकार प्रदान किया।
   (iii) 1831 ई० में बैंटिंक ने एक कानून पारित किया जिसमें कलेक्टरों को लगान सम्बन्धी मामले निपटाने का अधिकार प्रदान कर दिया।
   (iv) लॉर्ड विलियम बैंटिंक के समय में लॉर्ड मैकाले द्वारा दण्ड संहिता का निर्माण किया गया। इस प्रकार कानूनों का एक स्थान पर संग्रह किया गया, जिसके परिणामस्वरूप न्याय व्यवस्था में पर्याप्त सुधार हुआ।
   (v) 1831 ई० के विनिमय द्वारा भारतीयों की मुन्सिफ एवं मुख्य सदर अमीनों के रूप में नियुक्ति की जाने लगी लेकिन ये यूरोपियनों के मुकदमों की सुनवाई नहीं कर सकते थे।
   (vi) 1832 ई० लॉर्ड बैंटिंक ने एक कानून पास कर बंगाल में ज्यूरी प्रथा का प्रारम्भ किया जिससे यूरोपीयन जजों को सहायता देने के लिए ज्यूरी के रूप में भारतीयों की मदद प्राप्त कर सके।

TOUCH 'n PASS

(vii) 1832 ई० में बैंटिंक ने इलाहाबाद में सदर निजामत अदालत एवं एक अलग मुख्य दीवानी अदालत स्थापित की गई। बैंटिंक ने आगरा में भी एक दीवानी तथा फौजदारी अपील के लिए सुप्रीम कोर्ट की स्थापना करवायी।

(viii) न्यायायिक कार्यों के लिए फारसी के अलावा प्रान्तीय भाषाओं के प्रयोग का आदेश दे दिया।

(ix) बैंटिंक ने दण्ड विधान की कठोरता को भी कम करने का प्रयास किया। उस समय अपराध सिद्ध होने पर अपराधियों को कोड़े लगवाने की प्रथा थी। बैंटिंक ने इस प्रथा को बन्द करवा दिया।

(स) सामाजिक सुधार—लॉर्ड बैंटिंक के भारत आने के समय में भारतीय समाज में अनेक रूढ़ियाँ एवं कुप्रथाएँ प्रचलित थीं। जिन्हें स्वयं भारतीय भी दूर करना चाहते थे। बैंटिंक ने, जो अत्यन्त उदार एवं सुधारक था, भारतीय समाज की इन कुरीतियों को दूर करने का निश्चय किया। बैंटिंक से पहले अन्य किसी गवर्नर जनरल ने ऐसा प्रयत्न नहीं किया। उसने भारतीय समाज के निम्नलिखित दोषों को दूर किया—

1. **सती प्रथा की समाप्ति**—सती प्रथा भारतीय समाज में सबसे भीषण रोग था। भारतीय हिन्दू समाज में सती प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। **'सती'** का अर्थ है **'पवित्र एवं सच्चरित्र नारी'**। इस प्रथा के अनुसार जब किसी उच्च वर्ग के हिन्दु स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी तो वह स्त्री अपने पति के साथ चिता पर जीवित जल जाती थी। जो स्त्रियाँ सती नहीं होना चाहती थीं, उन्हें परिवार एवं समाज के लोग दबाव डालकर सती होने के लिए विवश कर देते थे। बंगाल में इस प्रथा ने भीषण रूप धारण कर लिया था। लॉर्ड बैंटिंक के भारत आगमन के समय कुछ भारतीय विचारक उस प्रथा का विरोध कर रहे थे। सर्वप्रथम बंगाल के महान सुधारक राजा राम मोहन राय ने स प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने पत्रपत्रिकाओं में इस प्रथा के विरोध में लेख लिखकर जनमानस को उद्वेलित कर दिया। बैंटिंक ने भी इस तरफ ध्यान दिया एवं उसने इस प्रथा को समाप्त करने का दृढ़ निश्चय किया। बैंटिंक ने इस प्रथा से सम्बन्धित प्रासंगिक तथ्यों को एकत्रित करवाया, राजा राम मोहन राय और सैनिक व असैनिक दोनों ही विभाग के पदाधिकारियों के प्रोत्साहन से **14 दिसम्बर, 1829 ई०** में एक कानून बनाकर सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया। इस प्रथा को प्रोत्साहन देने वालों को या किसी स्त्री को सती होने के लिए विवश करने वालों को प्राणदण्ड देने की सजा देने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार लॉर्ड बैंटिंक ने हिन्दू समाज में प्रचलित एक भयंकर अभिशाप को समाप्त कर दिया।
2. **ठगी प्रथा का अन्त**—बैंटिंक के भारत आगमन के समय समाज ठगों के आतंक से पीड़ित था। बैंटिंक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य ठगों का दमन करना था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद समाज में अव्यवस्था का बोलबाला हो गया था। अनेक लोगों ने दल बनाकर ठगी के पेशे को अपना लिया था। उत्तरी एवं मध्य भारत में ये लोग बड़े-बड़े गिरोहों में कार्य करते थे। ये लोग काली, दुर्गा या भवानी के उपासक थे। इन लोगों का यह विश्वास था कि मनुष्यों की हत्या करने से देवी प्रसन्न होती है। लॉर्ड बैंटिंक ने ठगों को समाप्त करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने इस कार्य की जिम्मेदारी कर्नल स्लीमैन को सौंप दी। कर्नल स्लीमैन ने सैनिक कार्यवाही के द्वारा ठगों को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया। हजारों ठगों को पकड़कर मृत्युदण्ड एवं आजीवन कारावास की सजा दी गई। कुछ सुधारात्मक उपाय भी किए गए। उन्हें उद्योग धन्धे तथा कारोबार भी सिखाए गए जिससे वह सम्मान एवं शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकें। उनके बच्चों को भी शिक्षित करने की व्यवस्था की गई जिससे वे बड़े होकर ठगी के पेशे को न अपनाएँ। 1836 ई० में एक एक्ट पारित किया गया जिसमें ठगों के गिरोह के साथ सम्बन्ध रखना अपराध माना गया। ऐसा करने पर काले पानी की सजा भी दी जा सकती थी। लॉर्ड बैंटिंक के इस कठोर कार्यवाही के कारण 1837 ई० तक संगठित रूप से काम करने वाले ठगों के गिरोहों का अन्त हो गया।
3. **बाल हत्या का निषेध**—सती प्रथा की भाँति शिशु वध की क्रूर प्रथा भी हिन्दू समाज में व्याप्त थी। अनेक लोग अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए देवी-देवताओं से अपने बच्चे की बलि चढ़ाकर मनौती माँगते थे। भारतीय समाज में कन्याओं की स्थिति अत्यन्त खराब थी। राजपूतों में कन्याएँ प्राय: कलह एवं अपमान का कारण बन जाती थीं इसलिए राजूपत जन्म लेते ही कन्याओं की हत्या कर देते थें। बैंटिंक ने बंगाल रेग्यूलेशन एक्ट के द्वारा इस कुप्रथा को बन्द करवा दिया लेकिन इस कुप्रथा को दूर करने में काफी समय लगा।
4. **दास प्रथा का अन्त**—प्राचीनकाल से भारत में दास प्रथा भी प्रचलन में थी। अनेक लोग भुखमरी से बचने और ऋण चुकाने के लिए अपने बच्चों को और कभी-कभी स्वयं को भी बेच देते थे। 1832 ई० में बैंटिंक ने दास प्रथा को निषेध घोषित कर दिया।

TOUCH 'n PASS

5. **विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता**—बैंटिंक एक प्रगतिशाली व्यक्ति था। वह नागरिक स्वतंत्रता एवं मानव अधिकारों का प्रबल समर्थक था। उसका कहना था कि लोगों को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। बैंटिंक ने समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर बल दिया। बैंटिंक ने सरकारी कर्मचारियों को भी समाचार-पत्रों में अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर रखी थी। 1835 ई० में प्रेस पर से सरकारी नियन्त्रण हटाकर उसे स्वतंत्र कर दिया।
6. **धर्म परिवर्तन की सुविधा**—हिन्दू कानून के अनुसार जो हिन्दू अपना धर्म बदल देता था उसे पैतृक संपत्ति से वंचित कर दिया जाता था। अत: कोई भी हिन्दू आसानी से धर्म परिवर्तन नहीं करता था। बैंटिंक ने एक कानून द्वारा धर्म परिवर्तन की सुविधा प्रदान कर दी। इस नए कानून के अनुसार धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को उसकी पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार बैंटिंक ने अप्रत्यक्ष रूप से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को बढ़ावा दिया।

(द) शैक्षिक सुधार—अब तक भारत में सार्वजनिक शिक्षा की सुव्यवस्था का अत्यन्त अभाव था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। बैंटिंक का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय शिक्षा से सम्बन्धित था। उसने शिक्षा के प्रसार के लिए आवश्यक कदम उठाए। शिक्षा के उद्देश्य एवं माध्यम को लेकर काफी मतभेद था। बैंटिंक ने एक सार्वजनिक शिक्षा समिति गठित की। इसमें शिक्षा के प्रश्न पर दो दल बन गए। लॉर्ड मैकाले के नेतृत्व वाला दल अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा देने का पक्षधर था। दूसरा दल विल्सन एवं जेम्स प्रिंसेप प्राच्य शिक्षा (संस्कृत, अरबी, फारसी) का समर्थक था। **लॉर्ड मैकाले ने 2 फरवरी, 1835 ई०** के अपने स्मरण पत्र में प्राच्य शिक्षा को अप्रासंगिक बताते हुए अपनी योजना प्रस्तुत की जिसका उद्देश्य यह था कि एक ऐसा वर्ग बनाया जाए जो रंग तथा रक्त से तो भारतीय हो, किन्तु प्रवृत्ति, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि से अंग्रेज हों। मैकाले का यह भी उद्देश्य था कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों का कम वेतन पर कम्पनी को नौकर मिल जाएँगे और पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार हो जाएगा, इससे कम्पनी को दोहरा लाभ होगा। अत्यन्त वाद-विवाद के बाद 1835 ई० में गवर्नर जनरल एवं उसकी कौंसिल ने मैकाले के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप उच्च स्तरीय प्रशासन की भाषा अंग्रेजी बन गई। इसके पश्चात् अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों को सरकारी अनुदान दिया गया। अंग्रेज शिक्षा के प्रसार के लिए स्कूल खोले गए। कलकत्ता में मेडिकल कॉलेज की स्थापना तथा रुड़की में सिविल इन्जीनियरिंग कालेज की स्थापना की गई। बैंटिंक के द्वारा उठाए गए इस कदम का भारतीयों के पक्ष में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि वे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आए।

प्र.4. तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18 ई०) का वर्णन करते हुए मराठों के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिए।
Mentioning the third Anglo-Maratha war (1817-1818), discuss the causes for the decline of the Marathas.

उत्तर

तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18 ई०)
[Third Anglo-Maratha War (1817-18)]

लॉर्ड हेस्टिंग्स का उद्देश्य अंग्रेजों को भारत में सर्वश्रेष्ठ शक्ति बनाने का था। द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध में वेलेजली ने मराठों को काफी नुकसान पहुँचाया था किन्तु वे पूर्णतया नष्ट न हो सके थे। वेलेजली के भारत से जाने के बाद अंग्रेजों की अहस्तक्षेप की नीति को अपनाने के कारण उनकी शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई थी। अत: लॉर्ड हेस्टिंग्स ने मराठों के पूर्ण दमन का निश्चय किया। वैसे तो होल्कर को छोड़कर सभी मराठा सरदारों ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी किन्तु केवल गायकवाड़ को छोड़कर अन्य मराठा सरदारों ने संधि ठुकरा दी थी। अत: उसके लिए पेशवा, सिन्धिया, भोंसले तथा होल्कर की शक्ति का दमन करना आवश्यक हो गया।

पेशवा के साथ संघर्ष—पेशवा अंग्रेजों के प्रभुत्व से निकलने का प्रयास कर रहा था। 1814 ई० में पेशवा और गायकवाड़ के मध्य सीमा सम्बन्धी झगड़ा चल रहा था। उसे सुलझाने के लिए गायकवाड़ ने ब्रिटिश सुरक्षा में गंगाधर शास्त्री नामक अपने दूत को पेशवा के दरबार में भेजा। पेशवा के मन्त्री त्रम्बक ने गंगाधर की हत्या करवा दी। इस घटना से पेशवा और अंग्रेजों के सम्बन्ध बहुत कटु हो गए। अंग्रेजों ने पेशवा से त्रम्बक की माँग की। कुछ विलम्ब के पश्चात् पेशवा ने त्रम्बक जी को अंग्रेजों को सौंप दिया किन्तु त्रम्बक जी अंग्रेजों की कैद से भाग निकले। अंग्रेजों ने त्रम्बक जी को पुन: लौटाने की माँग की। पेशवा ने पूना की ब्रिटिश रेजीडेन्सी में आग लगवा दी तथा पूना के निकट किर्की नामक स्थान पर अंग्रेजों पर आक्रमण भी किया। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने पेशवा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कर्नल स्मिथ ने पूना को घेर लिया तथा उस पर अधिकार कर लिया। 13 जून, 1817 ई० को पेशवा ने आत्मसमर्पण कर दिया। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने पेशवा के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया। उसने पेशवा को 8 लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन देकर विठुर में रहने की आज्ञा दी। त्रम्बक जी को आजीवन कारावास की सजा देकर चुनार के दुर्ग में रख दिया गया। पेशवा

के राज्य का कुछ भाग शिवाजी के वंशज प्रताप सिंह को दे दिया गया। इस राज्य की राजधानी सतारा बनाई गई। पेशवा के राज्य का शेष भाग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार पेशवा पद व राज्य समाप्त कर दिया गया।

भोंसले के साथ संघर्ष—पेशवा के राज्य को समाप्त करने के पश्चात् लॉर्ड हेस्टिंग्स ने बरार के भोंसले राजा को भी ध्वस्त करने का निश्चय किया। 1816 ई० में राघोजी भोंसले की मृत्यु हो गई और गद्दी के लिए गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इस अवसर का लाभ उठाकर लॉर्ड हेस्टिंग्स ने अप्पा जी का पक्ष लिया और उससे सहायक संधि कर ली। अप्पा जी ने परसो जी की हत्या करवाकर नागपुर की गद्दी पर अधिकार कर लिया। अब अप्पा जी ने अपनी नीति बदल दी और अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया और 1817 ई० में अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया किन्तु सीताबाल्डी के युद्ध में उसकी सेना पूर्णत: पराजित हो गई। हताश होकर अप्पाजी पंजाब भाग गए और भोंसले राज्य पर अंग्रेजों का नियंत्रण स्थापित हो गया। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने नर्मदा नदी के उत्तर के भाग को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया और दक्षिण के भाग को राघोजी के पौत्र को सौंप दिया।

होल्कर के साथ संघर्ष—अब लॉर्ड हेस्टिंग्स ने अपना ध्यान होल्कर के राज्य की ओर किया। इस समय होल्कर की शक्ति काफी कम हो गई थी और उसके राज्य में षड्यन्त्रों का बोलबाला था। एक दिन अफगान सरदारों ने जसवन्तराव होल्कर की रानी तुलसीबाई की हत्या करवा दी। उससे राज्य की व्यवस्था और अधिक खराब हो गई। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए 1817 ई० में होल्कर को महीदपुर नामक स्थान पर पराजित किया। 1818 ई० होल्कर को विवश होकर अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी, जिसके द्वारा होल्कर का प्रभुत्व राजपूत राज्यों व अमीर खाँ पठान के राज्य से समाप्त हो गया। उसने सतपुड़ा के दक्षिण का सारा भाग अंग्रेजों को सौंप दिया। उसने अंग्रेजी सेना तथा अंग्रेजी रेजीडेन्ट भी अपने राज्य में रखना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार होल्कर के राज्य पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

सिंधिया और गायकवाड़ के साथ नई संधियाँ—मराठों के तृतीय युद्ध में सिंधिया तथा गायकवाड़ ने अंग्रेजों का न तो कोई विरोध किया और न ही मराठा सरदार होल्कर की सहायता की थी लेकिन फिर भी लॉर्ड हेस्टिंग्स ने उन्हें भी अछूता न छोड़ा। उसने यह बहाना लगाया कि वे दोनों सरदार पिंडारियों की मदद कर रहे थे। अत: उनके साथ नई संधियाँ लागू करना आवश्यक है। इन दोनों राज्यों के बड़े भू-भाग पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया और सिंधिया तथा गायकवाड़ पूर्णतया अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गए।

इस प्रकार मराठा संघ को छिन्न-भिन्न कर दिया गया तथा मराठों की शक्ति को पूर्णतया दमन कर दिया गया। अंग्रेजों का मराठों के साथ यह अन्तिम युद्ध था। इसके पश्चात् मराठे सैनिक मानसिक रूप से इतने शक्तिहीन तथा निर्बल हो गए कि उन्होंने फिर कभी भी अंग्रेजों का विरोध नहीं किया।

तृतीय युद्ध के परिणाम—1. मराठों की शक्ति पूर्णतया क्षीण हो गई। अंग्रेजों के प्रबल शत्रु माने जाने वाले मराठे अंग्रेजों के पूर्ण नियन्त्रण में आ गए और अब भारत में अंग्रेजों को चुनौती देने वाला कोई नहीं रहा।

2. अंग्रेजी कम्पनी की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। अब वह निर्विवाद रूप से भारत में सर्वोच्च शक्ति बन गई।
3. तृतीय मराठा युद्ध के पश्चात् कम्पनी के साम्राज्य में अत्यधिक वृद्धि हुई। सुन्दरलाल के अनुसार अंग्रेजी कम्पनी के राज्य में 50 हजार वर्ग मील से अधिक की वृद्धि हुई। इतिहासकार **डॉडवेल** ने लिखा है कि, "1818 ई० की संधि से भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सर्वोच्चता का आरम्भ होता है। कोई राज्य नहीं रहा जो उनकी सर्वोच्चता को चुनौती दे सके। कोई राज्य नहीं रहा जो उसकी संधियों का बहिष्कार कर सके।"

मराठों के पतन के कारण (Causes for the Decline of the Marathas)

औरंगजेब के शासनकाल में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति का उदय हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मराठे अत्यन्त शक्तिशाली हो गए थे और सम्पूर्ण भारत पर उनका प्रभुत्व था। किन्तु जब भारत में यूरोपीय शक्तियों के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष हुआ और उसमें अंग्रेज विजयी रहे तो उनका भारत में प्रभाव बढ़ने लगा। फलस्वरूप अंग्रेजों और मराठों के मध्य संघर्ष अनिवार्य हो गया। इसी मध्य 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली के हाथों पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की बहुत करारी हर हुई जिसके फलस्वरूप उनकी प्रतिष्ठा में कमी हुई। किन्तु थोड़े ही समय में मराठों ने इस हार से अपनी खोई हुई शक्ति पुन: प्राप्त कर ली और उन्होंने मुगल सम्राट को फिर से अपने नियंत्रण में ले लिया। लेकिन अंग्रेजों ने जब उनकी शक्ति को चुनौती दी और उन्हें पूर्णत: पराजित किया तब उनका पतन हो गया। संक्षेप में मराठों के पतन के निम्नलिखित कारण हैं—

1. **मराठा संघ की आपसी फूट**—मराठा संघ पेशवा, सिंधिया, होल्कर, गायकवाड़ और भोंसले, इन पाँच शक्तियों में विभाजित था। इन सब पर पेशवा का नियन्त्रण था, किन्तु पेशवाओं के अयोग्य होने के कारण मराठा सरदारों में स्वतंत्रता की भावना ने जन्म ले लिया। परिणामस्वरूप वे अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए आपस में संघर्षरत हो गए और यही आपसी संघर्ष उनके

पतन क कारण बन गया। अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि, 'यह बात सर्वमान्य है और इसके लिए उचित कारण भी है कि मराठों के आपसी झगड़ों के सिवाय अन्य कोई भी चीज उन्हें नष्ट नहीं कर सकती थी।

2. **सुदृढ़ आर्थिक दशा का न होना**—मराठे अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे इसलिए उन्हें सदैव धन का संकट बना रहता था। उनकी आय तथा व्यय के सब कार्य और साधन अस्त-व्यस्त थे और कर लगाने का ढंग भी कोई सुव्यवस्थित नहीं था। ऐसी अवस्था में राज्य की आय का कोई पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता था। उनका अपना प्रदेश भी कोई अधिक उपजाऊ नहीं था, इसलिए वहाँ से भी कोई इतना भूमिकर नहीं आ सकता था कि वे आवश्यकता पड़ने पर जिससे अपना कार्य चला सकें। अत: आर्थिक स्थिति के कमजोर होने के कारण मराठों की राजनीतिक उन्नति लम्बे समय तक नहीं हो सकती थी।
3. **कुशल नेतृत्व का अभाव**—दुर्भाग्यवश जिन दिनों मराठों को अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा। उन दिनों मराठा संघ में कुशल नेतृत्व का अभाव था। महादजी सिंधिया की 1795 ई० और नाना फड़नवीस का 1800 ई० में मृत्यु हो गई थी। इसके पश्चात् मराठों में कोई ऐसा वीर सेनानायक, राजनीतिज्ञ अथवा कूटनीतिज्ञ न पैदा हुआ जो अंग्रेजों को टक्कर दे सकता।
4. **पानीपत का विनाश**—1761 ई० में पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमदशाह अब्दाली से मिली पराजय से मराठों का उत्साह भंग हो गया और सम्पूर्ण भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा का स्वप्न धूल-धूसरित हो गया। किन्तु कुछ विद्वान इस कारण से सहमत नहीं हैं। उनकी धारणा है कि पानीपत के युद्ध के उपरान्त उन्होंने अपनी क्षतिपूर्ति कर ली थी और महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस के नेतृत्व में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त कर ली थी।
5. **लूटमार की नीति**—मराठे अपने व्यय को पूरा करने के उद्देश्य से अधिकतर लूटमार की नीति पर चलते थे, किन्तु ऐसी नीति से वे अपना और अपनी सरकार का आदर व सम्मान प्राप्त नहीं कर सके। आम जनता तथा तत्कालीन शासक वर्ग ने उनसे नफरत करनी आरम्भ कर दी इसलिए अधिकृत प्रदेशों में उनकी जड़ें पूर्णतया न जम सकी। **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** लिखा है कि सार्वजनिक सहानुभूति और सहायता भी सुरक्षा की दूसरी पंक्ति बन जाती है। इस दृष्टि से जनता की दुर्भावना भी मराठा-विनाश का एक अनिवार्य कारण कहा जा सकता है।
6. **जागीर प्रथा**—पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जागीर प्रथा को पुन: प्रारम्भ कर दिया। शिवाजी ने इस प्रथा की बुराइयों को दृष्टिगत रखते हुए इसे बन्द कर दिया था। अत: जैसे ही जागीर प्रथा आरम्भ हुई इसके स्वाभाविक दोष प्रकट हुए और केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया तथा जागीरदार राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करने लगे। जागीरदारों के ऐसे प्रयास भी मराठा साम्राज्य के विनाश के प्रमुख कारण बने।
7. **सुदृढ़ शासन व्यवस्था का अभाव**—मराठे चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने पर ही अधिक ध्यान देते थे। उन्होंने अपने विजित प्रदेशों में कभी सुदृढ़ शासन व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। एडवर्ड का कहना है कि मराठा शक्ति के पतन का मुख्य कारण यह था कि बाद के मराठा सरदार अपनी प्रजा का तनिक भी ध्यान नहीं रखते थे। वे लोगों की शिक्षा, सांस्कृतिक विकास तथा सार्वजनिक उन्नति के लिए कुछ भी नहीं करते थे। फलस्वरूप उन्होंने जनसाधारण की सहानुभूति खो दी और जब उन पर विपरीत परिस्थिति आयी तो किसी ने भी उनको बचाने के लिए कुछ न किया।
8. **फ्रांसीसी शक्ति का अन्त**—लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधियों ने देशी नरेशों के यहाँ फ्रांसीसियों के प्रभाव को समाप्त कर दिया था। भारत में फ्रांसीसियों की शक्ति के उन्मूलित हो जाने का मराठों की सैनिक शक्ति पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, क्योंकि फ्रांसीसी अफसरों के नेतृत्व में ही यूरोपीय ढंग से मराठा सेनाएँ अंग्रेजों का मुकाबला कर सकती थीं।
9. **उत्तरी अभियान की त्रुटि**—मराठों का उत्तरी भारत को विजय करना एक भारी भूल थी, विशेषकर जबकि दक्षिण में उनके प्रबल विरोधी बैठे हुए थे। इस विषय में **डॉ० एस०आर० शर्मा** का कहना है कि, 'उनकी (मराठों की) सबसे महान् भूल उनका उत्तरी अभियान था। गिरते हुए वृक्ष के तने पर चोट करना वास्तव में भारी आकर्षण था किन्तु मराठे उसके लिए पूरी तरह तैयार न थे। अपने घर के झगड़ों को तय करना, बाहरी साम्राज्य के लिए प्रयत्न करने से अधिक आवश्यक था। निजाम, सिद्दी और यूरोपीयन जैसे प्रबल शत्रु घर के समीप ही मौजूद थे जिनको अलग करना अत्यन्त आवश्यक था, परन्तु इनको मूर्खता के कारण रहने ही नही दिया गया वरन् उन्हें और भी शक्तिशाली बन जाने दिया गया।'
10. **मैसूर तथा हैदराबाद का पतन**—मैसूर राज्य के पूर्णतया पतन हो जाने तथा हैदराबाद के साथ अंग्रेजों की सहायक संधि हो जाने के कारण अंग्रेजों की शक्ति अत्यन्त सुदृढ़ हो गई और मराठे अंग्रेजों के विरुद्ध अकेले पड़ गए।

TOUCH 'n' PASS

11. **राष्ट्रीयता के आदर्शों का परित्याग**—शिवाजी ने हिन्दू पद-पादशाही या हिन्दू राज्य स्थापित करने के लिए अपना जीवन व्यतीत किया, किन्तु उसके पश्चात् पेशवा काल में मराठों ने इस आदर्श को भुला दिया। इस विषय में **वी०वी० जोशी** ने उचित ही लिखा है कि, "शिवाजी के स्वराज्य में अर्थात् मराठों के इतिहास के शाही काल में मराठे राष्ट्रीय तथा सामूहिक प्रभुत्व रखते थे। शिवाजी ने उन्हें राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित किया, इसलिए उन्हें अपने कार्य में सफलता मिली, परन्तु इसके विपरीत पेशवाओं के राज्यकाल में मराठों ने पठानों तथा यूरोपियनों की सहायता से अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करना चाहा और उसके लिए राजपूतों तथा जाटों को भी नहीं छोड़ा। इससे मराठों की अपनी स्थिति क्षीण हुई और दूसरे हिन्दुओं ने मराठा साम्राज्य की स्थिरता के लिए उन्हें हार्दिक सहयोग देना छोड़ दिया।"
12. **सिक्खों का उदय**—सिक्खों के उदय से भी मराठा शक्ति को प्रबल आघात पहुँचा। सिक्ख मराठों को निर्बल बनाने के लिए अंग्रेजों को सहयोग करते रहे। परिणामस्वरूप मराठों को अंग्रेजी शक्ति का सामना करना कठिन हो गया।
13. **तोपखाने के लिए विदेशियों पर आश्रित रहना**—तत्कालीन समय में सेना का महत्त्वपूर्ण अंग तोपखाना था, जिसकी मराठों ने उपेक्षा की। फलत: वे अंग्रेजों का समुचित ढंग से मुकाबला न कर सके। जब मराठों ने तोपखाना रखने का प्रयत्न भी किया तो उन्होंने यह विभाग विदेशियों को ही दिया और उन पर आश्रित रहे। इस विषय में **जी०एस० सरदेसाई** ने लिखा है कि, "पर यह बात समझ में नहीं आती कि महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस जैसे मराठा प्रशासकों ने युद्ध की इस प्रधान शाखा में अपने निजी आदमियों को प्रशिक्षित क्यों नहीं किया।"
14. **युद्ध की नवीन पद्धति का विकास न करना**—मराठों को ऐसी जाति से संघर्ष करना पड़ा जो युद्ध के नवीनतम ढंगों से परिचित थी, परन्तु मराठों ने अपनी परम्परागत युद्ध पद्धति (गुरिल्ला युद्ध पद्धति) को भुला दिया, किन्तु नए ढंगों को सीखने का प्रयास नहीं किया। परिणामस्वरूप उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा।
15. **अंग्रेजों की उच्चतर योग्यता**—मराठों और अंग्रेजों की सैनिक शक्ति उनकी राजनीति तथा भौगोलिक ज्ञान पर तुलनात्मक ढंग से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेज मराठों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में कहीं अधिक बेहतर थी अत: सफलता उनके हाथ लगी।

राजपूताने पर अंग्रेजी प्रभुत्व—चतुर्थ आंग्ल-मराठा युद्ध के पश्चात् लॉर्ड हेस्टिंग्स ने राजपूत रियासतों पर प्रभुत्व स्थापित किया। उसने जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर तथा अन्य कई छोटी-छोटी रियसतों से सहायक संधियाँ की तथा उन पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित किया।

इस संधियों के फलस्वरूप इन रियासतों ने अपनी विदेश नीति तथा सम्प्रभुता अंग्रेजों को सौंप दी और आन्तरिक मामलों में वे अधिक स्वतंत्र रहे।

प्र.5. रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773 ई०) की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Give a critical review of Regulating Act (1773).

उत्तर

रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773 ई०)
[Causes for Passage of the Act (1773)]

एक्ट पारित होने के कारण (Causes for Passage of the Act)

रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित होने के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. **कम्पनी की प्रादेशिक प्रभुसत्ता**—प्लासी और बक्सर के युद्धों के फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर अधिकार स्थापित हो गया। यह प्रथम अवसर था कि इंग्लैण्ड की एक गैर-सरकारी कम्पनी ने इतने बड़े भू-भाग पर अधिकार किया हो। कम्पनी के क्षेत्राधिकार ने ब्रिटिश सरकार के सामने एक विचित्र और विरोधी सवाल खड़ा कर दिया अत: भविष्य में ब्रिटिश साम्राज्य को किसी भी प्रकार की बदनामी से बचाने के लिए तथा उनके हितों की रक्षा के लिए कम्पनी के कार्यों में ब्रिटिश संसद द्वारा हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो गया था।
2. **द्वैध-शासन प्रणाली**—1667 ई० में क्लाइव ने बंगाल में द्वैध शासन व्यवस्था को स्थापित किया था परन्तु इस व्यवस्था ने स्थिति को और भी बुरा बना दिया। यह व्यवस्था दोषपूर्ण शक्ति विभाजन पर आधारित थी और भ्रष्टाचारी और कुशासन अपनी चरम सीमा पर था तथा दमन और शोषण आम बात थी। ऐसी परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार का चुपचाप बैठे रहना असम्भव था।

TOUCH 'n' PASS

इस समय कम्पनी को दो अप्रिय घटनाओं का सामना करना पड़ा। प्रथम 1769 ई० में मैसूर के शासक हैदर अली ने अंग्रेजी सेना को परास्त कर कर्नाटक पर अधिकार कर लिया था। द्वितीय 1770 ई० में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा था इससे कम्पनी की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड में भी जनता कम्पनी के मामलों पर संसदीय नियन्त्रण की माँग कर रही थी।

3. **कम्पनी का दिवालापन**—प्रारम्भ में कम्पनी से अंग्रेजों को पर्याप्त लाभ हुआ था। किन्तु शनैः-शनैः इसके हिस्सेदारों को निराशा हाथ लगी क्योंकि कम्पनी को घाटे का सामना करना पड़ रहा था अतः निराश होकर डायरेक्टरों ने बैंक ऑफ इंग्लैण्ड से 10 लाख पौण्ड का ऋण माँगा। अतः इस बिगड़ती हुई स्थिति को सुधारने के लिए ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया था।
4. **कम्पनी के कार्यों में संसदीय जाँच**—ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों की जाँच के लिए एक चयन समिति और दूसरी गुप्त समिति नियुक्त की। दोनों समितियों ने कम्पनी के विरुद्ध में रिपोर्ट दी अतः कम्पनी के दोषों को दूर करने और उसकी प्रशासन व्यवस्था में सुधार लाने के लिए नार्थ ने संसद में एक विधेयक पेश किया, जिसे बहुमत से पारित कर कानून का रूप दे दिया। इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के संविधान को ब्रिटेन और भारत दोनों में परिवर्तित कर दिया गया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट का प्रावधान एवं धारा (Sections and Provisions of the Regulating Act)

रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773 ई०) कम्पनी के शासन की बुराइयों को दूर करने के लिए 1773 ई० में ब्रिटिश संसद ने रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया, जिसके द्वारा परिवर्तन निम्न प्रकार किए गए—

1. **गवर्नर जनरल की शक्तियों में वृद्धि**—बंगाल की प्रेसीडेन्सी को बम्बई एवं मद्रास की प्रेसीडेन्सियों से उच्चतर कर दिया गया। बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल बना दिया गया। जिसकी सहायता के लिए चार सदस्यों की परिषद् बनाई गई। गवर्नर जनरल एवं परिषद् को यह अधिकार दिया गया कि कम्पनी के क्षेत्रों, अधीनस्थ राज्यों की शासन व्यवस्था के लिए नियम बनाएँ एवं अध्यादेश जारी करें, जो सर्वोच्च न्यायालय में पंजीकृत होने के उपरान्त लागू हो किन्तु दो वर्ष के अन्दर ब्रिटिश सम्राट उन नियमों को रद्द कर सकता था।
2. **सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना**—इस एक्ट के अन्तर्गत एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना कलकत्ता में की गई इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और चार अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। सर्वोच्च न्यायालय को कम्पनी के सभी क्षेत्रों में रहने वाले अंग्रेजों और कम्पनी के कर्मचारियों के दीवानी, फौजदारी और धार्मिक मुकदमों को सुनने का अधिकार दिया गया और यहीं से सम्राट को अपीलें भी भेजी जा सकती थीं।
3. **वित्तीय मामलों में सुधार**—इस एक्ट द्वारा यह प्रावधान रखा गया कि भारत के राजस्व से सम्बन्धित सारे मामले कम्पनी के संचालकों द्वारा ब्रिटिश वित्त विभाग के सम्मुख रखे जाएँगे तथा सैनिक एवं गैर-सैनिक मामले राज्य सचिव के सम्मुख रखे जाएँगे। कम्पनी का कोई भी कर्मचारी किसी भी व्यक्ति से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपहार, दान, पारितोषिक नहीं ले सकता था। कम्पनी के व्यापारियों पर निजी व्यापार के सम्बन्ध में अंकुश लगाए गए।
4. **कार्यकाल में परिवर्तन**—कम्पनी के संचालकों का कार्यकाल एक वर्ष से बढ़ाकर चार वर्ष कर दिया गया। संचालक मण्डल के 24 सदस्यों में से 6 को प्रतिवर्ष सेवा निवृत्त करने की व्यवस्था की गई।
5. **कम्पनी के पदाधिकारियों के वेतन में वृद्धि**—इस एक्ट द्वारा कम्पनी के अधिकारियों के वेतन बढ़ा दिए गए। गवर्नर जनरल को 25,000 सदस्यों को 10,000 और मुख्य न्यायाधीश को 8,000 तथा छोटे न्यायाधीशों को 6,000 पौण्ड वार्षिक दिए गए, जो सम्भवतः समकालीन संसार में सबसे ऊँचा वेतन था।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष (Disadvantages of Regulating Act)

यद्यपि रेग्यूलेटिंग अधिनियम द्वारा अत्यधिक गम्भीर समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया था किन्तु 'यह त्रुटियों से मुक्त नहीं था। **रोबर्ट्स महोदय** ने लिखा है कि इस एक्ट ने न तो राज्य का कम्पनी के ऊपर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया न अपने कर्मचारियों पर संचालकों ने अपनी कौंसिल पर गवर्नर जनरल का और न कलकत्ता प्रान्त का मद्रास और बम्बई पर।'' इस एक्ट के दोष अग्रलिखित हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **गवर्नर जनरल का परिषद् पर नियन्त्रण नहीं था**—इस एक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर जनरल का बम्बई और मद्रास सरकार पर नियन्त्रण अधूरा था और उसका कौंसिल पर भी नियन्त्रण न था, क्योंकि सभी कार्य कौंसिल के बहुमत के आधार पर किए जाते थे। तात्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स (जो भारत के प्रथम गवर्नर जनरल भी थे) को परिषद् के बहुमत के समक्ष कई बार झुकना पड़ा था जिससे वह स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने में असहाय हो गया था।
2. **गवर्नर जनरल का सर्वोच्च न्यायालय के अधीन होना**—इस एक्ट के द्वारा गवर्नर जनरल व उसकी परिषद् सर्वोच्च न्यायालय के अधीन हो गई जिससे गवर्नर जनरल व उसकी परिषद् द्वारा पारित कानून तब तक वैध नहीं माने जाते थे जब तक सर्वोच्च न्यायालय उन्हें स्वीकृति प्रदान न कर दे।
3. **उच्चतम न्यायालय व प्रान्तीय न्यायालयों के मध्य मतभेद**—इस एक्ट के द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि उच्चतम न्यायालय और प्रान्तीय न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र क्या है? फलस्वरूप प्रान्तीय न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालय के मध्य अत्यन्त मतभेद था।
4. **कम्पनी के छोटे हिस्सेदारों का असन्तुष्ट होना**—इस एक्ट द्वारा हजार पौंड से कम वाले हिस्सेदारों को मताधिकार से वंचित करके छोटे हिस्सेदारों को दण्डित किया गया क्योंकि वे सामूहिक रूप से भी वोट नहीं दे सकते थे, जिससे छोटे हिस्सेदारों में असन्तोष व्याप्त था।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रेग्यूलेटिंग एक्ट में अनेकानेक दोष विद्यमान थे। अत: यह एक अपूर्ण एक्ट था जिसमें प्रशासनिक नीतियों को सुनिश्चित ढंग से स्थापित नहीं किया था।

1781 ई० का संशोधनात्मक अधिनियम—रेग्यूलेटिंग एक्ट की त्रुटियों को दूर करने के लिए 1781 ई० में एडमण्ड बर्क की अध्यक्षता में भारतीय न्याय व्यवस्था की जाँच के लिए समिति नियुक्त की। इस समिति का उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र और शक्तियों के विषय में उत्पन्न अनिश्चितता को समाप्त करना था। इससे एक्ट में निम्नलिखित सुधार हुए—

1. गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद् के कार्यक्षेत्र से सर्वोच्च न्यायालय को बाहर रखा गया।
2. इस एक्ट में यह भी उल्लेख किया गया था कि जो नियम तथा विनियम गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल बनाए उसे उच्चतम न्यायालय के पास पंजीकृत करना अनिवार्य नहीं है।
3. इस एक्ट में यह भी व्यवस्था कि गई कि प्रान्तीय न्यायालयों से अपील, सीधे गवर्नर जनरल के पास की जा सकती थी। केवल 5,000 और इससे अधिक के मामलों में यह अपील इंग्लैण्ड में सपरिषद् सम्राट तक जा सकती थी।

प्र.6. पिट्स इण्डिया एक्ट (1784 ई०) के प्रावधानों की विवेचना कीजिए तथा इस एक्ट का मूल्यांकन कीजिए।
Explain the provisions of Pitti's India Act (1784) and do its appraisal.

उत्तर

पिट्स इण्डिया एक्ट (1784 ई०)
[Pitti's India Act (1784)]

1781-82 ई० में इंग्लैण्ड की संसद ने वॉरेन हेस्टिंग्स को वापस बुलाना चाहा लेकिन प्रोपराइटर्स की सभा ने इसका सफलतापूर्वक विरोध किया। इस प्रकार 1773 ई० के एक्ट द्वारा संसद कलकत्ता कौंसिल पर और कलकत्ता परिषद् मद्रास तथा बम्बई सरकार पर नियन्त्रण करने में असमर्थ थी। रेग्यूलेटिंग एक्ट में परिवर्तन की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। इसका अवसर भी शीघ्र उपलब्ध हो गया 1782 ई० में संसद की एक सीक्रेट रिपोर्ट में कम्पनी की नीतियों पर नियन्त्रण करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। कई प्रस्ताव अस्वीकृत कर देने के पश्चात् प्रधानमन्त्री छोटे पिट द्वारा प्रस्तुत नियम 1784 ई० में पास किया गया। यह नियम पिट्स इण्डिया एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है।

पिट्स इण्डिया एक्ट के प्रावधान (Provisions of Pitti's India Act)

पिट्स इण्डिया एक्ट के प्रावधान निम्न प्रकार हैं—

1. **6 कमिश्नरों के एक बोर्ड का गठन**—6 कमिश्नरों का एक बोर्ड (जो बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के नाम से प्रसिद्ध हुआ) स्थापित किया गया जिसे भारत में अंग्रेजी अधिकृत क्षेत्र पर पूरा नियन्त्रण का अधिकार दिया गया। संचालकों द्वारा भेजे गए समस्त पत्र इसकी अनुमति एवं आज्ञा के बिना नहीं भेजे जा सकते थे और भारत से आने वाले समस्त पत्र इस बोर्ड के समक्ष रखे जाते थे। इस बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल को संचालकों की अनुमति के बिना भी आदेश भेजने का अधिकार था। तीन संचालकों की एक गुप्त समिति बनाई गई और बोर्ड के गुप्त आदेश, संचालकों की इस गुप्त समिति द्वारा भेजे जा सकते थे। बोर्ड ऑफ प्रोपराइटर्स के अधिकारों को बहुत सीमित कर दिया गया।

TOUCH 'n PASS

2. **गवर्नर जनरल के अधिकारों में वृद्धि**—भारत में गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या तीन कर दी गई। गवर्नर तथा गवर्नर जनरल की नियुक्ति संचालक करते थे किन्तु उन्हें वापिस बुलाने का अधिकार संचालक और राजा को मिल गया। मद्रास और बम्बई सरकारों को पूरी तरह से बंगाल सरकार के अधीन कर दिया गया यदि उन्हें कोई आदेश सीधे संचालक समिति से मिले हो जो बंगाल सरकार के आदेशों के विपरीत हो तब भी वे आदेश पहले बंगाल सरकार के पास भेजने होंगे और फिर बंगाल सरकार के आदेश अनुसार कार्य करना होता था।
3. **गवर्नर जनरल को बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अधीन होना**—संचालकों अथवा बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल की अनुमति के बिना गवर्नर जनरल को किसी भी भारतीय नरेश के साथ संघर्श आरम्भ करने का अथवा किसी राज्य को अन्य राज्यों के आक्रमण के विरुद्ध सहायता के आश्वासन देने का अधिकार नहीं था। इसी एक्ट में यह घोषणा भी की गई थी कि भारत में राज्य विस्तार और विजय की नीति का अनुसरण इस राष्ट्र की नीति प्रतिष्ठा तथा इच्छा के विरुद्ध है।
4. भारत में नौकरियों की भर्ती संचालकों के अधिकार में ही रही। बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को कलकत्ता अथवा इंग्लैण्ड के अधिकारियों की आज्ञाओं के उल्लंघन करने पर निलम्बित किया जा सकता था।

पिट्स एक्ट का मूल्यांकन (Appraisal of Pitti's India Act)

पिट्स एक्ट के मूल्यांकन को निम्न सूत्रों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

1. भारतीय प्रशासन पर इंग्लैण्ड सरकार का निश्चित अधिकार स्थापित हो गया। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का अध्यक्ष मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य होता था और इस प्रकार वह प्रणाली स्थापित हो गई जो थोड़े बहुत परिवर्तन से 1947 ई० तक चलती रही। 1858 ई० में कम्पनी के अधिकारों को समाप्त करके बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अध्यक्ष को ही भारत का सचिव बनाया गया।
2. पिट्स इण्डिया एक्ट की एक विशेषता यह थी कि इसने पदों पर नियुक्ति का अधिकार संचालकों के पास छोड़ दिया जिससे वे सरकार की नीति नियन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर सके। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का वास्तविक कार्य सरकार के दो सदस्यों द्वारा होता था, अन्य चार सदस्य कम रुचि रखते थे। इस प्रकार नीति संचालन पूरी तरह इंग्लैण्ड की सरकार के अधीन हो गया।
3. 1784 ई० के इस नियम से इंग्लैण्ड में कम्पनी संचालन का उत्तरदायित्व एक प्रकार से दो संस्थाओं में बट गया—संचालक समिति और बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल। बहुत बार इन संस्थाओं के परस्पर मतभेद सामान्य नीतियों के निर्माण में बाधाजनक हुए विभिन्न प्रस्ताव इन संस्थाओं के मध्य निर्णय के लिए लटक रहे थे। यह दोहरी प्रणाली 1858 ई० में समाप्त हुई थी। **सी०एच० फिलिप्स** ने ठीक कहा है कि 1884 ई० का एक्ट एक चतुर एवं कुटिल प्रस्ताव था जिसने संचालन समिति की राजनीतिक सत्ता को मन्त्रिमण्डल के गुप्त एवं प्रभावशाली नियन्त्रण में कर दिया था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के कार्यों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया—राजनीतिक एवं व्यापारिक। व्यापारिक कार्यों का नियन्त्रण कम्पनी के हाथों में छोड़ दिया गया, लेकिन कम्पनी के राजनीतिक, सैनिक और प्रशासनिक सम्बन्धी कार्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल की स्थापना की गई।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-III

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का उदय
Rise of Punjab under Ranjit Singh

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. रणजीत सिंह को किसने हराया?

Who defeated Ranjit Singh?

उत्तर 1823 में, युसुफजई पश्तूनों ने काबुल नदी के उत्तर में रणजीत सिंह की सेना से लड़ाई की। 1834 में, मोहम्मद अजीम खान ने एक बार फिर काफिरों के खिलाफ लड़ने के लिए जिहाद के नाम पर 25,000 खट्टक और युसुफजई आदिवासियों की सेना के साथ पेशावर की ओर कूच किया।

प्र.2. मिस्लों की केंद्रीय संस्था कौन-सी थी?

Which is the central organisations of the misls?

उत्तर जागीरदारी प्रथा में मिस्ल के मुखिया द्वारा जागीर के अनुदान का प्रयोग किया जाता था। जागीर मिस्ल के मुखिया द्वारा सम्बन्धियों, आश्रितों और उन लोगों को दी जाती थी जो "अच्छे के योग्य" थे। जागीरों के मालिक मिस्ल के मुखिया के अधीन थे क्योंकि उनका स्वामित्व उसकी जरूरतों के अधीन था।

प्र.3. महाराजा रणजीत सिंह को शेरे पंजाब क्यों कहा जाता था?

Why was Ranjit Singh called 'Sher-i-Punjab'?

उत्तर रणजीत सिंह एक सहस्राब्दी में भारत के पारंपरिक विजेताओं, पश्तूनों (अफगानों) के घरों में आक्रमण के ज्वार को वापस करने वाले पहले भारतीय थे, और इस तरह उन्हें पंजाब के शेर के रूप में जाना जाने लगा।

प्र.4. महाराजा रणजीत सिंह कौन थे? उनके शासनकाल की विशेषताएँ बताइए?

Who was Ranjit Singh? Mention the characteristics of his reign?

उत्तर महाराजा रणजीत सिंह (पंजाबी) (1780-1869) पंजाब प्रांत के राजा थे। वे शेर-ए पंजाब के नाम से प्रसिद्ध हैं। महाराजा रणजीत एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने न केवल पंजाब को एक सशक्त सूबे के रूप में एकजुट रखा, बल्कि अपने जीते-जी अंग्रेजों को अपने साम्राज्य के पास भी नहीं भटकने दिया।

प्र.5. सिख साम्राज्य का अंतिम शासक कौन था?

Who was the last Sikh Emperor?

उत्तर सिख साम्राज्य के अंतिम शासक महाराजा दलीप सिंह थे।

प्र.6. सिख साम्राज्य को किसने हराया?

Who defeated the Sikh Empire?

उत्तर यह लड़ाई 28 जनवरी, 1846 को प्रथम सिख युद्ध (1845-46) के दौरान लड़ी गई थी। एक ब्रिटिश-भारतीय सेना ने पंजाब की सिख सेना को ले लिया, जिसे खालसा (शाब्दिक रूप से 'शुद्ध') के रूप में जाना जाता है। यह एक निर्णायक ब्रिटिश जीत में समाप्त हुआ और कुछ लोगों द्वारा इसे 'पूर्ण युद्ध के निकट' के रूप में देखा जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. मैसूर क्यों प्रसिद्ध है?

Why is Mysore famous?

उत्तर मैसूर कर्नाटक की सांस्कृतिक राजधानी होने के साथ-साथ राज्य का दूसरा सबसे बड़ा शहर भी है। दक्षिण भारत का यह प्रसिद्ध पर्यटन स्थल अपने वैभव और शाही परिवेश के लिए जाना जाता है। मैसूर शहर की पुरानी चमक-दमक, खूबसूरत गार्डन, हवेलियाँ और छायादार जगह यहाँ आने वाले पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

प्र.8. युद्ध के पश्चात् के परिदृश्य का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief description of the situation after the war.

उत्तर युद्ध के पश्चात् के परिदृश्य का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. लॉर्ड वेलेजली ने मैसूर साम्राज्य के सुंदर एवं हरपोनेली जिलों को मराठों को देने की पेशकश की, जिसे बाद में मना कर दिया गया।
2. निजाम को गूटी एवं गुर्रमकोंडा जिले दिए गए थे।
3. अंग्रेजों ने कनारा, वायनाड, कोयंबटूर, द्वारापुरम एवं श्रीरंगपट्टनम पर अधिकार कर लिया।
4. मैसूर का नया राज्य एक पुराने हिंदू राजवंश के कृष्णराज तृतीय (वाडियार) को सौंप दिया गया, जिसने सहायक संधि स्वीकार कर ली।

प्र.9. 1849 में सिख साम्राज्य का अंत क्यों हुआ?

Why did the Sikh Empire define in 1849?

उत्तर महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद, आंतरिक विभाजन और राजनीतिक कुप्रबंधन से साम्राज्य कमजोर हो गया था। अंत में, 1849 तक द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध में हार के बाद राज्य को भंग कर दिया गया था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु 1839 ई० के पश्चात् अंग्रेजों और सिखों के मध्य युद्ध के कारणों का उल्लेख कीजिए।

Mention the causes of the war between the British and the Sikhs after the demise of Maharaja Ranjit Singh?

उत्तर

लॉर्ड हार्डिंग (1844-48 ई०)
[Lord Hardinge (1844-48)]

लॉर्ड एलनबरो के पश्चात् लॉर्ड हार्डिंग को 1844 ई० में भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। इसके शासन काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना प्रथम सिख युद्ध था।

प्रथम सिख युद्ध (1845-46 ई०) (First Sikh War)

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु 1839 ई० के पश्चात् अंग्रेजों और सिखों के मध्य प्रथम युद्ध लड़ा गया, जिसके निम्नलिखित कारण थे—

1. **अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति**—अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज्य की सीमाएँ सतलज नदी तक पहुँच गयी थीं और अब वे सम्पूर्ण पंजाब पर अपना अधिकार करना चाहते थे।
   आस्बोर्न ने 1838 ई० में ही अपनी पंजाब नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, **"हमने बड़े ऊँटों को भी निगल लिया है यह तो मछली है।"**
2. **पंजाब की अराजकता**—महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् पंजाब में अशान्ति एवं गृहयुद्ध फैल गया, क्योंकि पंजाब के उत्तराधिकारी बहुत निर्बल थे और राज्य की शक्ति खालसा सेना या सिख सेना के हाथ में चली गयी थी। इस कारण दरबार में षड्यंत्र रचे जाने लगे, फलस्वरूप महाराजा के कई उत्तराधिकारियों का वध कर दिया गया। इस अराजकता ने कम्पनी को राजनीतिक व सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पंजाब को अंग्रेजी राज्य में मिलाने के लिए प्रेरित किया।

TOUCH 'n' PASS

3. **खालसा सेना को शक्तिहीन करने का प्रयास**—रणजीत सिंह के निर्बल उत्तराधिकारी खालसा सेना की निष्ठा प्राप्त नहीं कर सके, जिसके कारण सिख नेता इसका उपयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति में करने लगे। अन्तिम उत्तराधिकारी दिलीप सिंह के समय सेना की शक्ति दुर्बल करने के लिए प्रधानमंत्री लाल सिंह और दिलीप सिंह की माता जिंदा, जो उसकी संरक्षिका थी, ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय कर लिया। कुछ विद्वान इस कारण से असहमत हैं।
4. **अंग्रेजों द्वारा युद्ध की तैयारी**—अंग्रेजों ने अमृतसर की संधि (1809 ई०) की उपेक्षा करते हुए सीमा पर अपनी सैनिक संख्या में वृद्धि कर दी। इसी समय लुधियाना के अंग्रेज एजेण्ट क्लार्क ने सतलज नदी के दक्षिण स्थित प्रदेशों पर अंग्रेजी दावे की घोषणा कर दी। अत: सिखों का उत्तेजित होना स्वाभाविक था।
इन्हीं परिस्थितियों में लॉर्ड हार्डिंग ने 13 दिसम्बर, 1845 ई० को युद्ध की घोषणा कर दी।
5. **युद्ध की घटनाएँ**—युद्ध की घोषणा होते ही 14-15 दिसम्बर, 1845 ई० को सिख सेना ने सतलज नदी पार करके मोर्चा बाँध लिया। दोनों सेनाओं का 18 दिसम्बर को मुदकी (फिरोजपुर के समीप) नामक स्थान पर युद्ध हुआ। यद्यपि आरम्भ में सिख सेना को विजय प्राप्त हुई, किन्तु लाल सिंह के विश्वासघात के कारण सिख सेना पराजित हो गई। सिखों ने पुन: युद्ध की तैयारी की और 21 दिसम्बर को फीरोजशाह के समीप दूसरा संघर्ष शुरू हुआ। इस भीषण संघर्ष में अंग्रेजी सेना की बहुत क्षति हुई, किन्तु अन्त में विजय अंग्रेजों को ही प्राप्त हुई। यहाँ भी पराजय का प्रमुख कारण अपने ही नेताओं का विश्वासघात था। अंग्रेजों और सिखों का अन्तिम संघर्ष सभराँव में हुआ। सिख नेताओं का विश्वासघात इस युद्ध में चरम सीमा पर पहुँच गया। लाल सिंह ने सेना की सम्पूर्ण योजना अंग्रेज सेनापति कर्नल लारेन्स को भेज दी। तेजसिंह युद्ध प्रारम्भ होते ही रण-क्षेत्र से भाग गया। पटियाला नरेश गुलाब सिंह भी अंग्रेजों से मिल गये। तेजसिंह ने तो सतलज नदी पर बने नावों के पुल को भी तोड़ दिया, जिससे सिख सेना पीछे न हट सके। इस गम्भीर स्थिति में सिख सेना ने आत्मसमर्पण नहीं किया किन्तु अन्त में विवश होकर अपने को नदी में अर्पित कर दिया। इस प्रकार जो सिख सेना भारत भर में सबसे शक्तिशाली समझी जाती थी, अपने ही नेताओं के विश्वासघात के कारण उसका बहुत-सा भाग नष्ट हो गया।

प्र.2. लाहौर की सन्धि (9 मार्च, 1846 ई०) और भैरोंवाल की सन्धि (2 दिसम्बर, 1846 ई०) की व्याख्या कीजिए।
Explain the Treaty of Lahore (9th March, 1846) and the Treaty of Bhaironwal (2th December 1846).

उत्तर

लाहौर की सन्धि (9 मार्च, 1846 ई०)
(Treaty of Lahore 9th March, 1846)

इस सन्धि के अनुसार—
1. दिलीप सिंह ने सतलज से दक्षिण प्रदेश पर से अपना दावा त्याग दिया।
2. उसने व्यास तथा सतलज नदियों के बीच का दोआब प्रदेश अंग्रेजों को प्रदान कर दिया।
3. युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में सिखों ने डेढ़ करोड़ रुपया अंग्रेजों को देना स्वीकार किया, जिसमें 50 लाख रुपया नकद दिया गया और एक करोड़ के बदले में कश्मीर का प्रान्त अंग्रेजों को दे दिया गया। किन्तु डोगरा राजा गुलाब सिंह ने एक करोड़ रुपया अंग्रेजों को अदा कर कश्मीर खरीद लिया और स्वयं वहाँ का शासक बन गया।
4. दिलीप सिंह को अपनी सेना की संख्या घटाकर 20 हजार पैदल 12 हजार घुड़सवार करनी पड़ी।
5. अंग्रेजी सेना को पंजाब से गुजरने की आज्ञा दे दी गई।
6. एक अंग्रेज रेजिडेंट लाहौर में रखा गया तथा उसके नेतृत्व में एक सेना भी लाहौर में रखी गयी।

इसके अतिरिक्त रानी जिंदा को अल्पव्यस्क महाराजा दिलीप सिंह का संरक्षक और लाल सिंह को प्रधानमंत्री भी मान लिया गया तथा सिखों के राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का अंग्रेजों ने वचन दिया।

भैरोंवाल की सन्धि (2 दिसम्बर, 1846 ई०)
(Treaty of Bhaironwal (2nd December 1846)

लाहौर की सन्धि के अनुसार लाल सिंह तथा रानी जिंदा को अंग्रेजी नियन्त्रण अखरने लगा। अंग्रेज रेजिडेण्ट ने आज्ञा दी कि कश्मीर डोगरा राजा गुलाब सिंह को दे दिया जाए। इस विषय में विवाद उत्पन्न हो गया। फलत: लालसिंह तथा रानी जिंदा को

TOUCH 'n PASS

निर्वासित कर दिया गया तथा दिलीप सिंह के साथ पूरक सन्धि के रूप में 2 दिसम्बर, 1846 ई० में भैरोवाल की सन्धि की गयी, जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

1. महाराजा दिलीप सिंह के संरक्षण के लिए पंजाब में अंग्रेजी सेना बनी रहेगी तथा उसके लिए सिख राज्य को 2.2 लाख रुपये वार्षिक देने होंगे।
2. महाराजा दिलीप सिंह को अल्प व्यस्कता खत्म होने के वर्ष 1854 ई० तक पंजाब का शासन रेजिडेण्ट हेनरी लारेन्स की अध्यक्षता वाली परिषद् के हाथों में रहेगा। इस प्रकार अंग्रेजों ने पंजाब पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। रानी जिन्दा के विरोध करने पर उसे ₹ 48,000 की पेंशन देकर शेखपुरा भेज दिया गया।

प्र.3. रणजीत सिंह के शासन के आरम्भिक वर्ष का उल्लेख कीजिए।
Ranjit Singh and the Initial years of his reign.

उत्तर

रणजीत सिंह तथा उनके शासन के आरम्भिक वर्ष
(Ranjit Singh and the Initial Years of his Reign)

रणजीत सिंह का जन्म 1780 में हुआ था। बचपन में चेचक की वजह से उनकी एक आँख खराब हो गयी थी। पिता माहासिंह रणजीत सिंह को भी अपनी तरह एक योद्धा बनाना चाहते थे, शायद इसलिए रणजीत सिंह ने कलम तथा खिलौने की जगह बचपन में ही तलवार थाम ली। उन्होंने कभी भी औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण नहीं की परन्तु कहा जाता है कि वह दिमाग से इतना तेज थे कि इन्हें सभी गाँव के नाम संबंधित क्षेत्र के अनुसार याद थे। राजनैतिक समीकरण को मजबूत करने के लिए यह माना जाता है कि उनके पिता ने रणजीत सिंह का विवाह केवल 6 वर्ष की आयु में कर दिया था। उस समय उनकी पत्नी की उम्र शायद 5 वर्ष थी। कन्हैया मिस्ल में रणजीत सिंह की शादी करने में, सैनिक राजनैतिक तथा सामरिक दृष्टि से माहासिंह और भी अधिक शक्तिशाली हो गए। उनके विवाह के बारे में कहा जाता है कि जब रणजीत सिंह बहुत बिमार थे, उस समय उनकी माता राजकौर उनकी दीर्घ आयु की दुआ माँगने ज्वाला मुखी मंदिर गई थी। सादा जो गुरबक्श सिंह की विधवा तथा रामगढ़िया मिस्ल के जयसिंह की बहु थी, ने राजकौर को इस बात के लिए समझाने की कोशिश की जब रणजीत सिंह स्वस्थ हो जाए तब उनकी पुत्री महताब से रणजीत सिंह का विवाह कर दिया जाए। अंतत: जयसिंह ने अपनी पोती के विवाह का प्रस्ताव जब माहासिंह के सामने रखा तो वो भी इससे सहमत हो गए। इस प्रकार रणजीत सिंह तथा महताब का विवाह बड़े धूमधाम से किया गया।

अपने शासन के आरंभिक दिनों में ही रणजीत सिंह ने यह सिद्ध कर दिया था कि पंजाब का राज्य क्षेत्र विभिन्न परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच नहीं बंटा रह सकता। समय की यह माँग है कि इसका एकीकरण हो और वो भी रणजीत सिंह के अधीन। अपने शासन के शुरुआती दिनों में रणजीत सिंह को न केवल बाहरी शक्तियों से लोहा लेना पड़ा बल्कि आंतरिक प्रतिरोधों का भी सामना करना पड़ा। अल्पआयु के बावजूद उन्होंने बड़ी बहादुरी से आन्तरिक तथा बाहरी खतरे का दमन किया। उनकी कूटनीतिक चालों ने उन्हें एक सफल तथा कुशल प्रशासक के रूप में स्थापित कर दिया। पिता माहासिंह ने बहादुरी के साथ सुकरचकिया मिक्ल के शासन क्षेत्र को अफगान आक्रमण से सुरक्षित रखा। परन्तु उनके मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही अफगान आक्रमण का एक नया दौर शुरू हो गया।

रणजीत सिंह ने अफगान आक्रमण को अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एक अवसर के रूप में इस्तेमाल किया। अफगान सेना की शक्ति का अन्दाजा लगाते हुए रणजीत सिंह ने यह तय किया कि वह काबुल के शासक शाह जमान को अपना सहयोग देकर पंजाब की आन्तरिक राजनीति पर अपनी पकड़ मजबूत करेगा। कूटनीतिक चाल चलते हुए रणजीत सिंह ने शाह जमान से मित्रता स्थापित कर ली। जमान की सेना ने 1798 में लाहौर पर अपना कब्जा कर लिया परन्तु बहुत जल्द ही स्थिति को भांपते हुए उसने लाहौर छोड़ने का निर्णय लिया क्योंकि अधिक दिनों तक वहाँ टिके रहना न तो आर्थिक हित में था और न ही राजनैतिक। जैसे ही जमान की सेना लाहौर से हटी, साहेब सिंह, चैत सिंह तथा मुहर सिंह ने लाहौर को अपने नियंत्रण में ले लिया। रणजीत सिंह की नजर भी लाहौर पर थी। पहले तो उसने शाह जमान का विश्वास जीतने के लिए बारिश में फंसी अफगान सेना को सहायता प्रदान की तथा उनके तोपों को सुरक्षित जमान को सौंप दिया। अब रणजीत सिंह ने अपनी सास सदा कौर की मद्द से लाहौर पर चढ़ाई करने का निर्णय लिया। लाहौर को जीतने में रणजीत सिंह को अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा और शीघ्र ही उनके विरोधियों ने रणजीत सिंह के सामने आत्म समर्पण कर उनकी अधिकारिता स्वीकार कर ली। इस राजनैतिक सफलता ने रणजीत सिंह की प्रतिष्ठा को आसमान तक पहुँचा दिया। इसके बाद कई जागीरदार तथा सरदार रणजीत सिंह की अधीनता को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए। अपने शासन के आरंभिक दस वर्ष में पंजाब की राजनीति में मौजूद विभिन्न मिस्लों की शक्ति को लगभग समाप्त कर दिया। अपनी शक्ति को संगठित करने के लिए उन्होंने बल तथा मित्रता दोनों का इस्तेमाल किया। फतेह सिंह अहलूवालिया तथा अपनी सास सदा कौर के साथ मिलकर उन्होंने जो तिकड़ी बनाई उसने पंजाब की राजनीति को एक नयी दिशा दी।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. रणजीत सिंह तथा उनके प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a brief note on Ranjit Singh and his administration.

उत्तर

रणजीत सिंह तथा उनका प्रशासन
(Ranjit Singh and his Administration)

अपनी तीव्र बुद्धि तथा रणकौशल के दम पर रणजीत सिंह ने पंजाब में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इतने विशाल क्षेत्र को नियंत्रण में रखने के लिए एक प्रशासन तंत्र की आवश्यकता थी। अपने राज्य को एक अच्छा शासन प्रदान करने के लिए महाराजा ने इसे आठ सूबो में बाँट दिया। पहला लाहौर जो कि राजधानी थी, इसके अलावा अन्य सूबे, पेशावर, कश्मीर तथा मुल्तान आदि थे। रणजीत सिंह सरकार के मुखिया थे, इस कारण तमाम विभाग चाहे वह न्यायिक हो या सैनिक उनके अन्तर्गत ही आते थे। राज्य का कार्यकाल कई विभागों द्वारा संचालित लिया जाता था। जैसे दफ्तर ए मोर, दफ्तर ए अबवाब उल माल, दफ्तर ए दरोगा, दफ्तर ए तोशाखाना, दफ्तर ए रोजनामचा आदि। किसी भी दस्तावेज की कानूनी वैधता के लिए रणजीत सिंह की मुहर जरूरी थी। अपने शासन को मजबूती प्रदान करने के लिए महाराजा ने धर्मनिरपेक्षता को राज की नीति के रूप में अपनाया। शासन के महत्त्वपूर्ण कार्य भार या पदोन्नती अधिकारी की क्षमता के आधार पर मिलती थी न कि धर्म के। इसी प्रकार सेना के गठन के समय भी धर्मनिरपेक्षता को पूरी जगह दी गई। रणजीत सिंह ने सूबों के प्रशासन पर मुख्य रूप से ध्यान दिया। प्रत्येक सूबे को एक गवर्नर अथवा निजाम के अंतर्गत रखा। यह निजाम सीधे रणजीत सिंह को रिपोर्ट करते थे। प्रत्येक सूबे को जिले में विभाजित किया गया। जिले के मुख्य अधिकारी को करदार कहते थे। यह करदार मुगल फौजदार की तरह होते थे परन्तु इनकी शक्ति तथा अधिकार क्षेत्र फौजदारों से ज्यादा होता था। सूबे की सबसे छोटी इकाई मोना होती थी।

सरकार की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व ही था। भू-राजस्व का निर्धारण अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से होता था। प्राकृतिक आपदा के समय सरकार पीड़ित क्षेत्रों को सहायता भी प्रदान करती थी। गाँव के स्तर पर विवादों का निपटारा पंचायत द्वारा किया जाता था परन्तु अगर कोई व्यक्ति निचली अदालतो के फैसले से खुश नहीं है तो वह सीधे महाराज को अपील कर सकता था। अनपढ़ होने के बावजूद जिस प्रकार वे प्रशासन की देख-रेख करते थे। यह निश्चित रूप में प्रशंसा के योग्य है।

प्र.5. ब्रिटिश शासन की सिंध एवं पंजाब पर विजय के कारणों को लिखिए।
Write the causes for the victory of British over Sindh and Punjab.

उत्तर

सिंध एवं पंजाब विजय
(Victory Over Sindh and Punjab)

सिंध विजय के कारण (Causes for Victory Over Sindh)

सिंध विजय के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश ने 1843 में चार्ल्स नेपियर के नेतृत्व में सिंध पर विजय प्राप्त की।
2. सिंध का सामरिक महत्त्व था। यह अरब सागर पर स्थित है जो यूरोप से आने वाले समुद्री मार्ग पर पड़ता है और ईरान की ओर से आने वाले भू-भाग पर।
3. नेपोलियन द्वारा भारत प्रस्थान करने की योजना से इसका सामरिक महत्त्व और बढ़ गया और 1807 ई० में जब टिलसित की रूस-फ्रांस संधि में ईरान के मार्ग से भारत पर आक्रमण करने की बातें की गई तब ब्रिटिश ने सिंध के अमीरों से संधि वार्ताएँ शुरू की।
4. सिंध का वाणिज्यिक महत्त्व भी था। ब्रिटेन के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सिंध नदी के मार्ग से मध्य एशिया की मंडियों तक पहुँचने की संभावना पर बल दिया गया।
5. सिंध नदी से ब्रिटिश अपने सैनिकों की आवाजाही सुनिश्चित कर सकते थे।
6. अंग्रेजों की अफगान युद्ध की पराजय से जो किरकिरी हुई थी, उसकी पूर्ति हेतु सिंध विजय आवश्यक थी।
7. नेपियर—"सिंध को अपने अधीन करने का हमें कोई अधिकार नहीं फिर भी हम ऐसा करेंगे और यह बहुत लाभदायक, उपयोगी एवं लोकोपकारी नीचता होगी।"

पंजाब विजय के कारण (Causes for Victory Over Punjab)

सिंध विजय के पश्चात् पंजाब एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच दो युद्ध हुए जिन्हें आंग्ल सिख युद्ध कहा जाता है। इसके पश्चात् 1849 ई० में पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। इस समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी था जो साम्राज्यवादी नीति का पक्षधर था।

कारण—इसके कारण निम्नलिखित हैं—

1. सिंध की भाँति पंजाब में भी अंग्रेजों ने उसी समय से रुचि लेना प्रारंभ कर दिया था जब 1807 में रूस के साथ तिलसित की संधि के समय नेपोलियन ने भारत पर आक्रमण की बात की थी।
2. पंजाब की अत्यधिक उपजाऊ और सघन भूमि अंग्रेजों के आकर्षण का कारण थी।
3. मध्य एशिया से संपर्क रखने के लिए यह क्षेत्र सामरिक और भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था।
4. 1843 में सिंध विजय के पश्चात् भारत में अंग्रेजी राज्य की सीमा असमान हो गई थी। पंजाब पर अधिकार से साम्राज्य हिन्दूकूश पर्वत श्रृंखला तक प्राकृतिक सीमा प्राप्त कर सकता था।
5. रणजीत सिंह के पश्चात् पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता थी इस समय तक प्रतिद्वन्दी सिख सरदार अंग्रेजों से बातचीत कर अपनी स्थिति मजबूत करने में लगे थे।
6. अत: 1845-46 ई० में प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजों ने लाहौर पर अधिकार किया और वहाँ ब्रिटिश सेना की तैनाती कर दी गई। कालांतर में ब्रिटिश ने लाहौर दरबार में भैरोवाल की संधि की जिसके तहत् प्रत्येक विभाग पर उनका नियंत्रण कायम हो गया।
7. 1848 ई० में नया गवर्नर जनरल डलहौजी आया। इस समय अंग्रेजों ने सिखों पर ब्रिटिश विरोधियों का साथ देने का आरोप लगाया और 1849 ई० में पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. महाराजा रणजीत सिंह एक महान् विजेता थे? विवेचना कीजिए।
Maharaja Ranjit Singh was a great ruler. Discuss in detail.

उत्तर

महाराजा रणजीत सिंह (1780-1839 ई०)
[Maharaja Ranjit Singh (1780-1839)]

महाराजा रणजीत सिंह सुकरचकिया मिस्ल के मुखिया माहासिंह के पुत्र थे और उनका जन्म 2 नवम्बर, 1780 को गुजरांवाला में हुआ था। बचपन में इकलौता पुत्र होने के कारण लाड-प्यार से बिगड़ गये और उन्होंने पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं दिखाई। किन्तु उन्हें शिकार, खेलकूद आदि का बहुत शौक था। बचपन में चेचक की बीमारी के कारण उनकी एक आँख जाती रही तथा चेहरा कुरूप हो गया। 1792 ई० में जब रणजीत सिंह की उम्र 12 वर्ष थी, गुजरात में उनके पिता माहासिंह की मृत्यु हो गई। अत: 1792 ई० में उन्हें अपनी मिस्ल की जिम्मेदारी संभालनी पड़ी। किन्तु अल्पव्यस्क होने के कारण उनकी माता राजकौर और दीवान लखपत राय उनके संरक्षक बने। 16 वर्ष की आयु में कन्हैया मिस्ल की मुखिया सदाकौर की पुत्री मेहताब कौर से उनका विवाह हो गया। इसके पश्चात् रणजीत सिंह ने अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारम्भ किया।

रणजीत सिंह की शक्ति में वृद्धि—1798 ई० में अफगानिस्तान के शासक जमानशाह ने पंजाब पर आक्रमण किया, उसे सफलता भी मिली और उसने पंजाब के विशाल भाग पर अधिकार भी कर लिया, किन्तु पीछे उसके राज्य में अशान्ति फैल गई, इसलिए शीघ्रता से उसे काबुल वापिस लौटना पड़ा। काबुल जाते समय जब वह झेलम पार कर रहा था, उसकी तोपें नदी के दलदल में फँस गयीं। तोपें निकालने का समय उसके पास नहीं था। जब रणजीत सिंह ने बाद में तोपें निकलवाकर उसके पास भिजवा दीं तो इससे प्रसन्न होकर जमानशाह ने रणजीत सिंह को लाहौर पर अधिकार करने की अनुमति दे दी। फलस्वरूप रणजीत सिंह ने लाहौर को अपने अधिकार में ले लिया।

लाहौर पर अधिकार करने के पश्चात् रणजीत सिंह ने 1805 ई० में भंगी मिस्ल से अमृतसर भी छीन लिया। इस तरह से रणजीत सिंह ने पंजाब की राजनीतिक राजधानी लाहौर तथा पंथिक (धार्मिक) राजधानी अमृतसर पर अधिकार कर अपनी प्रतिष्ठा तथा शक्ति में काफी वृद्धि कर ली। इसके पश्चात् उन्होंने पंजाब की अनेक मिस्लों पर अधिकार कर लिया। अब उनकी मिस्ल एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिवर्तित हो गयी।

रणजीत सिंह के अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध—पंजाब में सिखों की बढ़ती हुई शक्ति से अंग्रेज भयभीत थे। किन्तु वे दक्षिण में शक्तिशाली मराठों से उलझे हुए थे। अत: उन्होंने रणजीत सिंह के साथ मधुर सम्बन्धों को महत्त्व दिया। 1800 ई० में लॉर्ड वेलेजली ने अपने दूत यूसूफ अली को बहुत उपहार आदि देकर रणजीत सिंह के दरबार में भेजा और दोनों पक्षों में मित्रता का प्रस्ताव रखा। इसका एक कारण अफगानिस्तान के शासक जमानशाह के भारत आक्रमण का खतरा बना होना था और अंग्रेज

TOUCH 'n PASS

रणजीत सिंह से मित्रता में पश्चिमी सीमान्त की रक्षा देखते थे। इस मित्रता का लाभ अंग्रेजों को तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध में स्पष्ट रूप से मिला, जब 1806 ई० में तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध में परास्त होकर होल्कर की सेनाएँ पंजाब की ओर चली गईं और होल्कर ने रणजीत से सहायता माँगी तो रणजीत सिंह ने सहायता देने से इन्कार कर दिया। इसी समय 1806 ई० में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह से लाहौर की संधि की, जिसके अनुसार दोनों पक्षों ने बाहरी आक्रमण के समय पारस्परिक मित्रता का वचन दिया।

अमृतसर की संधि (25 अप्रैल, 1809 ई०)—अंग्रेजों और रणजीत सिंह के सम्बन्धों में सर्वाधिक महत्त्व अमृतसर की संधि का है। इसका कारण यह था कि रणजीत सिंह सतलज नदी पार कर पटियाला, नाभा, जींद आदि के प्रदेशों पर अधिकार करना चाहते थे और इस निमित्त इन क्षेत्रों पर उन्होंने दो बार आक्रमण किये। इन आक्रमणों से भयभीत होकर यहाँ के मिस्लदार अंग्रेजों की शरण में चले गये। उस समय लॉर्ड मिंटो भारत का गवर्नर जनरल था उसने चार्ल्स मेटकाफ को दूत बनाकर रणजीत सिंह के पास भेजा। किन्तु दोनों में समझौता नहीं हो सका। वार्ता टूटने पर रणजीत सिंह ने सतलज पार क्षेत्रों पर पुन: आक्रमण किया। उधर अंग्रेजों ने सर आक्टर लोनी के नेतृत्व में अपनी सेनाएँ भेजी, किन्तु दोनों पक्षों में युद्ध न होने से पूर्व ही संधि हो गयी, जो इतिहास में अमृतसर की संधि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस संधि के अनुसार—(1) दोनों पक्षों ने परस्पर मैत्री व शांति का आश्वासन देते हुए सतलज नदी को अपनी सीमा मान लिया। (2) अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को उत्तर पश्चिम विस्तार की छूट दे दी। इस प्रकार संधि से अंग्रेजों का बिना युद्ध किये ही यमुना तथा सतलज के मध्य के भू-भाग पर वर्चस्व प्राप्त हो गया। दूसरे रणजीत सिंह का सिख एकता का स्वप्न टूट गया।

पश्चिम की विजय—पूर्व में सतलज नदी सीमा निर्धारित हो जाने के पश्चात् रणजीत सिंह ने पश्चिम की ओर बढ़ना शुरू किया।

मुल्तान पर विजय—रणजीत सिंह 1802 ई० से ही मुल्तान पर अधिकार करने का प्रयास कर रहा था, इस निमित्त उसने छ: बार मुल्तान पर आक्रमण किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। 1818 ई० में रणजीत सिंह ने खडग सिंह तथा दीवान चन्द्र के नेतृत्व में एक विशाल सेना मुल्तान पर आक्रमण हेतु भेजी, जिसने मुल्तान पर अधिकार कर लिया।

कश्मीर विजय—अफगानों के आन्तरिक संघर्ष के कारण कश्मीर में उनकी शक्ति काफी कमजोर हो गयी थीं। अत: रणजीत सिंह ने 1819 ई० में कश्मीर पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की।

अफगानिस्तान के साथ संघर्ष तथा पेशावर विजय—1809 ई० में अफगानिस्तान में आन्तरिक संघर्ष शुरू हो गया। इस संघर्ष में अहमदशाह अब्दाली के पौत्र शाहशुजा को काबुल से विस्थापित कर दिया गया, तो उसने पुन: काबुल प्राप्त करने के लिए रणजीत सिंह से सहायता माँगी तथा उपहार में कोहिनूर हीरा भेंट किया। रणजीत सिंह ने इस समय शाहशुजा को निश्चित आश्वासन नहीं दिया। कुछ समय पश्चात् रणजीत सिंह ने डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माइल खाँ तथा बन्नू को भी जीत लिया। 1834 ई० में रणजीत सिंह ने कई बार के प्रयत्नों के बाद पेशावर भी जीत लिया। इस युद्ध में उसका प्रसिद्ध सेनापति 'हरिसिंह नलुबा' मारा गया।

इस प्रकार रणजीत सिंह ने सतलज नदी से लेकर लद्दाख, कश्मीर और पेशावर तक प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

सिन्ध के प्रश्न पर अंग्रेजों के साथ कटु सम्बन्ध—रणजीत सिंह सिन्ध को अपने राज्य में मिलाने का स्वप्न देख रहा था, जबकि अंग्रेज, जो रूस के भय से आतंकित थे, भी सिन्ध पर अधिकार करना चाहते थे। 1834 ई० में उन्होंने सिन्ध विजय का प्रयास भी किया, किन्तु अंग्रेजों ने उनके इस प्रयास में बाधा डाल दी और स्वयं सिन्ध के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिए। रूस का खतरा अंग्रेजों को अभी भी आतंकित कर रहा था। अत: उन्होंने पहले अफगान शासक दोस्त मोहम्मद से दोस्ती का हाथ बढ़ाया। किन्तु जब इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली तो उन्होंने निर्वासित शासक शाहशुजा से वार्ता की और उसे पुन: काबुल पर बैठाने का निश्चय किया, इसके निमित्त रणजीत सिंह से भी वार्ता की। रणजीत सिंह से इस योजना में इस शर्त पर सम्मिलित होने की सहमति दी कि अंग्रेजी सेना उसके राज्य से नहीं गुजरेगी। इस प्रकार 1836 ई० में त्रिकोणीय मैत्री सम्पन्न हो गई। अत: अंग्रेजी सेनाएँ सिन्ध के मार्ग से होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करने गयी। यह युद्ध चल ही रहा था कि पक्षाघात से 1839 ई० में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गयी।

रणजीत सिंह के कार्यों का मूल्यांकन (Appraisal of the Works of Ranjit Singh)

महाराजा रणजीत सिंह ने नि:सन्देह पंजाब में सिख शक्ति को संगठित कर प्रशंसनीय कार्य किया। कट्टर सिख होते हुए भी महाराजा सर्वपंथ सद्भावी तथा उदार रहा, उनके शासन में प्रजा सुखी थी। उन्होंने अपने शासन काल में बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर लोगों की उच्च पदों पर नियुक्ति की। वह जनता में अपने सुशासन के कारण अत्यधिक लोकप्रिय थे। यद्यपि वह कुरूप थे किन्तु उसके चेहरे पर तेज टपकता था। उनकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। अनपढ़ होते हुए भी वह ज्ञानवान थे तथा उनके अनुभव महान् थे।

कुर्ग—बैंटिंक कुर्ग की मनोरम एवं स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु के कारण उसे कम्पनी राज्य में सम्मिलित कर यहाँ पर अंग्रेजों को बसाना चाहता था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने कुर्ग के राजा पर कुशासन का आरोप लगाया। इसके पश्चात् 1834 ई० में कम्पनी की सेना ने कुर्ग पर आक्रमण कर दिया और कुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार कुर्ग का राज्य भी कम्पनी के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

मैसूर—चतुर्थ मैसूर युद्ध में टीपू की पराजय के पश्चात् लॉर्ड वेलेजली ने मैसूर के राज्य का बहुत थोड़ा भाग पुराने हिन्दू वंश को दे दिया था। इन दिनों कृष्णराज मैसूर में शासन कर रहा था। बैंटिंक ने राजा कृष्णराज पर कुशासन, अव्यवस्था व लगान नहीं चुकाने के झूठे आरोप लगाकर हटा दिया और मैसूर पर अधिकार कर लिया। इस तरह बैंटिंक ने अंग्रेजी राज्य की सीमाओं में भी वृद्धि की।

बैंटिंक की पंजाब के प्रति नीति—बैंटिंक ने पंजाब के प्रति मैत्रीपूर्ण नीति का अनुसरण किया। बैंटिंक का पंजाब के प्रति मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने का मुख्य कारण यह था कि पूर्व की ओर द्रुतगति से बढ़ते हुए रूस से कम्पनी की राज्य की सुरक्षा हो सके। अत: 1831 ई० में उसने रोपड़ में महाराजा रणजीत सिंह से मिलकर मित्रता की संधि की। इस संधि के द्वारा बैंटिंक ने पंजाब की राजनीति में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। इसके साथ ही पंजाब के साथ एक व्यापारिक संधि भी की गयी। इस प्रकार बैंटिंक ने अपनी दूरदर्शिता से कम्पनी के राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा को सुरक्षित कर लिया तथा व्यापारिक संधि भी कर ली।

बैंटिंक की सिन्ध के प्रति नीति—बैंटिंक ने सिंध के सामरिक व व्यापारिक महत्त्व को देखते हुए सिंध के अमीरों से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किये। उसने कर्नल पोटिंगर को सिंध के अमीरों के पास बातचीत करने के लिए भेजा। परिणामस्वरूप 1832 ई० में अमीरों के साथ अंग्रेजों ने संधि कर ली। इस संधि के अनुसार दोनों पक्षों ने मैत्रीपूर्ण संबंधों का आश्वासन दिया। इस तरह बैंटिंक ने अपनी नीतियों के द्वारा एक ओर अनावश्यक युद्ध से बचते हुए आर्थिक स्थिति सुदृढ़ की तो दूसरी ओर कम्पनी की सीमाओं को सुरक्षा प्रदान की।

प्र.2. रणजीत सिंह के जन्म से पूर्व पंजाब की राजनैतिक स्थिति तथा मिस्ल की व्यवस्था का विस्तार से वर्णन करे।
Explain in detail the political condition of Punjab before the birth of Ranjit Singh and the organisation of Misls.

उत्तर

रणजीत सिंह के जन्म से पूर्व पंजाब की राजनैतिक स्थिति
(Political Conditions of Punjab before the Birth of Ranjit Singh)

नादिर शाह का 1739 में दिल्ली पर हमला पहले से ही खासकर औरंगजेब की मृत्यु के बाद, अपने पतन की ओर बढ़ रहे मुगल साम्राज्य के लिए एक बड़ा झटका था, परन्तु यह घटना सबके लिए अशुभ नहीं थी। इस स्थिति का फायदा उठाकर कई राज्य अपनी शक्ति को संगठित करने में लग गए तथा मुगल साम्राज्य से अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उन्होंने आक्रमक रूख अपनाया। दिल्ली पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण ने पंजाब में सिख शक्ति को संगठित होने का एक अवसर प्रदान कर दिया। सिख सरदारों की शक्ति का केंद्र अमृतसर था, जहाँ से ये अन्य क्षेत्रों में अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। लाहौर के गवर्नर मीर मुनू को सिख शक्ति के उदय के दूरगामी प्रभाव का अंदाजा था। इसलिए गवर्नर ने सिख सरदारों की शक्तियों को शुरू में ही कुचलना बेहतर समझा। मीर मुनू से बचने के लिए सिख सरदार तथा आन्दोलनकारी गाँवों में शरण लेने लगे। मीर मुनू ने विद्रोही सेना पर आक्रमण कर उन्हें तितर-बितर कर दिया तथा उनके किले पर भी कब्जा कर लिया। अमृतसर तथा उनके आस-पास के क्षेत्रों में कानून-व्यवस्था को बहाल करने के लिए कई उपाय किए गये। अपनी बहादुरी के बावजूद मीर-मुनू दिल्ली के षड्यन्त्र का शिकार हो गया। इस षड्यन्त्र के रचयिताओं में बजीर सफदरजंग भी था।

मुलतान के शासन की जिम्मेदारी मीन मुनू से लेकर शाहनवाज को सौंप दी जाती है। कौनरा मूल जिसे मीर मुनू ने अपना दीवान नियुक्त किया था, को शाहनवाज के खिलाफ खड़ा कर दिया। शाहनवाज तथा कौनरा मूल के बीच युद्ध हुआ जिसमें शाहनवाज मारा गया। मीर मुनू तथा कौनरा मूल, अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण के कारण, इस विजय का जश्न बहुत अधिक दिनों तक नहीं मना पाए। अप्रैल, 1752 में हुए इस युद्ध में कौनरा मूल की मृत्यु हो गयी। मीर मुनू भी अब्दाली सेना के सामने बहुत अधिक दिनों तक नहीं टिक पाये और अंतत: अब्दाली के सम्मुख समर्पण करने पर मजबूर हुए। भारी-भरकम रकम युद्ध हर्जाने के रूप में लेकर अब्दाली वापस लौट गया। लौटने से पहले उसने मीर मुनू को लाहौर तथा मुल्तान दोनों का वाइसराय नियुक्त कर दिया था।

इसी बीच अब्दाली के निर्देश से उसकी सेना की एक टुकड़ी अब्दुल्ला खान के नेतृत्व में कश्मीर की तरफ बढ़ी और जल्द ही उसे आसानी से जीत लिया। मीर मुनू की आकस्मिक मृत्यु के बाद उसकी पत्नी ने लाहौर तथा मुल्तान के शासन की बागडोर संभाली। इस राजनैतिक उथल-पुथल ने सिख सरदारों को संगठित होने का अवसर प्रदान किया।

1755 ई० में अब्दाली ने एक बार फिर भारत की ओर कूच किया, तथा उसकी सेना पंजाब के रास्ते दिल्ली पहुँची, यद्यपि उसने दिल्ली को जीतकर वापस मुगल शासक के हवाले कर दिया और वापस चला गया परन्तु दो महत्त्वपूर्ण सूबों पंजाब तथा सरहिंद को अपने नियंत्रण में ले लिया। इन दोनों सूबों के प्रशासन का दायित्व अपने पुत्र तैमूर के हाथों में दिया। स्थानीय अधिकारियों की शक्ति को कम करने के लिए तैमूर ने अदिना बेग जिसके नियंत्रण में समूचा जालंधर दोआब का क्षेत्र था को लाहौर तलब किया। भयभीत अदिना बेग ने सिख सरदारों तथा मराठों की सहायता लेना उचित समझा और उनकी मद्द लेकर हमला कर दिया, इस अचानक हमले ने तैमूर को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया। अब मराठा सेना जो अपनी शक्ति की पराकाष्ठा में थी, ने भी लाहौर पर कब्जा जमा लिया।

मराठों की बढ़ती शक्ति ने विभिन्न रियासतों के शासकों को भयभीत कर दिया था। शायद यही कारण था कि अहमद शाह अब्दाली ने मराठों को सबक सिखाने के लिए हिन्दुस्तान की तरफ कूच किया, उसकी मद्द के लिए अवध तथा रूहेलखण्ड के शासक पहले से ही तैयार थे। इन्होंने अब्दाली की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से सहायता की। अपने अहंकार के कारण शायद मराठों का कोई मित्र नहीं था। 1761 में पानीपत का जो युद्ध हुआ उसमें मराठा सेना बुरी तरह पराजित हुई। दिल्ली में कुछ दिन रुकने के बाद अब्दाली काबुल लौट गया। अब उसने लाहौर और सरहिंद को स्थायी तौर पर अपने पास रखने का निर्णय लिया। इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए ख्वाजा उबैद खान को लाहौर तथा जैन खान को सरहिंद का गवर्नर नियुक्त किया।

इस समय की राजनीति की एक खास बात थी, सिख सरदारों का अपने आपको संघ जिसे मिस्ल कहते हैं में संगठित करना। मिस्ल की राजनीति ने सिख शक्ति को बहुत हद तक संगठित किया जिसका सीधा असर उस समय के पंजाब की राजनीति पर दिखता है। संभवत: यही कारण था कि एक सफल विजेता होने के बावजूद भी अब्दाली पंजाब में अपनी राजनीति की स्थायित्व देने में असफल रहा, उसे लगातार सिखों के हमले का सामना करना पड़ा। सिख मिस्लों की आक्रामक राजनीति के कारण पंजाब में अब्दाली की शक्ति तितर-बितर हो गयी। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि सिख मिस्ल या सिख सरदार अब्दाली सेना से अपने संघर्ष के दौरान पूरी राजनैतिक सूझ-बूझ का इस्तेमाल करते थे। वे विशाल अफगान सेना से सीधे संघर्ष से बचते थे, जैसे ही अफगान सेना पंजाब के क्षेत्रों जैसे लाहौर, सरहिंद आदि को जीतकर अपनी सरकार स्थापित कर वापस लौटती थी, सिख सरदार उन राजनैतिक केन्द्रों पर आक्रमण कर उन पर कब्जा कर लेते थे।

मिस्ल की व्यवस्था (Organisation of Misls)

पंजाब में सिख राजनीति के लिए 1763 का युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण था। दिसम्बर, 1763 में सरहिंद की जंग सिख राजनीति के लिए निर्णायक साबित हुई। इस युद्ध में सरहिंद का गवर्नर जैन खान मारा गया तथा अफगान सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। अब सरहिंद से यमुना तक सिख सेना का कब्जा हो गया। इस जीत के बाद सिख सरदार अमृतसर में जमा हुए और उन्होंने देग, तेग और फतेह नामक सिक्के जारी किये, अनेक सरदारों ने अपनी सुरक्षा बढ़ाने के लिए किलों का निर्माण कराना भी प्रारंभ कर दिया।

यहाँ हम देखते हैं कि धर्म ने सिखों को राजनैतिक रूप से संगठित होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, बावजूद इस तथ्य के कि उनके अन्दर सामाजिक तथा आर्थिक गैर-बराबरी बहुत ही स्पष्ट रूप से विद्यमान थी। कनिंग्घम कहते हैं कि मिस्ल की व्यवस्था अंतत: 'धार्मिक संघ सामंतवाद' का रूप ले लेती है। अगर संख्या की बात करें तो उस समय पंजाब की राजनीति में लगभग 12 मिस्ल मौजूद थे। प्रत्येक मिस्ल के सदस्य को अपने सरदार अर्थात् मिस्ल के मुखिया का निर्देश मानना होता था। यहाँ पर मिस्लों तथा उसके मुखिया के नामों का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण होगा। अहलुवालिया मिस्ल के मुखिया सरदार जस्सा सिंह थे, जो अहलु गाँव के निवासी थे। भंगी मिस्ल एक अन्य शक्तिशाली मिस्ल थी जिसके संस्थापक सरदार धज्जा सिंह थे। इसी मिस्ल ने अफगान सेना को पराजित कर 1764 में लाहौर पर कब्जा किया था। इसके अलावा कन्हैया मिस्ल, नकाई मिस्ल, रामगढ़िया मिस्ल, फूलकियन मिस्ल, निहंग मिस्ल, फैजलपुरिया मिस्ल तथा सुकेरचकिया मिस्ल थे। सुकेरचकिया मिस्ल जिससे रणजीत सिंह संबंध रखते थे उनके नेतृत्व में धीरे-धीरे सबसे शक्तिशाली मिस्ल के रूप में उभरी।

यद्यपि धार्मिक पहचान ने विभिन्न मिस्लों को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई परन्तु इससे यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि मिस्लों तथा इनके सरदारों के बीच कोई मतभेद या संघर्ष नहीं था। वे अक्सर एक दूसरे पर अपनी शक्ति स्थापित करने के लिए संघर्ष का पथ चुनते थे, इतना ही नहीं उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी एक मिस्ल के अन्दर मतभेद तथा संघर्ष कोई असाधारण घटना नहीं थी। इसी संघर्ष का शिकार रणजीत सिंह के दादा चुरूत सिंह को होना पड़ा था। उत्तराधिकार के सवाल पर अपने पिता के विरुद्ध संघर्ष में बृज राज ने चुरूत सिंह से सहायता माँगी और इसके बदले चुरूत सिंह को सालाना नजराना देने का भी वचन दिया। चुरूत सिंह इसी अवसर की तलाश में था, क्योंकि बृजराज के पिता रंजीत देव से उसकी पुरानी दुश्मनी थी। इसी

बीच रंजीत देव ने भंगी मिस्ल की सहायता से अपनी स्थिति मजबूत कर ली। इस संघर्ष में चुरूत सिंह मारा गया, पिता की मृत्यु के बाद महासिंह जिसकी आयु केवल दस वर्ष थी को सुकेरचकिया मिस्ल का सरदार घोषित किया गया। महासिंह की माता अथवा चुरूत सिंह की विधवा ने चुरूत सिंह के मित्र जय सिंह की मद्द से भंगी मिस्ल के सरदार झुण्डा सिंह की हत्या की योजना बनाई। यहीं से भंगी मिस्ल और सुकेरचकिया मिस्ल की दुश्मनी की शुरुआत भी होती है।

यद्यपि सुकेरचकिया मिस्ल ने झुण्डा सिंह की हत्या कर चुरूत सिंह की मृत्यु का बदला ले लिया था परन्तु अब इस मिस्ल के भीतर भी नेतृत्व को लेकर सवाल खड़े होने लगे थे। कई सरदार जो चुरूत सिंह के अधीन काम कर चुके थे, अल्प आयु के माहासिंह पर अधिक भरोसा नहीं करते थे, परन्तु जल्द ही इस प्रकार के विरोध को दबा दिया गया। 1776 में माहासिंह की राजनैतिक स्थिति को मजबूत करने के लिए उनका विवाह जीन्द के गुजपूत सिंह की पुत्री से कर दिया गया। अपनी आन्तरिक स्थिति को मजबूत करने के बाद माहासिंह ने सुकेरचकिया मिस्ल की राजनैतिक सीमा के विस्तार का निर्णय लिया। उसकी विस्तारवादी नीति का पहला शिकार बना पीर मोहम्मद जो रसूलनगर का जमींदार था। इस सफलता ने माहासिंह को एक कुशल योद्धा के रूप में स्थापित कर दिया, इस सफलता का असर उस क्षेत्र की राजनीति पर बहुत साफ दिखाई देने लगा। कुछ सरदार जो भंगी मिस्ल को अपनी सेना प्रदान करते थे, उन्होंने अपनी वफादारी बदल दी तथा संरक्षण प्राप्त करने के लिए माहासिंह से जाकर मिलने लगे। अब सैनिक दृष्टि से कमजोर भंगी मिस्ल को अफगान सेना का सामना भी करना पड़ा, इस बदली हुई परिस्थिति ने भंगी मिस्ल की शक्ति को लगभग समाप्त कर दिया।

जब माहासिंह पंजाब के मैदानी भाग में अपनी शक्ति के विस्तार में लगे हुए थे उसी समय जम्मू की राजनीतिक उथल-पुथल ने उनकी विस्तारवादी नीति को एक और अवसर प्रदान किया। बृजराज ने अपने पिता तथा जम्मू के राजा राजा रंजीत देव को रास्ते से हटाकर सत्ता पर तो अपना अधिकार कर लिया था पर जल्द ही वह एक अकुशल शासक साबित हुआ। उसके विरुद्ध विरोध बढ़ रहा था। इस राजनैतिक उथल-पुथल ने माहासिंह को हस्तक्षेप का अवसर प्रदान किया। माहासिंह ने जम्मू पर चढ़ाई कर दी। माहासिंह ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए जम्मूशहर, जो कभी व्यापारियों तथा समृद्ध एवं धनी लोगों की शरणस्थली थी, को तबाह कर दिया। माहासिंह की विस्तारवादी नीति ने उसके कई दुश्मन पैदा कर दिए। यहाँ तक कि एक समय में उसके संरक्षक की भूमिका निभाने वाले जयसिंह को भी उससे समस्या होने लगी। जम्मू अभियान के बाद माहासिंह जब जयसिंह से मिलने अमृतसर पहुँचा तो वहाँ उसे अपमानित किया गया। अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसने रामगढ़िया मिस्ल के निष्कासित सरदार जुसा सिंह का समर्थन प्राप्त किया। माहासिंह तथा जुसा सिंह की सामुहिक सेना ने जय सिंह के क्षेत्र पर आक्रमण किया। इस युद्ध में जय सिंह का बेटा गुरबक्श सिंह मारा गया। बाद के घटनाक्रम में इसी गुरबक्श सिंह की बेटी का विवाह माहासिंह के बेटे रणजीत सिंह के साथ 1785 में हुआ। अत: माहासिंह के नेतृत्व में सुकरचकिया मिस्ल पंजाब की राजनीति में सबसे शक्तिशाली मिस्ल के रूप में सामने आयी। 1792 में केवल 29 वर्ष की आयु में माहासिंह की मृत्यु हो गयी।

प्र.3. रणजीत सिंह तथा इनके क्षेत्रीय विस्तार का वर्णन कीजिए।

Describe Ranjit Singh and his regional expansion.

उत्तर

रणजीत सिंह तथा क्षेत्रीय विस्तार
(Ranjit Singh and Regional Expansion)

लाहौर की जीत ने रणजीत सिंह को राजा रणजीत सिंह बना दिया था। लाहौर सदियों से सत्ता का केन्द्र रहा था और उस पर अधिकार नि:सन्देह रणजीत सिंह के लिए गर्व की बात थी। 1810 तक रणजीत सिंह ने अधिकतर मिस्लों को अपने अधीन कर लिया। अब उसने अपनी राजनैतिक सीमा में विस्तार को एक सुनियोजित रूप प्रदान करने की कोशिश की। सन् 1806 में रणजीत सिंह प्रशिक्षित सेना की एक मजबूत टुकड़ी लेकर मुल्तान पहुँचे, जहाँ के शासक मुजफ्फर खान ने उन्हें धन का लालच देकर लौटने के लिए मना लिया परन्तु अगले साल की रणजीत सिंह फिर से मुल्तान में जा पहुँचे। यद्यपि उनकी सेना ने मुल्तान के अधिकतर क्षेत्रों को तबाह कर दिया परन्तु वह इसे पूर्ण विजय में नहीं बदल पाई। अंतत: एक बार फिर रणजीत सिंह तथा मुजफ्फर खान के बीच समझौता हुआ जिसके अनुसार रणजीत सिंह की सेना ने मुल्तान पर से अपने कब्जे को समाप्त कर दिया। रणजीत सिह का मूल्तान के विरुद्ध तीसरा अभियान काबुल की राजनीति का परिणाम था। निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा शाह शुजा यह चाहता था कि रणजीत सिंह मुल्तान को जीतकर उसके हवाले कर दे। नि:संदेह मुल्तान पर अधिकार शाह शुजा की राजनैतिक स्थिति को मजबूत कर सकता था। 1810 में रणजीत सिंह एक मजबूत सेना के साथ मुल्तान पहुँचे और जल्द ही पूरा शहर उनके कदमों में झुक गया था। इस विजय के बाद यह उम्मीद थी कि रणजीत सिंह मुल्तान शाह के हवाले कर देगा परन्तु ऐसा हुआ नहीं। मुल्तान की राजनैतिक स्थिति को लेकर रणजीत सिंह ने अपना इरादा बदल दिया तथा शहर को अपने नियंत्रण में ही

रखना उचित समझा। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण मुल्तान को रणजीत सिंह शुजा के हवाले नहीं करना चाहते थे। मुल्तान पर उनकी पहले से ही नजर थी जिसका प्रमाण उसके पूर्व के अभियान है जब 1806 तथा 1807 में रणजीत सिंह ने मुल्तान पर अपना अधिकार करने की कोशिश की थी। परन्तु कुछ विद्वान रणजीत सिंह के इस कदम को सुनियोजित साजिश के रूप में नहीं देखते। उनका कहना है कि शाह शुजा ने मुल्तान के बदले रणजीत सिंह को जो रकम अदा करने की बात कही थी, वह उससे मुकर गया था। कारण चाहे जो भी हो इसमें कोई संदेह नहीं कि मुल्तान रणजीत सिंह के क्षेत्रीय विस्तार का एक महत्त्वपूर्ण निशाना था जिसको प्राप्त करने के लिए उन्होंने पूर्व में भी कोशिशें की थीं।

दुर्भाग्य से रणजीत का मुल्तान पर तीसरा हमला पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया। किले की घेराबन्दी में कई अधिकारी मारे गए। इसमें कोई शक नहीं कि रणजीत सिंह एक महान रणनीतिकार थे, स्थिति को सही रूप से भांपते हुए उन्होंने तय किया कि कुछ इस तरह का समझौता किया जाए जिससे उनकी प्रतिष्ठा को कोई हानि न पहुँचे। मुल्तान के शासक मुजफ्फर खान से 30,000 लेकर उन्होंने मुल्तान छोड़ने का निर्णय लिया। मुल्तान पर उनके द्वारा बार-बार किए जा रहे हमले ने मुजफ्फर खान की राजनैतिक स्थिति को अस्थिर कर दिया था। भय के कारण उसका मनोबल गिरने लगा था। इस भय का मनोवैज्ञानिक महत्त्व था। बल्कि सरदार तथा शासक भी रणजीत सिंह की सेना से अपने आप को सुरक्षित महसूस नहीं करते थे। अत: मुल्तान पर पूर्ण स्वतंत्रता न मिलने के बावजूद भी उनके सैनिक अभियान ने उनके राजनैतिक कद को बहुत ऊँचा कर दिया था। लगातार हमले तथा सतत् प्रयास के कारण एक लम्बे समय के बाद अंतत: रणजीत सिंह की सेना का मुल्तान पर कब्जा हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि अफगान शासक मुजफ्फर बहादुरी से लड़ा परन्तु उसकी मृत्यु ने अंतत: मुल्तान को रणजीत सिंह की झोली में डाल दिया।

रणजीत सिंह के विजय अभियान का अगला पड़ाव कश्मीर था। जम्मू पर सुकरचकिया मिस्ल का हमला कोई नई बात नहीं थी। उनके पिता माहासिंह भी कई बार उस क्षेत्र पर आक्रमण कर चुके थे। रणजीत सिंह की सेना के लिए भी वह क्षेत्र अनजाना नहीं था परन्तु कश्मीर अभी तक अपने आप को रणजीत सिंह के प्रभुत्व के बाहर रखने में सफल रहा था। राजनैतिक विस्तार की महत्वकांक्षा के साथ 1814 में पहली बार रणजीत सिंह की सेना ने अपना कदम कश्मीर की पहाड़ियों पर रखा। इस अभियान में उन्हें प्रत्यक्ष रूप से राजौरा तथा अप्रत्यक्ष रूप से पुँछ का समर्थन मिला। कश्मीर की महत्ता को देखते हुए रणजीत सिंह ने यह निर्णय लिया कि सेना का नेतृत्व वे स्वयं करेंगे। भौगोलिक अवरोधों के कारण सिख सेना के लिए यह अभियान आसान नहीं था। विपरीत परिस्थितियों का सामना कर रही रणजीत सिंह की सेना का कश्मीर के मौसम ने भी साथ नहीं दिया। लगातार बारिश तथा ठंड ने सेना की मुश्किलें और भी बड़ा दीं। कई कठिनाइयों का सामना करते हुए रामदयाल के नेतृत्व में रणजीत सिंह की सेना ने हीरापुर में अपना कदम रख दिया। उन्हें कुछ सफलता भी मिली। कश्मीर वादी में यह उनकी पहली कामयाबी थी परन्तु रामदयाल इस विजय को स्थायी बनाने में असफल रहे तथा कश्मीर की सेना ने उन्हें फिर से पीर पाजांल की पहाड़ियों की ओर ढकेल दिया। विपरीत परिस्थितियों में फंसी रणजीत सिंह की सेना पर अब पुँछ की ओर से भी आक्रमण होने लगा। इस अभियान ने रणजीत सिंह की सैन्य प्रबंधन की कार्यकुशलता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। उस क्षेत्र की बगैर किसी स्पष्ट जानकारी के तथा पहाड़ी क्षेत्रों के अनुकूल किसी सैन्य प्रशिक्षण के बिना अपनी सेना को उतारना उनकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षा का केवल एक परिणाम मात्र था।

इसने रणजीत सिंह के मनोबल को कम नहीं किया बल्कि अब वह एक नए ढंग से अपनी सेना को तैयार करने में लग गये। 1819 में कश्मीर पर हमला पूर्ण रूप से सुनियोजित था। इस बार कश्मीर अभियान के लिए उन्होंने अपनी सेना को मुख्य रूप से तीन टुकड़ियों में विभाजित कर दिया। पहली टुकड़ी दिवाकर चन्द के अधीन थी जिसे सीधे आक्रमण का निर्देश मिला हुआ था। दूसरी टुकड़ी जिसका नेतृत्व युवराज खडक सिंह कर रहे थे, उसका मुख्य कार्य पहली टुकड़ी को सहायता पहुँचाना था। तीसरी टुकड़ी का नेतृत्व स्वयं रणजीत सिंह कर रहे थे। इस टुकड़ी का मुख्य कार्य सेना को रसद पहुँचाना तथा आवश्यकता पड़ने पर पहली टुकड़ी को सहायता पहुँचाना था। इस सुनियोजित आक्रमण ने कश्मीर पर रणजीत सिंह की विजय को सुनिश्चित कर दिया और शीघ्र ही पुँछ तथा राजौरी को जीत लिया गया। इस प्रकार समस्त कश्मीर अब रणजीत सिंह की तलवार के अधीन आ चुका था। कश्मीर के प्रशासन की बागडोर संभालने के लिए रणजीत सिंह ने मोती राम, जो कि पूर्व दिवान के सुपुत्र थे, को वहाँ का गवर्नर नियुक्त किया। इस विजय से न केवल रणजीत सिंह की क्षेत्रीय सीमा का विस्तार हुआ बल्कि इसने रणजीत सिंह की प्रतिष्ठा और बढ़ा दी। इस विजय से कुछ पहले ही सिख सेना अटक तथा पेशावर को अपने नियंत्रण पर कर चुकी थी। अटक और पेशावर के बाद कश्मीर की विजय ने सिख सेना के मनोबल को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। अब पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के अधीन कश्मीर, मुल्तान तथा पेशावर यह सभी क्षेत्र आ चुके थे।

अफगान सेना और महाराज के बीच पेशावर पर अधिकार की लड़ाई बहुत महत्त्वपूर्ण थी। यह युद्ध इस बात को तय करने वाला था कि उत्तर पश्चिम सीमावर्ती क्षेत्रों तथा खैबर के क्षेत्र पर किसका अधिकार रहेगा, अफगान का या फिर सिखों का। राजनीतिक क्षेत्रीय विस्तार की लड़ाई ने बहुत जल्द ही धार्मिक रूप ले लिया। दोनों तरफ की सेनाओं को धर्म के आधार पर लामबंद किया गया जिसमें धार्मिक प्रतीकों को युद्ध नीति के रूप में इस्तेमाल किया गया। शुरुआती असफलताओं ने रणजीत सिंह को चौकन्ना कर दिया और जल्द ही उन्होंने अपने रणकौशल के बल पर युद्ध के परिणाम को अपनी ओर झुका लिया। रणजीत सिंह की विजयी सेना ने पेशावर शहर में प्रवेश किया। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए महाराजा स्वयं कुछ दिनों के लिए वहाँ रुके। शहर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के बाद यार मोहम्मद खान को पेशावर का गवर्नर नियुक्त किया गया। यार मोहम्मद खान के इस वचन के साथ की वह महाराजा को वार्षिक नजराना पेश करेगा, रणजीत सिंह ने अपनी सेना के साथ पेशावर छोड़ दिया।

कश्मीर से तुलना करें तो पेशावर का अभिमान तुलनात्मक रूप से सरल साबित हुआ। परन्तु इसमें कोई शक नहीं की इस विजय के बावजूद भी वहाँ की राजनीति को स्थायित्व प्रदान करना रणजीत सिंह के लिए आसान नहीं था जिसका मुख्य कारण खैबर तथा उत्तर पश्चिमी सिमांत क्षेत्रों में होने वाले विद्रोह थे। लगातार होने वाले विद्रोहों ने रणजीत सिंह की मुश्किलें बढ़ा दी थी। अपनी कुशल युद्धनीति तथा स्वयं एक अच्छें कूटनीतिज्ञ होने के बावजूद रणजीत सिंह अपने शासनकाल में कभी भी इन विद्रोहों को पूरी तरह से कुचल नहीं पाएँ। यह कहना गलत नहीं होगा की उत्तर पश्चिमी सीमांत के इलाकों में एक स्थिर प्रशासन स्थापित करने में तथा राजनैतिक स्थिरता प्रदान करने में महाराजा पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाएँ। संगठित रूप में रणजीत सिंह को सबसे बड़ी चुनौती सैयद अहमद बरेलवी ने दी।

सैयद अहमद बरेलवी जो वहाबी विचारधारा का प्रचारक था मुस्लिम बहुत क्षेत्रों में सिख प्रभुत्व को सहन नहीं कर पा रहा था, ने धर्म के नाम पर उत्तर पश्चिम सीमांत क्षेत्र में मुसलमानों को एकजुट करना शुरू कर दिया। अहमद बरेलवी 1826 में पेशावर पहुँचा। उसने वहाँ के मुस्लिम पख्तून कबाइलियों को सिख शासन के खिलाफ लामबंद करना शुरू कर दिया तथा उन्हें रणजीत सिंह के विरुद्ध जेहाद के लिए उकसाया। बहुत तेजी से उसकी राजनैतिक शक्ति का विस्तार होने लगा तथा 1830 में उसने पेशावर को जीत लिया। अहमद बरेलवी की इस विजय ने रणजीत सिंह को न केवल अचंभित किया बल्कि आने वाले बड़े खतरे को लेकर सचेत भी कर दिया। रणजीत सिंह ने यह निर्णय लिया कि अहमद बरेलवी की शक्ति को पूरी तरह से कुचलने से ही उनके राजनैतिक भविष्य को सुरक्षित रखा जा सकता है। अत: 1831 में बालाकोट के युद्ध में सिख सेना ने अहमद बरेलवी को परास्त कर उसकी हत्या कर दी। यद्यपि इस विजय ने रणजीत सिंह को थोड़ी राहत पहुँचाई परन्तु अपने पूरे शासनकाल में उन्हें इस क्षेत्र के विद्रोहों का सामना करना पड़ा।

रणजीत सिंह के शासन की शायद सबसे बड़ी उपलब्धि उनके अधीन सिख साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार था। एक ऐसे समय में जब एक तरफ अफगान पंजाब को अपने साम्राज्य का हिस्सा समझते थे, जिसका सबूत था अफगानी सेना का पंजाब की राजनीति में बार-बार हस्तक्षेप वहीं दूसरी तरफ मराठा शक्ति जिसकी नजर भी पंजाब पर थी। इन दोनों शक्तियों से पंजाब को न केवल बचाना बल्कि अपने साम्राज्य का लगातार विस्तार करना रणजीत सिंह की एक बड़ी उपलब्धि थी। इस संघर्ष में केवल मराठा या अफगान ही नहीं थे बल्कि एक और महत्त्वपूर्ण शक्ति थी जिसकी विस्तारवादी नीति से पंजाब को सुरक्षित रखकर रणजीत सिंह ने अपनी महान कूटनीति का सबूत दिया और वह शक्ति थी ब्रिटिश हुकूमत।

रणजीत सिंह तथा अंग्रेजी हुकूमत (Ranjit Singh and the British)

एक ऐसे समय में जब देशी रियासतें तथा स्थानीय शासक वर्ग अंग्रेजी हुकूमत से लोहा ले रहे थे, रणजीत सिंह का अंग्रेजों के साथ राजनैतिक संबंध विद्वानों के लिए चर्चा का विषय है। कुछ विद्वानों का मानना है कि कम्पनी तथा रणजीत सिंह के बीच हुए राजनैतिक समझौते का मुख्य फायदा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ही मिला, क्योंकि ब्रिटिश भारत की सुरक्षा की दृष्टि से पंजाब का एक बफर स्टेट के रूप में महत्त्व बढ़ गयी और अगर यह बफर स्टेट कम्पनी राज का सहयोगी हो तो ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार को अपनी उत्तरी सीमा की सुरक्षा की चिंता से मुक्ति मिल गयी।

परन्तु अधिकतर विद्वान रणजीत सिंह तथा कम्पनी सरकार के बीच के संबंध को रणजीत सिंह की राजनैतिक चाल तथा कूटनीति का परिणाम मानते हैं। इनका मानना है कि इस राजनैतिक संधि ने रणजीत सिंह को एक महान राजनेता के रूप में स्थापित कर दिया क्योंकि संधि की शर्तें महाराजा की राजनैतिक महत्वाकांक्षा तथा विस्तारवादी नीति के अनुकूल थी। अत: विद्वानों का यह वर्ग मानता है कि दोनों शक्तियों के बीच के समझौते से मुख्यत: रणजीत सिंह ही लाभान्वित हुए। विषय का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर यह तय कर पाना कि किसको अधिक लाभ हुआ और किसको कम परन्तु इस बात में कोई शक नहीं कि कम्पनी सरकार तथा रणजीत सिंह के बीच की संधि अवसरवादी राजनीति का परिणाम थी। हम कह सकते हैं कि यह संधि एक अवसरवादी संधि थी जिसमें दोनों पक्षो को अपने हितों की सुरक्षा के लिए एक दूसरे की आवश्यकता थी।

18वीं शताब्दी के अंत तक जहाँ एक ओर कम्पनी सरकार ने प्रत्यक्ष (सेना के बल पर कई राज्यों को जीत लिया) तथा अप्रत्यक्ष रूप से (सहायक संधि के द्वारा) लगभग समस्त भारत पर पंजाब को छोड़कर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली थी वहीं दूसरी ओर रणजीत सिंह ने भी तब तक पंजाब के सबसे मजबूत शासक के रूप में स्वयं को स्थापित कर लिया था। जब वेलेजली भारत आया उसने अपनी विस्तारवादी नीति बहुत स्पष्ट कर दी थी। यही स्थिति पंजाब में रणजीत सिंह की थी। अत: दोनों शक्तियों के बीच संघर्ष अवश्यभावी था परन्तु इससे पहले की ये परस्पर विरोधी हित संघर्ष में बदल जाए वेलेजली को इंग्लैण्ड वापस बुला लिया गया। वेलेजली के इंग्लैण्ड जाने से पहले 1803 में रणजीत सिंह तथा अंग्रेजी हुकूमत के बीच जंग की संभावना तेज होने लगी थी। रणजीत सिंह द्वारा सतलज नदी के दक्षिण की ओर विस्तार ने स्थानीय सिख सरदारों को भयभीत कर दिया था। ये सरदार अंग्रेजों की शरण में पहुँच गये। लेक, जो एंग्लो मराठा युद्ध का नायक था, ने स्थिति का पूरा लाभ उठाने की कोशिश की परिणामस्वरूप स्थानीय सरदारों की मद्द के लिए ब्रिटिश सेना ने व्यास नदी पार कर ली। रणजीत सिंह ने खतरे को भांपते हुए स्थिति को संभालने की कोशिश की। चाहे वह ब्रिटिश सत्ता हो या रणजीत सिंह दोनों अपने राज्यों की स्पष्ट सीमा चाहते थे। इस समय रणजीत सिंह ने सतलज नदी को अपने साम्राज्य की सीमा बनाना उचित समझा जिससे उत्तर की ओर आसानी से अपने क्षेत्र का विस्तार कर सके। यद्यपि वह सतलज नदी को सीमा बनाना चाहते थे लेकिन साथ ही इस नदी के दक्षिण में मौजूद क्षेत्रों जैसे फरीदकोट, कपूरथला, जींद, लुधियाना तथा पटियाला आदि को भी अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं रखना चाहते थे। इससे पहले की सीमा रेखा पर कोई स्पष्ट निर्णय लिया जाता, वेलेजली को वापस इंग्लैण्ड बुला लिया गया।

1807 में लॉर्ड मिन्टो गवर्नर जनरल का कार्यभार संभालने के लिए भारत पहुँचा। भारत पहुँचते ही उसकी सबसे बड़ी चिंता ब्रिटिश भारत की सुरक्षा थी। ब्रिटिश सरकार को यह ज्ञात हो चुका था कि फ्रांस का शासक नेपोलियन रूस तथा ईरान से संधि कर ब्रिटिश भारत पर आक्रमण करने वाला है। इस आक्रमण का मार्ग निश्चित रूप से पंजाब होकर ही गुजरेगा। अत: शक्तिशाली पंजाब, नेपोलियन की सेना तथा ब्रिटिश भारत के बीच एक बफर स्टेट की तरह काम कर सकता था। अत: मिन्टो ने रणजीत सिंह को इस बात के लिए मनाने की कोशिश की कि वह दक्षिण में सतलज को ही अपनी सीमा रेखा माने तथा यमुना तक अपने राज्य का विस्तार न करें। रणजीत सिंह यूरोप में चल रही राजनैतिक गतिविधियों से पूरी तरह अवगत थे। उन्हें इस बात का आभास था कि ब्रिटिश सरकार नेपोलियन के आक्रमण के भय के कारण उनकी शर्तों को मान लेगी। अत: यूरोप में नेपोलियन के उभार ने अप्रत्यक्ष रूप से रणजीत सिंह की स्थिति को और मजबूत कर दिया। स्थिति का फायदा उठाते हुए रणजीत सिंह ने सतलज नदी के दक्षिण में अपने आक्रमण को तेज कर दिया। मिन्टो ने पंजाब की समस्या को सुलझाने की जिम्मेदारी चार्ल्स मेटकाफ पर छोड़ दी। सितम्बर, 1808 में मेटकाफ ने रणजीत सिंह से मिलकर उन्हें नेपोलियन के आक्रमण के खतरे से अवगत कराया तथा इस बात पर जोर डाला कि इस संकट की स्थिति से निपटने के लिए ब्रिटिश हुकूमत तथा रणजीत सिंह की दोस्ती कितनी महत्त्वपूर्ण है। रणजीत सिंह इस बात पर तो सहमत हो गए कि नेपोलियन के आक्रमण की स्थिति में वह ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का साथ देगें परन्तु इस बात को उन्होंने पूरी तरह से खारिज कर दिया कि सतलज का दक्षिण भी अंग्रेजी प्रभुसत्ता के अन्दर होगा। इस वार्ता के दौरान ही उन्होंने शाहाबाद, फरीदकोट तथा अम्बाला को जीतकर यह बता दिया कि पंजाब पर अपने अधिकार को लेकर वे किसी प्रकार के समझौते के विचार में नहीं है। रणजीत सिंह के इस सैन्य अभियान ने दोनों पक्ष के बीच युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी। जब दोनों ओर से सैनिक तैयारियाँ अपने चरम पर थी तभी खुफिया विभाग ने नेपोलियन के आक्रमण के भय से दोनों पक्षों को अवगत कराया। अत: महाराजा तथा कम्पनी दोनों ही पक्ष समझौते के लिए तैयार हो गए और इस प्रकार 25 अप्रैल, 1809 को सतलज की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि ने सतलज नदी के उत्तर में रणजीत सिंह के सैन्य अभियान के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। अत: महाराजा तथा अंग्रेजों के बीच दोस्ती का यह संबंध जो नेपोलियन के भय के साथ शुरू हुआ, इस संकट की समाप्ति की बाद भी कायम रहा।

प्र.4. क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों के उदय की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिए। इन शक्तियों की वैधता के लिए शाही प्रतीकों की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? वर्णन कीजिए।

Examine the process of the rise of regional politics and kingdoms. Why did they feel the need of royal symbols for the legitimacy of their power? Explain.

उत्तर

क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों का उदय
(Rise of Regional Politics and Kingdoms)

मुगल साम्राज्य के पतन के क्रम में तथा उसके बाद की शताब्दी (अनुमानत: 1700 से 1850 ई०) में भारत में उदय हुए राज्य, संसाधन, दीर्घकालिता तथा प्रधान लक्षणों के आधार पर भिन्न-भिन्न थे। इनमें से कुछ राज्य जैसे कि दक्षिण में हैदराबाद ऐसे क्षेत्र

में स्थित था जिसने आरंभिक मुगल काल में स्वतंत्रता हासिल कर ली थी तथा राज्य निर्माण की एक स्थानीय तथा क्षेत्रीय परम्परा को चलाने वाला बना था। अन्य राज्य वे थे, जिनकी अपनी स्वाभाविक विशेषताएँ थीं तथा जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में घटित बहुत ही विशिष्ट पद्धति से पैदा हुए थे। विशेष रूप से उत्तर मुगलकाल में ये राज्य जातीय तथा साम्प्रदायिक आधार पर आधारित थे, जैसे—मराठा, जाट और सिख। फलस्वरूप इन क्षेत्रीय शक्तियों की सम्पन्नता ने स्थानीय भूमि तथा शक्तिधारियों को बाह्य अधिकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने का साहस दिया। हालांकि परस्पर शत्रुता तथा सघर्षों ने इन विद्रोहों को अपने हितों में संगठित कर शासन के विरुद्ध प्रभावी चुनौती देने में बाधा उत्पन्न की। वे रिश्तेदारों, किसान, तथा अपनी जाति के छोटे जमींदारों के समर्थन पर ही निर्भर थे। हर स्थानीय समूह अपनी समृद्धि दूसरे की लागत पर बढ़ाना चाहता था। तत्कालीन राजनीति में शाही प्रतीकों को महत्त्व देने की आवश्यकता आनुवंशिक थी। हर मुकाबला करने वाला शक्ति के क्षेत्र में अपनी शक्ति आंकता था तथा अपने पड़ोसी राज्यों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के नए मौके तलाश करता था। इन राज्यों को एक प्रकार की वैधता की आवश्यकता थी, जो मुगल बादशाह की सर्वस्वीकृत सत्ता में आसानी से उपलब्ध हुई। उन्हें मुगलों के प्रतीकात्मक आधिपत्य को स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं था, जो उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को कम न कर सका। केन्द्रीय सत्ता के धीमे-धीमे पतन ने नए प्रकार की क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म दिया। सक्षम तथा समृद्ध अमीरों ने अपने लिए राजनीतिक आधार बनाए। वजीर चिन क्लिच खाँ ने खुद यह मार्ग खोला। प्रशासन में सुधार करने में असफल रहने पर उसने 1723 में कार्यालय त्याग दिया तथा अक्टूबर, 1724 में हैदराबाद की स्थापना हेतु दक्षिण की ओर रुख किया। मुगल दक्कन दरबारियों ने इस संबंध में चिंता जताते हुए क्षेत्रों से निश्चित राजस्व की प्राप्ति सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया, जिससे शाही एकता का रूप कायम रह सके। साम्राज्य के विघटन को देखते हुए मराठों ने विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं को अमल में लाते हुए उत्तर की ओर बढ़ना प्रारंभ किया तथा मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड को जीत लिया। तब, 1738-39 में ईरान के शासक नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया।

मराठा शक्ति (Maratha Power)

इसमें कोई शक नहीं कि मुगल वंश की लंबी अंतिम अवधि में जो एकल महत्त्वपूर्ण शक्ति उदित हुई, वह थी मराठा शक्ति। मराठा योद्धाओं में सर्वाधिक प्रमुख कुल था भोंसले। शिवाजी भोंसले दक्षिण राजनीति में महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरे। हालांकि शिवाजी जैसा सौभाग्य उनके पुत्र तथा भाइयों को प्राप्त न हो सका (क्रमशः संभाजी तथा उनके छोटे भाई राजाराम)। एक समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मराठा शक्ति अपने पतन पर थी। किन्तु आरम्भिक 18वीं शताब्दी में कुछ परिवर्तन हुए तथा मराठा शक्ति में सुधार की स्थिति बनी। इस संदर्भ में सबसे मुख्य चरण साहू का शासन था, जो 1708 में राजाराम का उत्तराधिकारी बना। साहू ने 1749 ई० तक चार दशकों तक शासन किया। यह अवधि चित्पावन गोत्र के ब्राह्मण मंत्रियों के वर्चस्व के लिए जानी जाती है, जो क्रमशः महाराष्ट्र की राजनीति पर छा गए। भोंसले शक्तिहीन हो गए। पेशवा की उपाधि धारण कर बाला जी विश्वनाथ पहली प्रमुख शख्सियत के रूप में मिलते हैं, जिन्होंने शक्ति के उदय में साहू की सहायता की। विश्वनाथ तथा उनके उत्तराधिकारी बाजीराव प्रथम (1720-1740 के मध्य पेशवा) आधिकारिक तौर से मराठा राज्य को अपने पूर्ववर्ती भोंसलों से कही अच्छा प्रबंधन देने में सक्षम रहे। उन्होंने मुगल क्षेत्रों से शुल्क ग्रहण करने की प्रथा को व्यवस्थित किया तथा सरदेशमुखी और चौथ (दोनों शब्द शुल्क संग्रहण के अनुपात को बतलाते हैं) नाम दिया गया। प्रतीत होता है कि उन्होंने भू-राजस्व के मूल्यांकन तथा संग्रहण करने के उपायों को ज्यादा मजबूत किया जैसा कि अन्य मुगल किया करते थे। पेशवाओं तथा उनके अधीनस्थों की राजस्व संबंधी शब्दावली तथा अन्य कागजातों की भाषा फारसी भाषा से ली गई है। यह मुगल तथा मराठी राजस्व परम्परा की व्यापक निरंतरता को प्रदर्शित करती है।

मराठा राज्यसंघ (Maratha Confedration)

साहू के शासन के अन्त तक कुछ शक्तिशाली मराठा क्षेत्र उनके पूर्ण नियंत्रण में थे। इस काल में उनके नियंत्रण वाले क्षेत्रों में व्यापार, बैंक तथा वित्त के परिष्कृत क्षेत्रों में विकास दिखाई दिया। पुणे आधारित बैंक घरानों की कई शाखाएँ गुजरात, गंगा घाटी तथा दक्षिण में भी थीं। तटवर्ती कार्यों पर ध्यान दिया गया। बालाजी विश्वनाथ ने अंग्रिया कुल को परिष्कृत करने में कुछ सावधानी बरती, जो कोलाबा तथा अन्य पश्चिमी तटों पर जहाजों को नियंत्रित करती थी। ये पोत न सिर्फ बम्बई में नवस्थापित अंग्रेजी व्यवस्था के लिए बल्कि गोवा, दमन तथा बेसन में पुर्तगालियों के लिए भी खतरा बन गए। दूसरी ओर मूल मराठा केंद्र से काफी दूर कई गतिविधियों का संचालन हुआ। इन सरदारों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे गायकवाड़, सिंधिया तथा होल्कर। भोंसले परिवार की कुछ शाखाएँ थी जो कोल्हापुर तथा नागपुर में फिर से स्थापित हुई जबकि मुख्य धारा दक्कन केंद्रस्थल, सतारा में ही रहीं। अब इनके प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

नागपुर के भोंसले (Bhonsales of Nagpur)

कोल्हापुर के भोंसले तथा थंजावुर के व्यामकोजी के वंशजों, जो सतारा राजा के समान हैसियत का दावा कर रहे थे, के विपरीत नागपुर की वंशावली सतारा शासकों के स्पष्ट रूप से अधीनस्थ थी। इस वंशावली का सबसे प्रतापी शासक रघुजी भोंसले (1727–55 ई०) था, जो कि बंगाल तथा बिहार में मराठा साम्राज्य विस्तार का उत्तरदायी माना जाता है। उसके उत्तराधिकारियों जानोजी, साबाजी तथा मुधोजी के संबंध पेशवा तथा सतारा वंशावली के साथ घटते–बढ़ते रहे तथा इनके साथ गरमजोशी वाले रिश्तों के स्थान पर ढीली–ढाली संधि रही। अन्य अधीनस्थ शासक, जो सतारा शासकों की छत्रछाया में फले–फूले तथा पल्लवित हुए वे सतारा शासकों तथा उनके पेशवाओं के प्रति अपनी राजनीति के उपयोग में कुछ हद तक अवसरवादी ही साबित हुए।

बड़ौदा के गायकवाड़ (Gaekwads of Baroda)

गायकवाड़ों ने अपनी उपस्थिति 1720 में दर्ज कराई। प्रारम्भ में वे न सिर्फ शक्तिशाली भोंसले परिवार के बल्कि दबाधे परिवार के भी अधीनस्थ थे। यह साहू की मृत्यु थी, जिसने पेशवाओं की शक्ति को और बढ़ाया तथा गायकवाड़ों की स्थिति और भी बेहतर हुई। 1750 के पूर्वार्द्ध में गुजरात के राजस्व के बड़े हिस्से पर उनके अधिकार को पेशवा ने मान्यता दी। 1752 में गुजरात क्षेत्र से मुगल शासक के अहमदाबाद से निकाले जाने से इस प्रणाली पर अपनी मोहर लगा दी। गायकवाड़ों ने अपनी राजधानी बड़ौदा में बनाई जिससे उस क्षेत्र में व्यापार तथा उत्पादन के तंत्र का पुन:एकीकरण हुआ। बड़ौदा में दामाजी के शासनकाल (मृत्यु 1768 ई०) के बाद कुछ हलचलों का युग आया। गायकवाड़ यद्यपि पुणे तथा पेशवाओं पर अर्द्धआश्रित थे, विशेषकर उत्तराधिकार संकट के मामले में। दामाजी के अंतिम उत्तराधिकारी फतेहसिंह (1771–89) अधिक समय तक पेशवाओं का सहयोगी नहीं बना तथा 1770 के उत्तरार्द्ध 1780 के पूर्वार्द्ध में उसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी से समझौता किया जिसने धीरे–धीरे सरकारी कामकाज में ब्रिटिश हस्तक्षेप में वृद्धि की। सन् 1800 तक पेशवाओं के बदले अंग्रेज ही उत्तराधिकार के मसले पर निर्णायक होते थे, जो 19वीं शताब्दी में उनके अधीनस्थ शासक बन गए थे।

इन्दौर के होल्कर (Holkars of Indore)

होल्करों की बात करें, तो उनका पद तथा समृद्धि उल्लेखनीय रही। आरम्भ में उनके पास बहुत ही कम राजनीतिक शक्ति थी। हालाँकि 1730 तक उनके सरदार मल्हार राव होल्कर ने अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ कर ली थी। उन्हें चौथ संग्रहण का काफी बड़ा हिस्सा मालवा, पूर्वी गुजरात तथा खानदेश से प्रदान किया जाता था। मल्हार राव ने इन्दौर में स्वयं की सत्ता स्थापित की जहाँ उनके उत्तराधिकारी ने मुख्य व्यापारिक मार्गों तथा बुरहानपुर का प्रमुख व्यापारिक केंद्र पर नियंत्रण स्थापित किया था। उनके पश्चात् उनके साम्राज्य का नियंत्रण उनके पुत्र की विधवा के हाथों में चला गया। अहिल्याबाई जिनका शासन 1765 से 1794 तक चला तथा होल्कर को गौरव के शिखर तक पहुँचाया तथापि उनके उत्तराधिकारी अगले प्रधान सिंधिया–परिवार के उत्तराधिकारी के बराबर नहीं हो सके।

ग्वालियर के सिंधिया (Sindhias of Gwalior)

सिंधिया वंश ने उत्तर भारत की राजनीति में अपना स्थान पानीपत के तृतीय युद्ध (1761) के बाद के दशक में बनाया। होल्कर की ही भाँति सिंधिया भी मुख्य रूप से मध्य भारत में ही केंद्रित थे। पहले उज्जैन तथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद ग्वालियर में महादजी सिंधिया के लंबे शासन काल (1761-1794) के दौरान यह वंश संगठित हुआ।

महादजी कुशल तथा नवपरिवर्तनकारी सैन्य प्रशासक सिद्ध हुए। उन्होंने अपनी सेवा में कई यूरोपीय सैनिकों को नियुक्त किया। 1770 के पश्चात् उनकी शक्ति में अचानक वृद्धि हुई। इस अवधि के दौरान वह उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करने में सफल रहे, जो अफगान हमलों के उपरान्त कमजोर हो गया था। शाह आलम द्वितीय के शासन काल में दरबार में उन्होंने अपने हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव स्थापित किया था। 1780 के मध्य में मुगल बादशाह ने उन्हें अपने कामकाज का 'उप–शासक' नियुक्त किया था। उनका प्रभाव हमें न सिर्फ दिल्ली और आगरा क्षेत्र में मिलता है, बल्कि वह राजस्थान तथा गुजरात तक विस्तृत था, जो उन्हें उस युग का सबसे प्रभावी मराठा शासक सिद्ध करता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी उनसे बात करते समय काफी सजग रहते थे।

उनके संबंध पेशवा नाना फडनवीस (पुणे) के साथ तनावों से पूर्ण थे। दुर्भाग्य से उनके उत्तराधिकारी उनके जितने सक्षम नहीं हो पाए तथा दौलत राव सिंधिया (1794–1827) अंग्रेजों द्वारा पराजित हुआ तथा 1803 में उत्तर तथा दक्षिण के अपने क्षेत्र समर्पण करने को बाध्य हुआ।

इन प्रभावी नेताओं की अवधि, विशेषकर महादजी सिंधिया की, मुगल पतन के बावजूद मुगल प्रतीकों के प्रभाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, ग्वालियर को अंग्रेजों से मुक्त कराने के पश्चात् महादजी ने मुगल बादशाह द्वारा प्रदत्त क्षेत्रों पर नियंत्रण का पूर्ण ध्यान रखा। साथ ही उसने मुगलों द्वारा दिए विशेषाधिकार और अवधियाँ यथा 'अमीर-उर-अमारा' (अमीर-प्रमुख) तथा नायब वाकी-ए-मुत्लक (उपप्रतिशासक) धारण की। ऐसा करने वाला वह एकमात्र नहीं था। 18वीं शताब्दी में मुगल प्रभुत्व को पूर्णत: कराने वाले उदाहरण विरले ही है। मुगल पतन के बावजूद भी मुगल सम्मान तथा उपाधियाँ प्रदान करने का सिलसिला तथा मुगल प्रशासित शब्दावली तथा वित्तीय प्रणालियों का प्रचलन निरंतर होता रहा।

प्र.5. 18वीं शताब्दी के दौरान उदय हुए मुख्य राज्यों का ब्यौरा दीजिए।

Provide details of the main states that arose in the 18th century.

उत्तर

बंगाल के नबाव
(Nawabs of Bengal)

औरंगजेब के शासनकाल में दीवान के पद पर आसानी मुर्शीद कुली खान ने केंद्रीय सत्ता की कमजोरी का फायदा उठाकर खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। हालाँकि वह मुगल दरबार में नियमित रूप से शुल्क भेजता रहा। अली वर्दी खान ने मुर्शीद कुली खान के परिवार को सत्ताच्युत कर 1739 में खुद को नवाब घोषित कर दिया। इन नवाबों ने शांति तथा स्थिरता कायम की और कृषि को प्रोत्साहित किया। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ही समान अवसर प्रदान किए गए। किन्तु नवाब अंग्रेजी व्यापार कंपनियों की उपस्थिति के दीर्घकालीन प्रभावों को भांप न सके तथा सैन्य तैयारियों में ढिलाई बरत दी। सन् 1756-1757 में अली वर्दी खान के उत्तराधिकारी सिराज-उद-दौला ने व्यापारिक अधिकारों हेतु अंग्रेजों से युद्ध किया। जून, 1757 में प्लासी के मैदान में हुई उसकी पराजय ने बंगाल तथा पूरे भारत में अंग्रेजों का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

अवध के नबाव
(Nawabs of Ovdh)

अवध के मुगल सूबे ने कमजोर केंद्रीय नियंत्रण के रहते क्षेत्रीय शासक सादत-खान-बुरहान-उल-मुल्क की महत्त्वाकांक्षा को जाग्रत कर दिया। सादत खान ने स्थानीय जमींदारों को अनुशासित किया तथा उच्च चेतन, उच्च शस्त्र सज्जित तथा उच्च प्रशिक्षित सेना को आकार दिया। 1739 में अपनी मृत्यु से पूर्व सादत खान ने क्षेत्रीय प्रमुख के पद को वंशानुगत बना दिया। उसके उत्तराधिकारियों सफदर जंग तथा असफ उद दौला ने न सिर्फ उत्तर भारत की राजनीति में अहम भूमिका निभाई, बल्कि अवध की नवाबी को भी प्रशासनिक स्थिरता प्रदान की। नवाबों के नेतृत्व में पहले फैजाबाद तथा बाद में लखनऊ कला, साहित्य तथा शिल्प के क्षेत्र में दिल्ली का प्रतिस्पर्धी बना। इमामबाड़ा तथा अन्य भवनों से क्षेत्रीय स्थापत्य कला की झलक भी प्राप्त होती है। सांस्कृतिक सामंजस्य के परिणामस्वरूप कत्थक नृत्य शैली का उद्भव भी हमें देखने को मिलता है।,

पंजाब के सिख (Sikhs of Punjab)

मुगलों ने बंदा बहादुर के नेतृत्व में सिखों का दमन किया था। किन्तु इससे मुगलों के प्रति सिख विद्रोह समाप्त नहीं हुए थे। 1720 ई० से 1730 ई० के मध्य अमृतसर सिख गतिविधियों का एक मुख्य केंद्र बनकर उभरा, शायद तीर्थों का स्थान होने की वजह से अपनी महत्ता की वजह से। तत्कालीन सर्वाधिक प्रमुख सिख शासक कपूर सिंह ने उसके आस-पास के क्षेत्र से संचालन किया। उसने राजस्व सैन्य प्रणाली की स्थापना की। कुछ सिख शासकों ने स्वयं को राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करना प्रारंभ कर दिया था। इन गतिविधियों ने लाहौर सूबे के मुगल शासकों को इस क्षेत्र को स्वतंत्र सत्ता का केंद्र बना देने के मंसूबों पर पानी फेर दिया। पहले अब्दुससमद खान तथा बाद में उसके पुत्र जकारिया खान ने नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न किए। 1745 में जकारिया खान की मृत्यु के पश्चात् सिख योद्धा शासकों जैसे जस्सा सिंह अहलूवालिया सत्ता में आए। उन्होंने बाद में कपूरथाला राज्य की नींव डाली। सिख सैन्य नेताओं के नेतृत्व में सैन्य क्षेत्रों का विस्तार, पंजाब पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण विशिष्टता थी। पूर्वी पंजाब तथा बारी दोआब में यह प्रक्रिया परिलक्षित होती है। हालाँकि अब्दाली के अभियानों को विरोध का सामना पंजाब में 1750 तथा 1760 में सिखों ने ही किया तथा मराठाओं ने भी इस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंतत: 1760 के मध्य तक लाहौर में सिखों की सत्ता की स्थापना हो गई तथा अफगान अपनी शुरुआती विजयों को संगठित नहीं रख सके। अहमद शाह के उत्तराधिकारी तैमूर शाह (1772-93) ने सिखों द्वारा जीते गए कुछ क्षेत्रों (जैसे मुल्तान) को पुन: जीता तथा अहमद शाह के वंशज शताब्दी के अंत तक इस लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील रहे। किन्तु 1770 तक उन्होंने लगभग 60 सिख सरदारों के साथ संधि कर ली थी, जिनमें से कुछ राज्य जैसे नाभा और पटियाला ब्रिटिश अधीनस्थ बनकर उभरे।

TOUCH 'n' PASS

सिख प्रशासकों ने मुगल बादशाहों द्वारा प्रयुक्त प्रशासनिक वृत्तियों को ही जारी रखा। सरदारों के अधीनस्थों को जागीर दी जाती थी। मुगल नौकरशाही के ईरानी ढंग ने मुख्य रूप से अपनी पकड़ बनाए रखी। ऐसे ही सिख शासक चढ़त सिंह सुकेरचकिया के पौत्र राजा रणजीत सिंह, जिन्होंने इन छोटे राज्यों को बड़े साम्राज्य में अल्प समय के लिए संगठित कर लिया। रणजीत सिंह का प्रभावी शासन 1799 से 1839 तक चला। इस काल में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति भारत के हर प्रांत में बढ़ रही थी। रणजीत सिंह की मृत्यु के 10 वर्ष उपरान्त ही अंग्रेजों ने पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर दिया। महाराजा रणजीत सिंह के सत्ता के प्रभाव का मुख्य कारण उत्कृष्ट सैन्य बल, किराए के यूरोपीय सैनिक तथा उन क्षेत्रों के सामरिक ठिकाने थे, जो उन्हें अपने पिता से विरासत में मिले थे। महाराजा रणजीत सिंह का शासन, सिखों द्वारा मुगलों के संग किए संघर्षों की पराकाष्ठा थी। यह एक राजतंत्र/शासनतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित शासन था। उसने महान व्यावसायिक नगर लाहौर को अपनी राजधानी बनाया, जिसे उसने 1799 में जीता था। व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने के उपरांत उसने राजस्व में वृद्धि के लिए नमक, अनाज तथा कश्मीर से वस्त्रों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया। इन आय स्रोतों का प्रयोग करके उसने 40,000 अश्वारोही तथा घुड़सवार सेना के बनाने में किया। सन् 1809 तक वह अधिकतर पंजाब का निर्विवाद मालिक था।

जयपुर एवं अन्य राजपूताना राज्य
(Jaipur and Other Rajputana Kingdoms)

पूर्वी राजस्थान में जयपुर (पूर्व में आम्बेर), कछवाहा कुल द्वारा नियंत्रित राजपूत राज्य था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में शासक जयसिंह सवाई ने अपनी शक्ति के और विस्तार के लिए कुछ कदम उठाए। ये थे—1. अपने गृह क्षेत्र के आसपास के क्षेत्र में अपनी जागीरों की व्यवस्था करना तथा 2. कृषि के माध्यम से भू-राजस्व एकत्रित करना (भूमि कर के संग्रहण के लिए भूमि के वे खंड प्रयुक्त होते थे, जो राज्य द्वारा व्यक्ति को किराए पर मिलती थी), जोकि धीरे-धीरे स्थाई हो गया। सन् 1743 में उसकी मृत्यु के पश्चात् राजा जयसिंह (जिसके ऊपर जयपुर नाम पड़ा) क्षेत्र का एकमात्र सर्व-शक्तिमान शासक बनकर उभरा। अधिकतर राजपूत राज्य छोटे झगड़ों तथा संघर्षों में आपस में ही उलझे रहते थे। मारवाड़ का अजीत सिंह अपने पुत्र द्वारा ही मारा गया था।

सन् 1750 में भरतपुर के जाट शासक सूरजमल ने राजा जयसिंह की ही भाँति मुगल राजस्व प्रशासन की परिवर्तित पद्धति अपने क्षेत्र में लागू की। हालाँकि इस समय तक जयपुर राज्य के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लग चुके थे। मराठों से बढ़ती चुनौतियों के चलते छोटी अवधि के राजस्व पाने के लिए साधन अपनाए गए। इसी समय 1750 तथा 60 के मध्य फसलों की नाकामी ने पहले से ही दुर्बल कृषि को और भी बुरी तरह प्रभावित किया। 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इस प्रकार आर्थिक मंदी तथा जयपुर की राजनीतिक शक्ति के पतन के लिए जाना जाता है। इस अवधि के दौरान जयपुर मराठों विशेषकर महादजी सिंधिया के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बन गया था।

ऊपर वर्णित सभी राज्य, सिवाय मराठों के, भूमि से जुड़े हुए थे। इसका अर्थ यह नहीं कि इनके व्यवहार में व्यापार का कोई स्थान नहीं था, रणजीत सिंह का शासन मुख्यतः व्यापार पर ही निर्भर था। हालाँकि समुद्र तक पहुँच के साधनों के अभाव ने राज्यों की पहुँचने की गति नहीं होने में वृद्धि ही की। विशेषकर उस युग में जब ईस्ट इंडिया कंपनी, जो कि मुख्य शक्ति थी, खुद प्रारंभ में एक समुद्री व्यापारी थे।

दक्षिण भारत में राजनीति (Politics of South India)

जिन क्षेत्रों की अभी तक चर्चा की गई हैं, उनसे हटकर दक्षिण भारत के, विभिन्न राज्यों ने इस दौरान अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए सागर तथा बंदरगाहों का उपयोग किया। इनमें से मुख्य थे त्रावणकोर (केरल) के मार्तण्ड वर्मा तथा राम वर्मा मैसूर के हैदरअली तथा टीपू सुल्तान।

इन राज्यों की उपस्थिति उत्कृष्ट रूप से हम 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में या लगभग 1740 के करीब पाते हैं। इससे पूर्व दक्षिण भारत पर मुस्लिम राजाओं का वर्चस्व था, 1680 तथा 1690 के दौरान या 1700 के पश्चात् दूसरी लहर के फलस्वरूप क्षेत्र में कुछ राजा साथ आए। इनमें से बहुत से व्यक्तियों ने खुद को मुगल शासन के अधीन शुल्क अदा करने वाले सरदारों के रूप में स्थापित किया। इनमें से कुछ अपेक्षाकृत नवाब थे, जैसे बालाघाट के नवाब या उत्तर कर्नाटक (जैसे सीरा का अब्दुल रसूल खान)। इनमें से कुछ तो राजनीतिक रूप से प्रभावशाली थे जैसे निजाम-उल-मुल्क तथा आर्कोट में सदुल्लाह खान। 1740 तक निजाम उल मुल्क ने हैदराबाद में अपनी स्थिति को संगठित कर लिया था, वही अर्कोट तीन दशक पहले उभर चुका था। वंशानुगत उत्तराधिकार को स्थापित करते हुए भी इनमें से किसी भी शासक ने पूर्ण स्वायत्तता का दावा प्रस्तुत नहीं किया था। इस प्रकार वे स्वयं को मुगलों का प्रतिनिधि बताकर ही शासन करते रहे। 1720 में दक्षिण भारत की राजनीति तीन शक्तियों के बीच मोहरा बनकर उभरी, ये थे मराठा (तंजौर तथा अन्य क्षेत्रों के) निजाम तथा अर्कोट (कर्नाटक) के नवाब।

TOUCH 'n PASS

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन तीनों शक्तियों की सत्ता का क्षय होने लगा था। 1740 तथा 1750 के प्रारंभ में अर्कोट के उत्तराधिकार विवाद ने इसके शासकों को निजी अंग्रेज व्यापारियों के साथ वित्तीय जोड़-तोड़ करने को बाध्य कर दिया, क्योंकि युद्ध के खर्चों के लिए उन्हें धन की आवश्यकता थी। 1750 में अपने संस्थापक निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद भी पतन की राह पर चल पड़ा था। तटीय जिलों से शीघ्र ही नियंत्रण समाप्त हो गया तथा राज्य की जनसंख्या बहुत कम हो गई तथा भूमि से जुड़ी रह गई। इस संदर्भ में राज्य के पास एकमात्र विकल्प एक विस्तृत तथा सुनियोजित सैन्य मशीनरी तथा खुला बाह्य समर्थन था। इस काल के राजतंत्र में व्यापार का नियंत्रण भी अत्यंत संवेदनशील हो चला था।

त्रावणकोर राज्य
(Travancore State)

मराठा शासक मार्तंड वर्मा (1729-58) ने वेनाद (त्रावणकोर) केरल राज्य के संचालन में तीन सैद्धांतिक पद्धतियों का उपयोग किया। राजा ने अपनी वैधता सुदृढ़ करने के लिए कुछ उपायों की शुरूआत की। ये थे—1. उसके द्वारा 50,000 की शक्ति वाली वास्तविक सेना का गठन 2. नैय्यर अभिजात वर्ग की शक्ति को कम करना, जिस पर क्षेत्र सैन्य रूप से निर्भर था तथा 3. तथाकथित त्रावणकोर रेखा पर अपने राज्य की उत्तरी सीमा की किलेबंदी करना। इस शासक की एक नीति सीरियाई ईसाइयों को संरक्षण देने की भी थी, जो कि उस क्षेत्र की प्रभावी व्यापारिक शक्ति थी, जिससे कि व्यापार में यूरोपीय वर्चस्व कम हो सके। मुख्य वस्तु जो हालाँकि काली मिर्च थी, किन्तु शाही एकाधिकार के अंतर्गत अन्य कई वस्तुएँ आती थीं, जिनका व्यापार करने के लिए आज्ञापत्र की आवश्यकता होती थी। मार्तंड के उत्तराधिकारी राम वर्मा के शासनकाल (शासनकाल 1758-98) में भी ये नीतियाँ व्यापक स्तर पर चलती रही, जो कि अपने राज्य की नए उभरते प्रतिद्वंद्वी से रक्षा करने में सक्षम रहा तथा वह खतरनाक प्रतिद्वंद्वी था मैसूर राज्य।

मैसूर का उदय (Rise of Mysore)

वादियार वंश के शासकों यथा कांथीरवा नरसाराजा तथा चिक्का देवा राजा, के अंतर्गत मैसूर एक महत्त्वपूर्ण राज्य बनकर उभरा। हालाँकि मैसूर एक भूमि से जुड़ा राज्य था इसलिए व्यापार पर भी निर्भर था क्योंकि उसकी सैन्य आपूर्ति भारत की पूर्वी बंदरगाहों के तट से आती थी। चूँकि ये सभी बंदरगाह अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन थे। अत: मैसूर की संवेदनशीलता बढ़ती गई। 1760 ई० से स्थिति में परिवर्तन के प्रयास किए गए। विस्थापित मूल के एक जुझारु योद्धा हैदर अली ने एक शक्तिशाली ताकत प्राप्त कर वादियार को शक्तिहीन कर तथा शक्तिशाली कलाले मंत्री परिवार को हटाकर सत्ता हासिल की। पहले हैदर तथा उसके बाद उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने 1782 के बाद मैसूर को संगठित कर तथा भारतीय प्रायद्वीप के दोनों तटों तक पहुँच वाला राज्य बनाया। कोडवों, उच्चभूमि कुर्ग राज्य के निवासी, की तुलना में वे अपेक्षाकृत सफल थे। तटीय कर्नाटक तथा उत्तरीय केरल उसकी तलवार के अधीन हो गए, इसने टीपू सुल्तान को अपनी शर्तों पर मध्य पूर्व के साथ कूटनीतिक तथा व्यावसायिक रिश्ते स्थापित करने में मद्द की। अपने पिता की तुलना में टीपू की महत्त्वाकांक्षाएँ ऊँची थी तथा उसने पहले से फैली मुगल सर्वोच्चता की छाया से बाहर निकलने का सफल प्रयत्न किया, जैसा कि पहले चर्चा कर चुके हैं। किन्तु हैदर अली व टीपू की समस्या आंतरिक सम्मति बनाने में असमर्थता रही। सैन्य तथा राजस्व संबंधी दक्षता के लिए विस्थापितों तथा किराए के सैनिकों पर उनकी निर्भरता बहुत अधिक थी तथा वे पोलीगार, स्थानीय चोरों से हमेशा टक्कर लेते रहे। 1770 तक मैसूर के सामने ईस्ट इंडिया कंपनी जैसे विकट सैन्य विरोध को सहना पड़ा। जिन्होंने उसे चैन नहीं लेने दिया। ये अंग्रेज ही थे, जिन्होंने मैसूर को उपजाऊ क्षेत्रों में नहीं पहुँचने दिया तथा भारत के पूर्वी बंदरगाह कोरोमंडल के मैदान से पहले रोक दिया। अंतत: 1799 में अंग्रेजी सेना द्वारा टीपू का अंत हो गया।

❐

ExamX PASS

UNIT-IV

औपनिवेशिक काल के दौरान भू-राजस्व व्यवस्था

Land Revenue System During Colonial Period

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ब्रिटिश भू-राजस्व नीति क्या थी?

What was the revenue policy of the British?

उत्तर भू-राजस्व की इस व्यवस्था में सरकार ने रैय्यतों अर्थात् किसानों से सीधा बंदोबस्त किया। अब रैय्यतों को भूमि के मालिकाना हक तथा कब्जादारी अधिकार दे दिए गए तथा वे सीधे या व्यक्तिगत रूप से स्वयं सरकार को लगान अदा करने के लिए उत्तरदायी थे। इस व्यवस्था ने किसानों के भू-स्वामित्व की स्थापना की।

प्र.2. भू-राजस्व व्यवस्था के क्या प्रभाव थे?

What were the effects of the revenue policy?

उत्तर चूँकि भू-राजस्व स्थायी रूप से तय होने जा रहा था, कंपनी ने मनमाने ढंग से उच्च दर (कुल संग्रह का 10/11 वां) पिछली दरों की तुलना में बहुत अधिक तय की। इसने जमींदारों पर एक बहुत बड़ा बोझ डाला जो अंततः किसानों द्वारा वहन किया गया।

प्र.3. भारत में ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों में क्या दोष थे?

What were the drawbacks of the British revenue policy in India?

उत्तर जब तक किसान राजस्व का भुगतान नहीं करते तब तक भूमि पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार बना रहता था। उच्च भू-राजस्व का भुगतान करने के लिए, उन्हें साहूकारों से उच्च ब्याज दरों पर ऋण लेना पड़ता था। किसान उच्च लगान का भुगतान करने में विफल रहे और इस प्रकार उन्हें उनकी भूमि से बेदखल कर दिया गया जो वे पीढ़ियों से खेती कर रहे थे।

प्र.4. ब्रिटिश कालीन भू-राजस्व व्यवस्थाओं का भारतीय कृषि पर क्या असर पड़ा?

How did the British revenue policy impact on Indian agriculture?

उत्तर भू-राजस्व की राशि अधिकतम रूप में होने के कारण किसानों के पास ऐसा कोई अधिशेष नहीं बच पाता था जिसका कि वे फसल नष्ट होने के पश्चात् उपयोग कर सके। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में अकाल एवं भुखमरी और भी बढ़ती गई। जमींदारों को कृषि क्षेत्र में निवेश करने में कोई रुचि नहीं थी तथा कृषक निवेश की स्थिति में नहीं थे।

प्र.5. नई राजस्व नीति का भारतीय समाज पर क्या असर हुआ?

What was the impact of the new revenue policy on Indian society?

उत्तर किसान और जमींदार दोनों सरकार कर्ज लेते थे। अंग्रेज सरकार को केवल लगान से मतलब था। इस नई राजस्व नीति का भारतीय समाज पर बुरा असर पड़ा। शोषण बढ़ा, भारतीय किसानों की दरिद्रता बढ़ी और भारतीय समाज में असंतोष बढ़ता गया जिसके परिणामस्वरूप जगह-जगह पर उपद्रव की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

प्र.6. भूमि व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by land settlement?

उत्तर कृषि क्षेत्र में विद्यमान संस्थागत विसंगतियों को दूर करना तथा इसे तर्क संगत और आधुनिक बनाना। जैसे—जोत का आकार, भूमि स्वामित्व, भूमि उत्तराधिकार, काश्तकार की सुरक्षा, आधुनिक संस्थागत सहायता और आधुनिकीकरण आदि पर ध्यान दिया जाना था।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त क्या है?

What was Ryotwari Settlement?

उत्तर रैय्यतवाड़ी प्रणाली ब्रिटिश भारत में एक भू-राजस्व प्रणाली थी जिसे थॉमस मुनरो द्वारा पेश किया गया था, जिससे सरकार को राजस्व संग्रह के लिए सीधे किसान (रैय्यत) से निपटने की अनुमति मिली और किसानों को खेती के लिए नई भूमि देने या अधिग्रहण करने की स्वतंत्रता दी गई।

प्र.8. रैय्यतवाड़ी व्यवस्था सर्वप्रथम कहाँ लागू की गई थी?

Where was Ryotwari Settlement first implemented?

उत्तर रैय्यतवाड़ी व्यवस्था 1792 ई० में मद्रास प्रैजिडेन्सी के बारामहल जिले में सर्वप्रथम लागू की गई।

प्र.9. रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त के जनक कौन थे?

Who was the father of Ryotwari Settlement?

उत्तर सन् 1802 में मद्रास के तत्कालीन गवर्नर टॉमस मुनरो ने रैय्यतवाड़ी व्यवस्था आरंभ की। यह व्यवस्था मद्रास, बंबई एवं असम के कुछ भागों में लागू की गई।

प्र.10. महालवाड़ी व्यवस्था कब और किसने लागू की?

Who implemented Mahalwari Settlement and when?

उत्तर महालवाड़ी व्यवस्था का प्रस्ताव सर्वप्रथम 1819 ई० में 'हॉल्ट मैकेंजी' द्वारा लाया गया था। इस प्रस्ताव को 1822 ई० के रेग्यूलेशन-7 द्वारा कानूनी रूप प्रदान किया गया।

प्र.11. स्थायी बंदोबस्त से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Permanent Settlement?

उत्तर स्थायी बंदोबस्त अथवा इस्तमरारी बंदोबस्त ईस्ट इण्डिया कंपनी और बंगाल के जमींदारों के बीच कर वसूलने से सम्बन्धित एक स्थाई व्यवस्था हेतु सहमति समझौता था जिसे बंगाल में लॉर्ड कार्नवालिस द्वारा 22 मार्च, 1793 को लागू किया गया।

प्र.12. स्थाई बंदोबस्त और महालवाड़ी व्यवस्था में क्या अंतर है?

What is the difference between Permanent Settlement and Mahalwari Settlement?

उत्तर स्थाई बंदोबस्त में राज्य वित्त जमा करने का अधिकार जमींदार को दिया गया था, जबकि महालवाड़ी व्यवस्था में राजस्व जमा करने की जवाबदेही गाँव के मुखिया को सौंप दी गई थी। इसके साथ ही स्थाई बंदोबस्त का क्षेत्र बंगाल, बिहार और ओडिशा था जबकि महालवाड़ी का क्षेत्र उत्तर प्रदेश महा प्रांत और पंजाब था।

प्र.13. रैय्यतवाड़ी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता क्या थी?

What was the main characteristics of Ryotwari Settlement?

उत्तर (1) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में भूमि का स्वामी कृषकों को माना गया था तथा उन्हें भूमि के विक्रय का अधिकार भी दिया गया था। (2) इस व्यवस्था में सरकार एवं रैय्यतों के मध्य प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो गया था। (3) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में भूमि के सर्वेक्षण के उपरांत उत्पादक शक्ति के आधार पर भू-राजस्व का निर्धारण किया गया था।

प्र.14. महालवाड़ी व्यवस्था में खेती कैसे होती थी?

How was agriculture done under Mahalwari Settlement?

उत्तर महालवाड़ी व्यवस्था के अंतर्गत ब्रिटिश भारत की भूमि का लगभग 30% भाग सम्मिलित था। इस व्यवस्था में प्रारम्भ में लगान की दर कुल उपज का 80% निश्चित की गई थी। कालान्तर में लॉर्ड विलियम बैंटिक ने मार्टिन बर्ड, जिन्हें उत्तरी भारत में भूमि कर व्यवस्था का प्रवर्तक माना जाता है, के सहयोग से 1833 ई० का रेग्यूलेशन-9 पारित करवाया।

प्र.15. ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में कितने प्रकार की भूमि व्यवस्था थी?

How many types of land settlements were there during British rule?

उत्तर लॉर्ड हेस्टिंग्स के काल में ब्रिटिश सरकार ने भू-राजस्व की वसूली के लिए भू-राजस्व व्यवस्था का संशोधित रूप लागू किया, जिसे महालवाड़ी बंदोबस्त कहा गया। यह व्यवस्था मध्य प्रांत, यू०पी० (आगरा) एवं पंजाब में लागू की गयी तथा इस व्यवस्था के अंतर्गत 30 प्रतिशत भूमि आई।

TOUCH n PASS

प्र.16. भू-राजस्व की वसूली कौन करता है?

Who collected land revenue?

उत्तर राज्य में मालगुजारी या भू-राजस्व की वसूली का दायित्व राज्य सरकार का होता है जिले की मालगुजारी वसूली का दायित्व कलेक्टर का होता है। इसी प्रकार तहसील की मालगुजारी वसूली का दायित्व तहसीलदार का होता है। तहसील में मालगुजारी या भू-राजस्व की वसूली के लिए राजस्व लेखपाल द्वारा जमाबंदी तैयार की जाती है।

प्र.17. पुनर्जागरण के मुख्य कारण क्या हैं?

What was the main cause of Renaissance?

उत्तर पुनर्जागरण का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण वाणिज्य-व्यापार का विकास था। नए-नए देशों के साथ लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध कायम हुआ और उन्हें वहाँ की सभ्यता-संस्कृति को जानने का अवसर मिला व्यापार के विकास ने एक नए व्यापारी वर्ग को जन्म दिया व्यापारी वर्ग का कटु आलोचक और कट्टर विरोधी था।

प्र.18. उपनिवेशवाद क्या है?

What is Colonialism?

उत्तर उपनिवेशवाद से तात्पर्य किसी शक्तिशाली एवं विकसित राष्ट्र द्वारा किसी निर्बल एवं अविकसित देश पर उसके संसाधनों को अपने हित में दोहन करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करना है। इस क्रम में औपनिवेशिक शक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपनिवेशों पर सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण भी स्थापित करती है।

प्र.19. भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान कौन-सा एक सामाजिक सुधार हुआ?

Which social reform take place during the colonial rule in India?

उत्तर प्रस्तुत शोध पत्र में औपनिवेशिक भारत में हुए सामाजिक—आर्थिक सुधार आंदोलनों पर प्रकाश डाला गया है। ब्रिटिश शासन काल में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों ने सामाजिक रचना, धर्म, रीति-रिवाज व परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। इससे भारत में सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलन का जन्म हुआ।

प्र.20. भारत में ब्रिटिश उपनिवेश के प्रथम चरण के बारे में बताइए।

Write about the first stage of British colonialism in India.

उत्तर उपनिवेशवाद के प्रथम चरण जिसकी शुरुआत प्लासी के युद्ध के बाद होती है। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय व्यापार पर पूर्ण रूप से कब्जा कर लिया। उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में कंपनी, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य देशों में कम कीमत पर तैयार भारतीय माल का निर्यात कर अच्छी कीमत वसूला करती थी।

प्र.21. पुनर्जागरण की परिभाषा क्या है?

What is the definition of Renaissance?

उत्तर पुनर्जागरण (Renaissance in Europe) का शाब्दिक अर्थ होता है, "फिर से जागना"। 14वीं और 17वीं सदी के बीच यूरोप में जो सांस्कृतिक व धार्मिक प्रगति, आंदोलन तथा युद्ध हुए उन्हें ही पुनर्जागरण कहा जाता है। इसके फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन चेतना आई।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत में प्रचलित पुरानी भू-राजस्व व्यवस्था को बदलकर नए प्रकार के भू-राजस्व बंदोबस्त कायम करने की जरूरत क्यों पड़ी? कंपनी द्वारा अपनायी गई विभिन्न भू-धृति पद्धतियों (Land Tenure System) का संक्षेप में परिचय भी दें।

Why did East India Company feal the need for a new revenue system in place of the old revenue system? Also give a brief introduction of different Land Tenure Systems adopted by the company.

उत्तर ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से पूर्व भारत में जो परंपरागत भू-राजस्व व्यवस्था थी उसमें भूमि पर किसानों का अधिकार था तथा फसल का एक भाग सरकार को दे दिया जाता था। 1765 में इलाहाबाद की संधि से कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा

TOUCH 'n PASS

की दीवानी प्राप्त हो गई। तब भी कंपनी ने पुरानी भू-राजस्व व्यवस्था को ही जारी रखा लेकिन भू-राजस्व की दरें बढ़ा दी। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि कंपनी के खर्चे बढ़ रहे थे और भू-राजस्व ही ऐसा माध्यम था जिससे कंपनी को अधिकाधिक धन प्राप्त हो सकता था। यद्यपि क्लाइव और उसके उत्तराधिकारी ने प्रारंभ में भू-राजस्व पद्धति में कोई बड़ा बदलाव नहीं किया, किन्तु कुछ वर्षों पश्चात् कंपनी ने अपने खर्चों की पूर्ति एवं अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भारत की कृषि व्यवस्था में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया तथा करों के निर्धारण और वसूली के लिए नई प्रकार की भू-राजस्व प्रणालियाँ कायम की।

अंग्रेजों ने भारत में मुख्य रूप से निम्नलिखित भू-धृति पद्धतियाँ अपनायी—

1. इजारेदारी प्रथा
2. स्थायी बंदोबस्त
3. रैय्यतवाड़ी
4. महालवाड़ी पद्धति

इन सभी पद्धतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. **इजारेदारी प्रथा**—इस प्रणाली को 1772 में वॉरेन हेस्टिंग्स ने लागू कराया। इस प्रथा की दो विशेषताएँ थी—
   (i) इसमें पंचवर्षीय ठेके की व्यवस्था थी तथा
   (ii) सबसे अधिक बोली लगाने वाले को भूमि ठेके पर दी जाती थी।
   इस व्यवस्था से कंपनी को लाभ तो हुआ परंतु उनकी वसूली में अस्थिरता आई। 1777 में पंचवर्षीय ठेके की जगह ठेके की अवधि एक वर्ष कर दी गई। इस व्यवस्था का मुख्य दोष यह था कि प्रतिवर्ष नए-नए व्यक्ति ठेका लेकर किसानों से अधिक-से-अधिक लगान वसूलते थे।
2. **स्थायी बंदोबस्त**—इसे 'जमींदारी व्यवस्था' या 'इस्तमरारी व्यवस्था' के नाम से भी जाना जाता है। इसे 1793 में लॉर्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा, यू.पी. के बनारस प्रखंड तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू किया। इस व्यवस्था के अंतर्गत ब्रिटिश भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 19 प्रतिशत भाग सम्मिलित था। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारों को भूमि का स्थायी मालिक बना दिया गया। भूमि पर उनका अधिकार पैतृक एवं हस्तांतरणीय था। जब तक वो एक निश्चित लगान सरकार को देते रहें तब तक उनको भूमि से पृथक् नहीं किया जा सकता था। परंतु किसानों को मात्र रैय्यतों का नीचा दर्जा दिया गया तथा उनसे भूमि संबंधी अधिकारों को छीन लिया गया। जमींदारों को किसानों से वसूल किये गए भू-राजस्व की कुल रकम का 10/11 भाग कंपनी को देना था तथा 1/11 भाग स्वयं रखना था। इस व्यवस्था से कंपनी की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।
3. **रैय्यतवाड़ी व्यवस्था**—मद्रास के तत्कालीन गवर्नर टॉमस मुनरो द्वारा 1820 में प्रारंभ की गई इस व्यवस्था को मद्रास, बंबई और असम के कुछ भागों में लागू किया गया। इस व्यवस्था में सरकार ने रैय्यतों अर्थात् किसानों से सीधा संपर्क किया। अब रैय्यतों को भूमि के मालिकाना हक तथा कब्जादारी अधिकार दे दिये गए तथा वे व्यक्तिगत रूप से स्वयं सरकार को लगान अदा करने के लिए उत्तरदायी थे। सरकार द्वारा इस व्यवस्था को लागू करने का उद्देश्य आय में वृद्धि करने के साथ-साथ बिचौलियों (जमींदारों) के वर्ग को समाप्त करना भी था।
4. **महालवाड़ी पद्धति**—इसे लॉर्ड हेस्टिंग ने मध्य प्रांत, आगरा एवं पंजाब में लागू कराया। इस व्यवस्था के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल की 30% भूमि आई। इस व्यवस्था में भू-राजस्व का बंदोबस्त एक पूरे गाँव या महाल में जमींदारों या उन प्रधानों के साथ किया गया, जो सामूहिक रूप से पूरे गाँव या महाल का प्रमुख होने का दावा करते थे। इस व्यवस्था में लगान का निर्धारण महाल या संपूर्ण गाँव के उत्पादन के आधार पर होता था। मुखिया या महाल प्रमुख को यह अधिकार था कि वह लगान न अदा करने वाले किसान को उसकी भूमि से बेदखल कर दें।
   इस प्रकार कंपनी ने भारत में भू-राजस्व उगाही के लिए विभिन्न कृषि व्यवस्थाओं को अपनाया। इन सभी व्यवस्थाओं के पीछे कंपनी का मूल उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व वसूलना था, न कि किसानों के रत्ती भर के भलाई के लिए कार्य करना। इसी कारण धीरे-धीरे भारतीय कृषि-व्यवस्था चौपट हो गई और भारतीय किसाना बर्बाद हो गए।

TOUCH 'n PASS

प्र.2. ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के विकास की पृष्ठभूमि एवं स्थायी बंदोबस्त की व्याख्या कीजिए।
Explain the background of the development of the British land policy and permanent system.

उत्तर

ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के विकास की पृष्ठभूमि
(Background of the Development of British Revenue Policy)

ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के विकास की पृष्ठभूमि की व्याख्या निम्न प्रकार है—

1. कंपनी ने 1765 में बंगाल की दीवानी प्राप्त की और भू-राजस्व वसूल करना शुरू किया। द्वैध शासन के तहत् कम्पनी ने आरंभ में पुरानी मालगुजारी प्रणाली को जारी रखने का प्रयास किया किन्तु वसूली राशि की मात्रा बहुत बढ़ा दी। 1762-63 ई० में 64.5 लाख से बढ़कर कम्पनी सरकार की दीवानी के पहले वर्ष में वसूली 147 लाख हो गयी। इस प्रकार किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ।
2. भू-राजस्व व्यवस्था में व्याप्त असंगतियों के कारण वॉरेन हेस्टिंग्स ने 1772 ई० में नई व्यवस्था लागू की। उसने भू-राजस्व वसूली के अधिकार को नीलाम पर लगाकर सबसे बड़ी बोली लगाने वाले को दे दिया अर्थात् ठेके पर देने की व्यवस्था इजारेदारी शुरू की। यह व्यवस्था भी सफल नहीं हुई, क्योंकि जमींदार तथा दूसरे सटोरिए एक दूसरे से बढ़कर बोली लगाते थे इसलिए मालगुजारी की रकम तो बढ़ गई पर वास्तविक वसूली प्रतिवर्ष घटती-बढ़ती रही थी। इससे कम्पनी की आय एक ऐसे समय में अस्थिरता का शिकार हुई जब उसे पैसे की सख्त जरूरत थी। इसके अलावा खेती में सुधार के लिए न रैय्यत कोई प्रबंध करते और न जमींदार, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं होता था कि अगले वर्ष कितने की बोली लगेगी और वसूली का अधिकार किसे मिलेगा।
3. 1786 ई० में कार्नवालिस ने इस अनिश्चितता को समाप्त करने की योजना बनाई और स्थायी बंदोबस्त की व्यवस्था लागू की।

स्थायी बंदोबस्त (Parmanent Settlement)

इसके समय लगान व्यवस्था से संबंधित मुख्य समस्याएँ निम्न थी—

1. समझौता किससे किया जाए-जमींदार या किसान से?
2. राज्य को पैदावार का कितना भाग लगान के रूप में प्राप्त हो?
3. समझौता स्थायी रूप से किया जाए या कुछ वर्षों के लिए?
    1. इस संदर्भ में चार्ल्स ग्रांट, जॉन शोर एवं कार्नवालिस में मतभेद था।
    2. चार्ल्स ग्रांट का मानना था कि समस्त भूमि सरकार की है तथा जमींदार उसके कर संग्रहकर्त्ता से अधिक नहीं है। सरकार उन्हें अपनी इच्छा से हटा सकती है। ऐसी स्थिति में सरकार जमींदार या किसान किसी से भी समझौता कर सकती है।
    3. जॉन शोर का कहना था भूमि के मालिक जमींदार है और राज्य केवल उनसे लगान का कुछ भाग प्राप्त कर सकता है। जमींदारों का यह अधिकार वंशानुगत है। इस विचार से समझौता केवल जमींदारों से हो सकता है।
    4. कार्नवालिस जॉन शोर के विचारों से सहमत था और उसने जमींदारों के साथ ही बंदोबस्त करने का निर्णय लिया।
    5. लगान राशि के संदर्भ में चार्ल्स ग्रांट और जॉन शोर में मतभेद था। चार्ल्स ग्रांट के अनुसार लगान निश्चित करने का आधार 1765 ई० में हुई पैदावार और वसूल किया हुआ लगान होना चाहिए। जबकि जॉन शोर का मानना था कि तत्कालीन वर्षों में संग्रहित राशि ही लगान हो सकती है। कार्नवालिस ने जॉन शोर का समर्थन किया और स्थायी बंदोबस्त 1790-91 में वसूल किए गए लगान के आधार पर किया गया जो ₹ 2 करोड़ 68 लाख थी।
    6. बंदोबस्त अवधि के संदर्भ में ग्रांट और शोर का मत एक था कि बंदोबस्त कुछ वर्षों के लिए हो, परंतु इस विषय में कार्नवालिस इसके विरुद्ध था। वह स्थायी बंदोबस्त के पक्ष में था।

प्र.3. स्थायी बंदोबस्त के उद्देश्य और विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the aims and characteristics of Permanent Settlement.

उत्तर

स्थायी बंदोबस्त के उद्देश्य
(Aims of Permanent Settlement)

स्थायी बंदोबस्त के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. स्थायी राजस्व की प्राप्ति करना।

TOUCH 'n PASS

2. प्रशासनिक सुविधा के लिए क्योंकि कार्नवालिस को यह एहसास था कि कंपनी के अधिकारियों के पास न तो क्षमता है और न प्रशासनिक अनुभव जिसके द्वारा वे सीधे किसानों से बंदोबस्त कर सके। इस प्रकार प्रशासनिक झंझटों से मुक्त रहना भी इस नीति का उद्देश्य था।
3. राजनीतिक रूप से एक समर्थक वर्ग का विकास करना जिसके द्वारा जन-प्रतिवाद पर अंकुश लगाया जा सके।
4. इस बंदोबस्त से कृषि व्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा, कृषि का विकास होगा, जमींदारों को कृषि क्षेत्र में नए प्रयोग, उर्वरक का इस्तेमाल करने आदि का मौका मिलेगा।
5. कृषि के विकास से कृषक संतुष्ट एवं समृद्ध हो सकेंगे।
6. यह व्यवस्था औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम बनेगी क्योंकि यह भारतीय जमींदारों की पूँजी को भूमि में ही निवेश करने को बाध्य करती थी। इससे व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में भारतीयों के साथ प्रतिस्पर्धा कम होगी और ब्रिटिश को लाभ होगा।

विशेषताएँ (Characteristics)

स्थायी बंदोबस्त की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. कार्नवालिस ने लगान वसूल करने का अधिकार जमींदारों को दिया। 1790 में वार्षिक लगान के स्थान पर 10 वर्षीय लगान व्यवस्था लागू की गई। उसे 1793 ई० में स्थायी कर दिया गया। इसे स्थायी बंदोबस्त या इस्तमरारी बंदोबस्त कहा गया।
2. जमींदारों को भू-स्वामी बना दिया गया। भूमि पर उनका पैतृक अधिकार हो गया। भू-स्वामित्व का अधिकार भू-राजस्व की अदायगी था। उस समय तक उन्हें उनकी भूमि से पृथक् नहीं किया जा सकता था जब तक कि वे अपना निश्चित लगान सरकार को देते रहे।
3. जमींदारों के लिए सूर्यास्त कानून (Sunset law) लाया गया। इसके अनुसार पूर्व निर्धारित तिथि के सूर्यास्त तक जमींदारों ने सरकार को लगान नहीं दिया तो उनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जाएगी। उन्हें भू-स्वामित्व से वंचित कर भूमि को नीलाम कर दिया जाएगा।
4. राजस्व के कर का विभाजन स्पष्टत: सरकार और जमींदारों के बीच किया गया। सरकार के लिए राजस्व का 10/11 तथा जमींदारों के लिए 1/11 निश्चित किया गया।
5. जमींदारों को रैय्यत के साथ संबंधों में स्वतंत्र कर दिया गया। सिद्धांतत: कहा गया कि वे रैय्यत को पट्टे जारी करे तथा पट्टों में दोनों पक्षों के पारस्परिक संबंधों का उल्लेख हो।
6. यह व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस में लागू की जो कुल क्षेत्र का 19% थी।
7. कृषकों की स्थिति किरायेदार के रूप में स्वीकार की गई। भूमि पर उन्हें किसी प्रकार का अधिकार नहीं था। परंपरागत कृषि संबंधी अधिकार जैसे चारागाह, वन आदि समाप्त हो गए।

प्र.4. सुधार आंदोलनों की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the limits of reforms movements.

उत्तर

सुधार आंदोलनों की सीमाएँ
(Limits of Reforms Movements)

सुधार आंदोलनों की सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

1. ये सभी सुधार आंदोलन समाज के एक बहुत छोटे भाग यानी नगरीय एवं उच्च मध्यवर्गों की आवश्यकताएँ पूरी करते थे। इनमें से कोई भी बहुसंख्यक किसानों तथा नगरों की गरीब जनता तक नहीं पहुँचा।
2. इन आंदोलनों की दूसरी कमजोरी पीछे मुड़कर अतीत की महानता का गुणगान करना तथा धर्म ग्रंथों को आधार बनाने की प्रवृत्ति थी। इन आंदोलनों की स्वयं की सकारात्मक शिक्षाएँ इनकी विरोधी बन गयी। इसने मानव बुद्धि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की श्रेष्ठता के विचार को आघात पहुँचाया। जिससे छद्म वैज्ञानिक चिंतन को बल मिला।
3. अतीत में स्वर्णयुग ढूंढ़ने के आग्रह से मिथ्याभिमान एवं आत्मसंतुष्टि की भावना को बल मिला।

TOUCH 'n PASS

4. विभिन्न धर्मों वाले भारत देश में धर्म पर जरूरत से ज्यादा जोर देने से हिन्दू, मुसलमान, सिख एवं पारसी आपसी फूट के शिकार होने लगे।
5. प्रत्येक हिन्दू सुधारक ने भारतीय अतीत के गुणगान को प्राचीनकाल तक ही सीमित रखा। भारतीय इतिहास के मध्यकाल को मूलत: अवनति के काल के रूप में देखा। इससे दो पृथक् कौमों की धारणा पनपी।
6. इसी प्रकार प्राचीनकाल एवं प्राचीन धर्म की अंध प्रशंसा निम्न जातियों के लोगों को स्वीकार नहीं हो सकती थी जो मूलत: प्राचीनकाल में विकसित अत्यंत विनाशकारी जाति संबंधी अत्याचार से शताब्दियों से उत्पीड़ित रहे थे।
7. सुधारकों ने सांस्कृतिक धरोहर के धार्मिक-दार्शनिक पक्षों पर एक तरफा जोर दिया जो सभी समुदाय के लोगों के साझी धरोहर भी नहीं थे। दूसरी तरफ कला, स्थापत्य, साहित्य, संगीत, विज्ञान व प्रौद्योगिकी पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया यद्यपि इनमें जनता के सभी वर्गों की सामूहिक भागीदारी थी।
8. अतीत कुछ लोगों की पैतृक धरोहर बन गया क्योंकि कुछ ही लोगों के आदर्शों को यह तुष्ट कर रहा था।
9. मुस्लिम मध्यवर्ग के अनेक लोगों ने अपनी परम्परा और अपनी धरोहर पश्चिम एशिया के इतिहास में खोजना आरंभ कर दिया। फलत: समन्वित संस्कृति के विकास की सदियों से चली आ रही प्रक्रिया पर अंकुश लगा। इसका दुष्परिणाम तब सामने आया जब राष्ट्रीय चेतना के साथ साम्प्रदायिक चेतना का भी विकास होने लगा।
10. इस प्रकार यह आंदोलन अपनी संकीर्णता धर्मसापेक्ष दृष्टिकोण, सैद्धांतिक अंतर्विरोध एवं ऐतिहासिक संदर्भ में सामाजिक पृष्ठभूमि की यथोचित समझ के अभाव के फलस्वरूप अपने उद्देश्यों में अपेक्षित रूप से सफल नहीं हो पाया। लेकिन इसकी विफलता का एक और भी कारण था, वह था इस आंदोलन का औपनिवेशिक संदर्भ। राजनीतिक गुलामी की जंजीर में बंधे रहकर सामाजिक या मानसिक स्वतंत्रता और मुक्ति का सारा नारा निरर्थक था।

प्र.5. सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
Discuss the effects of socio-religious reform movements.

उत्तर

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के प्रभाव
(Effects of Socio-religious Reforms Movements)

इस सीमाओं के बावजूद 19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों की उपलब्धि को नजरंदाज करना भूल होगी। आंदोलन के सकारात्मक प्रभाव निम्न रहे—

1. शुद्ध रूप से धार्मिक विचारों के अतिरिक्त धर्मसुधार आंदोलनों ने भारतीयों के आत्मविश्वास, आत्मसम्मान तथा देश पर गर्व करने की भावना को बढ़ाया।
2. धार्मिक अतीत की आधुनिक बुद्धिवादी शब्दों में व्याख्या करके तथा 19वीं शताब्दी के धार्मिक विश्वासों से अनेक भ्रामक तथा धर्म विरोधी तत्त्वों को निकालकर इन सुधारकों ने अनुयायियों को ब्रिटिश अधिकारियों के इस व्यंग्य का उत्तर देने योग्य बनाया कि यहाँ के धर्म व समाज पतनशील और हीन है।
3. धर्म सुधार आंदोलन ने भारतीयों को आधुनिक विश्व से तालमेल बिठाने योग्य बनाया। वास्तव में इन आंदोलनों का उदय ही पुराने धर्मों को नवीन आधुनिक साँचे में ढालकर उनको समाज के नए वर्गों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए हुआ था।
4. सुधारमूलक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप अनेक भारतीय जाति धर्म के विचारों पर आधारित एक संकुचित तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने लगे हालाँकि पहले की मान्यताएँ समाप्त न हो सकी।
5. इन आंदोलनों ने बाकी दुनिया से भारत के सांस्कृतिक और बौद्धिक अलगाव को भी कुछ हद तक समाप्त किया तथा विश्वव्यापी विचारों में भारतीयों को भागीदार बनाया परंतु अंधानुकरण नहीं किया गया।
6. स्त्री मुक्ति आंदोलन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। सती प्रथा, बाल हत्या को अवैध घोषित किया जाना, विधवा विवाह को वैध बनाना, लड़कियों के विवाह की आयु सीमा को बढ़ाना आदि महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए।
7. धर्मग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। फलस्वरूप धार्मिक ज्ञान पर पुजारियों एवं धर्माचार्यों का चला आ रहा एकाधिकार समाप्त हो गया। परिणामस्वरूप धर्मग्रंथों की गलत व्याख्या के द्वारा पुजारियों द्वारा जो पाखंड चलाया जा रहा था वह भी समाप्त हुआ।
   कर्मकांडों के सरलीकरण से ईश्वर की उपासना में बिचौलियों का अस्तित्व समाप्त हुआ। इस प्रकार लोगों को उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता वापस मिली।

TOUCH 'n PASS

प्र.6. सुधार आंदोलन की प्रणाली तथा आंदोलनों के पतन के कारणों को बताइए।
Explain the process of reform movements and the causes of their decline.

उत्तर

आंदोलन की प्रणाली
(Process of Movements)

सुधार आंदोलन की प्रणाली निम्न प्रकार है—

1. **आंतरिक सुधार**—शुरुआत राजा राममोहन राय द्वारा की गई। इस प्रणाली के तहत् सुधारकों ने समाज के अंदर से ही सुधार पर बल दिया। इस क्रम में पत्र-पत्रिकाएँ, किताबें आदि छापकर लोगों को जागरूक बनाने का प्रयास किया गया।
2. **सामाजिक कार्यों द्वारा**—इसके तहत् सामाजिक कार्यों के माध्यम से सुधारों पर बल दिया गया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डी०के० कर्वे, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज आदि की भूमिका को इस संदर्भ में समझा जा सकता है।
3. **कानूनों में सुधार द्वारा**—इसके तहत् सुधारकों ने सुधार के प्रयासों को कानूनी तरीके से लागू करना चाहा। इसमें केशवचंद्र सेन, वीरेशलिंगम, राणाडे आदि शामिल थे। उनके अनुसार प्रभावी सुधारों के लिए राज्य का सहयोग आवश्यक है।
4. **प्रतीकात्मक बदलाव**—इसके तहत् विशिष्ट विरोधी गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की कोशिश की गई। यह प्रवृत्ति डेरोजियों एवं उसके यंग बंगाल तक ही मुख्यत: सीमित रही जो सुधार आंदोलन के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इसके सदस्यों ने परंपराओं का बहिष्कार और समाज की मान्यता प्राप्त मानदंडों के खिलाफ विद्रोह किया। वे पश्चिम के नए विचारधारा से बहुत प्रभावित थे।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का पतन
(Decline of Socio-religious Reform Movements)

19वीं सदीं में शुरू हुए ये सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन 20वीं सदीं के तीसरे दशक में अपनी विशिष्ट पहचान खोने लगे। इसका कारण यह था कि इन सुधार आंदोलनों के तहत जो माँगे उठाई जाती थी अब वे राजनीतिक आंदोलन के एक मुख्य भाग के रूप में सामने आई। गाँधी के आगमन के पश्चात् इन सामाजिक सुधारों को राजनीतिक संघर्ष के अंतर्गत स्थान दिया जाने लगा। गाँधी ने अपने राजनीतिक आंदोलनों में रचनात्मक कार्यों पर भी बल दिया जैसे—हरिजनोत्थान, छूआछूत विरोधी गतिविधियाँ, महिलाओं का सम्मान, मानवतावाद आदि। ये रचनात्मक कार्य समाज सुधार की कोटि में ही आते थे। नेहरू और अंबेडकर के विचारों में भी राजनीतिक पहलूओं के अतिरिक्त सामाजिक सुधार पहलू भी निहित थे। इनकी संकल्पना में सामाजिक समानता व न्याय का दृष्टिकोण निहित था। स्वाभाविक है कि इस गाँधीवादी नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आंदोलन और इसके अंतर्गत उठाए गए सामाजिक सुधार के मुद्दों ने 19वीं सदी के धर्म और समाज सुधार आंदोलनों को अर्थहीन बना दिया।

प्र.7. फराजी आंदोलन की व्याख्या संक्षेप में कीजिए।
Give a brief description of Fairaizi movement.

उत्तर

फराजी आंदोलन
(Fairaizi Movement)

फराजी आंदोलन की व्याख्या निम्न प्रकार है—

1. फराजी आंदोलन उग्र सुधारवादी विचार धारा से प्रभावित था। एक धार्मिक नेता फराजी तथा पागलपंथी सम्प्रदाय के नेता टीटू ने किसानों की सहायता से कम्पनी और जमींदारों के विरुद्ध आंदोलन चलाया।
2. फराजी मूलत: एक धार्मिक विचारधारा थी। जिसका उद्देश्य मुस्लिम समाज में प्रचलित कुरीतियों को दूर करना था फराजी इस्लाम धर्म के प्रतिकूल प्रथाओं को समाप्त कर इस्लाम के सच्चे स्वरूप की स्थापना करना चाहते थे। वे ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्यों को समान मानते थे। उनका विचार था कि समस्त भूमि ईश्वर की है इसलिए किसी को भी लगान वसूल करने का अधिकार नहीं है।

राजनीतिक विचार (Political Thought)

फराजी प्रचलित व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे उनका मानना था कि बंगाल में कम्पनी शासन की स्थापना ने मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन के अतिरिक्त राजनैतिक जीवन पर गहरा आघात किया है। उनका मानना था कि बंगाल के

TOUCH 'n PASS

नवाब को षड्यंत्र और दुष्चक्र के जरिए सत्ता से अलग कर दिया गया। अत: वे पुन: बंगाल में मुस्लिम शासन की स्थापना चाहते थे ताकि मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा हो सकें।

किसानों के प्रति दृष्टिकोण (Out Look for Farmers)

फराजी आंदोलन किसानों के प्रति सहानुभूति रखता है वे समाज के निर्धन और गरीब किसानों की स्थिति को सुधारकर समृद्ध बनाना चाहते थे। कम्पनी के स्थायी बदोबस्त एवं जमींदारों के अत्याचार से किसानों का जो शोषण हो रहा था, उसे समाप्त करना चाहते थे। इसलिए कम्पनी के साथ-साथ फराजियों ने हिन्दू मुसलमान जमींदारों की दमनात्मक नीतियों का विरोध किया। फलत: बंगाल के छोटे किसान, दस्तकार, निर्धन वर्ग आदि इस आंदोलन के समर्थक बन गए। इस तरह यह आंदोलन केवल मुसलमानों का आंदोलन नहीं था, बल्कि बंगाल के समूचे निर्धन वर्ग का कंपनी एवं जमींदारों के शोषण के विरुद्ध सशक्त आंदोलन था।

आंदोलन के नेतृत्वकर्ता (Leaders of the Movement)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. फराजी आंदोलन के जन्मदाता फरीदपुर के हाजी शरीयतुल्ला थे और 18-19वीं सदी के पूर्वार्ध में इस आंदोलन का जन्म हुआ।
2. **प्रसार**—हाजी शरीयतुल्ला की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र दादू मियाँ ने नेतृत्व संभाला। उन पर वहाबी आंदोलन का भी प्रभाव था। शरीयतुल्ला ने धार्मिक बातों पर अधिक बल दिया था परंतु दादूमियाँ ने किसानों की दयनीय स्थिति के विरुद्ध आंदोलन चलाया। फलत: उनके समर्थकों की संख्या में वृद्धि हुई। उसने किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। अंग्रेजों द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया।
3. विभिन्न क्षेत्रों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर अपने विचारों का प्रचार किया। गाँवों में स्वतंत्र न्यायालय की स्थापना कर बुजुर्ग अनुभवी व्यक्ति को उसका प्रमुख बनाया। इस तरह गाँव के लोगों को अंग्रेजी न्यायालयों में जाने से रोका।
4. इस आंदोलन ने जमींदारों के विरुद्ध धार्मिक भावना को ध्यान में नहीं रखा वरन् सभी जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष किया। अत: बंगाल के बहुत बड़े क्षेत्र में इसका प्रभाव पड़ने लगा और यह पूरे बंगाल का आंदोलन बन गया।

आंदोलन के प्रति प्रतिक्रिया (Reactions Towards the Movement)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. फराजी आंदोलन से जमींदार एवं सरकार दोनों को चुनौती मिली। अत: सभी ने मिलकर फराजी आंदोलन के विरुद्ध कार्यवाही की माँग की। सरकार ने सेना भेजकर आंदोलन का दमन किया। नेताओं को जेल में डाल दिया। इस तरह आंदोलन सरकार के दमन का शिकार हुआ।

महत्त्व (Importance)

यह आंदोलन मुस्लिम सुधार को केन्द्र में रखकर चाहे लाया गया हो किन्तु इसने पहली बार बंगाल के किसानों को संगठित होकर सामंती उत्पीड़न के विरुद्ध एकजुट किया। यह आंदोलन एक दृष्टि से निम्न वर्ग एवं बुर्जुआ वर्ग के बीच का संघर्ष बन गया। अत: इसे मुस्लिम आंदोलन के साँचे में देखना ऐतिहासिक दृष्टि को नजरअंदाज करना है। वस्तुत: यह जन आंदोलन था और 1857 के विद्रोह के बाद भी फराजी जमींदारों को विरुद्ध संघर्ष करते रहे।

प्र.8. वहाबी आंदोलन का उल्लेख कीजिए।
Describe Wahabi Movement.

उत्तर

वहाबी आंदोलन
(Wahabi Movement)

वहाबी आंदोलन आरंभ करने वाला सैयद अहमद बरेलवी ने, जो उत्तर प्रदेश का निवासी था, आरंभ किया। वह अपने को हजरत मोहम्मद का वंशज करार देता था। आरंभ में उसने सेना में नौकरी की किन्तु जब रियासत पर अंग्रेजी अधिपत्य हो गया तो वह मक्का चला गया। वहाँ उसका सम्पर्क अब्दुल वहाब से हुआ। उसके विचारों से प्रभावित होकर वह कट्टर धर्मयोद्धा बन गया। सैयद अहमद धार्मिक विचारों से युक्त होकर भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध नेतृत्व संभाले। इसकी मान्यता थी कि अंग्रेजों ने भारत को दारूल-हर्ब बना दिया है। अत: इसे दारूल-इस्लाम बनाने के लिए अंग्रेजों से युद्ध करना आवश्यक है। अंग्रेजों के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग करना धर्मविरोधी कार्य माना और अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही करना अपने कार्यक्रम में शामिल किया।

TOUCH 'n PASS

गतिविधियाँ (Activities)

वहाबी आंदोलन की गतिविधियाँ निम्न प्रकार है—

1. सैयद अहमद ने समूचे उ०प्र० का दौरा कर अपने विचारों का प्रचार किया। उसने धर्मयुद्ध के लिए तीन बातों पर बल दिया, जो इस प्रकार हैं—
   (i) सशस्त्र योद्धाओं की एक टुकड़ी तैयार की जाएँ।
   (ii) दल सिपाहसलारों की नियुक्ति की जाएँ।
   (iii) जिहाद् आरंभ करने के लिए ऐसा इलाका ऐसा क्षेत्र चुना जाए जहाँ मुस्लिम शासन हो।
2. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत को केन्द्र बनाया तथा भारत के सभी प्रमुख नगरों में स्थानीय कार्यालय खोले गए। बंगाल प्रेसीडेंसी के लिए पटना मुख्य कार्यालय था। बड़ी संख्या में सैनिकों की भर्ती की गई और फिर अभियान (हिजरत) शुरू किया।
3. सैयद अहमद ने अपने समर्थकों के साथ पेशावर पर हमला कर अधिकार किया और एक स्वतंत्र सरकार की स्थापना की। सीमा प्रांत में शासन चलाने और युद्ध करने के लिए विभिन्न केन्द्रों से जन-धन की सहायता प्राप्त की गई। इसी क्षेत्र में सिखों के साथ भी उसका संघर्ष हुआ और संघर्ष में वह मारा गया।

बंगाल में वहाबी आंदोलन (Wahabi Movement in Bengal)

बंगाल में इस आंदोलन का नेता टीटू मीर था। इसने किसानों, श्रमिकों, कारीगरों को जमींदारों के विरुद्ध एकजुट किया। उसने किसानों को कर ना देने के लिए प्रेरित किया तो अंग्रेजों से भी उसका संघर्ष हुआ। 1831 में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही की। अन्ततः सरकार के दमन से आंदोलन कमजोर पड़ गया। वहाबियों ने सामाजिक धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए शस्त्रों का सहारा लिया। यद्यपि मूलतः यह मुसलमानों का पुनरूत्थान आंदोलन था तथापि बंगाल में यह किसान और राजनीतिक आंदोलन बन गया। इस आंदोलन में सिर्फ मुसलमान नहीं थे बल्कि बड़ी संख्या में हिन्दुओं का समर्थन भी इसमें शामिल था। सरकार विरोधी अभियान चलाकर वहाबियों ने 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। वहाबी आंदोलन ने मुसलमानों में एकता की भावना भी भर दी। मुसलमानों के अंदर अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित होकर विरोध करने का जज्बा पैदा किया। इस तरह अंग्रेजों को एक सशक्त चुनौती वहाबियों से मिली। किन्तु अंग्रेजी विरोध का यह आंदोलन अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका। अतः इस विफलता ने मुसलमानों में एक नई विचारधारा को भी जन्म दिया जिसका नेता सैयद अहमद खाँ बना। उसने धार्मिक कट्टरता के स्थान पर मुसलमानों के आधुनिकीकरण पर बल दिया। और मुसलमानों को राजनीति से दूर रहकर जागरूक करने पर बल दिया।

प्र.9. सामाजिक सुधार के केन्द्र में महिलाओं की स्थिति का उल्लेख कीजिए।
Mention the condition of women at the centre of social reforms.

उत्तर

सामाजिक सुधार के केन्द्र में महिलाओं की स्थिति
(Condition of Women at the Centre of Social Reforms)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. "वे सभी राष्ट्र जिन्होंने महिलाओं को सम्मान दिया है, महान कहलाए। वे राष्ट्र जिन्होंने महिलाओं को सम्मान नहीं दिया वे कभी महान नहीं कहलाए और न भविष्य में कहलाएँगे। हमारी कौम को (भारतीय नस्ल) पिछड़ा इसलिए कहा जाता है कि हम शान्ति के इस जीवित रूप का सम्मान नहीं करते।"
2. ब्रिटिश काल से पूर्व भारतीय नारियों का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक शोषण होता रहा है और तमाम् धार्मिक ग्रंथ इस शोषण को औचित्य प्रदान कर रहे थे। यदा कदा ग्रंथों में महिला की आदर्श स्थिति दिखाई तो गई पर व्यवहार में वह लागू नहीं की गई। भारतीय महिला, समाज की प्रमुख बुराई के रूप में स्थापित थी। सती प्रथा, बालविवाह, बहुपत्नीप्रथा, बालवध, शिक्षा में भेदभाव, विधवा पुर्नविवाह का निषेध, बुनियादी मानवाधिकारों का हनन आदि कुछ ऐसी आम बुराईया थी जो भारतीय समाज में मौजूद थी। अतः समाज की इस बुराई को दूर करने के लिए सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों ने कदम बढ़ाया।

TOUCH 'n PASS

3. 19वीं 20वीं शताब्दी में लगभग सभी सुधार आंदोलनों में नारी उत्थान को प्रमुखता प्रदान की और उसको अधिकारों के प्रति जागरूक किया। राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने महिला शिक्षा आर्थिक स्वावलंबन पर बल दिया तथा सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनवाने में भूमिका निभाई।
4. बाल विवाह भी भारतीय महिलाओं के लिए एक अभिशाप है। वस्तुत: कई समस्याओं का मूल तो बालविवाह ही है। बाल विवाह से महिला अशिक्षा, विधवा जीवन, सती प्रथा जैसी बुराइया पैदा होती हैं। अत: अधिकांश समाज सुधार आंदोलन में बालविवाह का खुलकर विरोध किया गया। बी० मालाबारी के प्रयासों से 1891 में सम्मिति आयु अधिनियम पारित हुआ। इसमें विवाह की उम्र 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी गई। और फिर आगे हरविलास शारदा के प्रयासों से शारदा अधिनियम पारित हुआ। जिसमें विवाह हेतु बालिका की न्यूनतम आयु 14 वर्ष कर दी गई। इसी प्रकार विधवा विवाह के लिए भी सुधार आंदोलन के नेताओं ने प्रयास किया। ईश्वरचंद विद्यासागर रानाडे आदि के प्रयासों से विधवा विवाह को कानूनी वैधता प्राप्त हुई।
5. प्राचीन भारत से देवदासी प्रथा आधुनिक काल तक चली आई थी। यह प्रथा भी महिला शोषण को बढ़ावा दे रही थी इस प्रथा के विरोध में डॉ० मुथ्थुलक्ष्मी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिनके प्रयासों से 1925 में इस पर रोक लगाई गयी। बहुपत्नी प्रथा भी महिलाओं के शोषण का मुख्य कारण थी और इसके विरोध में केशवचंद्र सेन, सैयद अहमद जैसे सुधार आदोलन के नेताओं ने कार्य किया। फलत: 1872 में ब्रह्म मैरिज एक्ट के जरिए इस पर रोक लगायी गयी।
6. भारत के समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया क्योंकि उनको विश्वास था कि शिक्षा से ही जागृति आती है और उनका आत्मविश्वास स्वाभिमान बढ़ेगा। उनकी स्थिति में सुधार आएगा। इंग्लैण्ड, जर्मनी से आने वाली मिशनरियों ने भी महिला शिक्षा पर बल दिया। विद्यासागर ने बैथून के सहयोग से 1849 में बालिका स्कूल खोला। इन्हीं के प्रयासों से ब्रिटिश शासन द्वारा निर्मित वुड घोषणा पत्र और हंटर आयोग की रिपोर्ट में नारी शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया। तो प्रो० कर्वे ने पूणे में भारतीय महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ के साथ नारी उत्थान का यह आंदोलन और भी जोर पकड़ता गया। गाँधी ने आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भूमिका पर बल देते हुए महिला शिक्षा को सभी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के रूप में देखा। साथ ही महिला के आर्थिक स्वावलंबन पर बल देते हुए चरखे को अपनाने की बात की।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. स्थायी बंदोबस्त के प्रभावों का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।
Explain the effects of permanent settlement in detail.

उत्तर

स्थायी बंदोबस्त का प्रभाव
(Effect of Permanent Settlement)

स्थायी बंदोबस्त का प्रभाव निम्न प्रकार है—

ब्रिटिश हित में (In the Favour of British)

ब्रिटिश हित में प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश के लिए वित्तीय दृष्टि से इसका लाभ यह था कि सरकारी आय निश्चित हो गई क्योंकि वर्षा कम या अधिक पड़ने से राज्य की आय घटती या बढ़ती नहीं थी।
2. निश्चित आय के कारण आर्थिक प्रशासनिक योजनाओं को बनाने में सुविधा हुई।
3. पहले इस कार्य पर राज्य का बहुत धन खर्च होता था। किन्तु नई व्यवस्था में अपव्यय भी समाप्त हो गया।
4. इस लगान वसूली में लगे बड़ी संख्या में कंपनी के कर्मचारियों को अन्य प्रशासनिक कार्यों में लगाकर प्रशासनिक गतिशीलता लाई गई।
5. राजनीतिक रूप से जमींदार वर्ग ने कंपनी के हितों को सुरक्षित रखने में मद्द की जो 1857 ई० के अनुभव से साबित होता है। यह वर्ग कम्पनी प्रशासन का शुभचिंतक बन गया।

TOUCH 'n PASS

भारतीयों के हित में (In the Favour of Indians)

भारतीयों के हित में प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. भारतीय जमींदारों का जमीन पर पैतृक स्वामित्व कायम हो गया। इससे उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति मजबूत हुई।
2. राजस्व वसूली का एक निश्चित अंश मिलने से उनकी आय नियमित हो गई।
3. स्थायी लगान के निर्धारण से अतिरिक्त उत्पादन और अधिक वसूली का पूरा लाभ जमींदारों को मिला। इस धन का उपयोग बहुत से जमींदारों ने शैक्षणिक, कलात्मक, औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास के लिए भी किया।
4. कृषि क्षेत्र में वाणिज्यीकरण को बढ़ावा मिला क्योंकि नकद लगान पर जोर दिया जाता था।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Effects)

स्थायी बंदोबस्त ने अनेक नकारात्मक परिणाम पैदा किए, जो निम्न प्रकार हैं—

1. बंदोबस्त के स्थायी हो जाने से उत्पादन और वसूली में जो वृद्धि हुई उसका लाभ सरकार को नहीं मिला। दूसरी ओर बढ़ते हुए साम्राज्य विस्तार एवं प्रशासनिक दायित्वों हेतु अधिक धनराशि की जरूरत थी, जो स्थायी बंदोबस्त के तहत् पूरी नहीं हो सकती थी।
2. जमींदारों ने किसानों का भरपूर शोषण किया। फलतः ब्रिटिश को कृषक विद्रोहों का सामना करना पड़ा।
3. इस व्यवस्था में भूमि के मूल्य को शामिल नहीं किया गया। भूमि के मूल्यों में वृद्धि के पहलूओं पर भी ध्यान नहीं दिया गया। ऐसे में ब्रिटिश सरकार को भी नुकसान हुआ।
4. भारतीय वर्गों और हितों पर स्थायी बंदोबस्त का अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ा। यह व्यवस्था उत्पीड़न और शोषण का साधन बन गई।
5. जमींदारों के रूप में एक परजीवी वर्ग का विकास हुआ जो निकम्मा, विलासी व क्रूर बनता गया और दूसरे के खून पर पलने वाला एक जोंक बन गया।
6. जमींदारों का कृषि से कोई संबंध नहीं था परन्तु वे जमीन के मालिक बना दिए गए। यह भू स्वामित्व भी तब तक था जब तक वे ब्रिटिश को एक निश्चित राशि एक निश्चित तिथि तक देते रहे। इस संदर्भ में उनकी स्थिति सरकार के समक्ष रैय्यत सी हो गई। लगान समय से न देने पर उनकी जमींदारी नीलाम कर दूसरों को दे दी जाती थी।
7. बंदोबस्त द्वारा उपज के तीन भागीदार बताएँ गए—सरकार, बिचौलिए (जमींदार) और कृषक इनमें पहले दो भागीदारों की स्थिति निश्चित कर दी गई किन्तु काश्तकारों द्वारा भुगतान किए जाने वाले लगान को अनिश्चित ही छोड़ दिया गया। उसका निर्धारण जमींदारों की इच्छा पर ही छोड़ा गया जिसके परिणामस्वरूप किसानों के असीमित शोषण का का दौर शुरू हुआ।
8. किसानों को जमींदारों का व्यक्तिगत रैय्यत बना दिया गया।
9. शोषण पर आधारित एक नई कृषक संरचना का विकास हुआ जिसमें शिखर पर जमींदार वर्ग और सतह पर कृषक वर्ग था। इस तरह इस व्यवस्था में ऊपर के स्तर पर सामंतवाद तथा निचले स्तर पर दास प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।
10. इस बंदोबस्त के तहत् उपसामंतीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। क्योंकि बहुत अधिक लगान निर्धारण के कारण पुराने जमींदार भूमि से वंचित हुए, भूमि हस्तांतरण की प्रक्रिया शुरू हुई और बिचौलियों का भूमि संबंध में प्रवेश हुआ। उपसामंतीकरण के कारण भूमि किराए तेजी से बढ़ने लगे जिसका भार किसानों पर पड़ा जबकि बंगाल का कृषि उत्पादन उस अनुपात में नहीं बढ़ा। अतः कृषकों का जीवनस्तर गिरता गया और वे विपन्न हो गए।
11. स्थायी बंदोबस्त ने दूरवासी या अनुपस्थित जमींदारी प्रथा (absentee landlordism) को जन्म दिया। वस्तुतः जमींदारी अधिकारों की नीलामी के कारण पुराने जमींदार वर्ग बदल गए और अधिकांश भूमि नए जमींदारों के हाथ में आ गई और जो अधिकतर बनिया या व्यापारी थे जिनका गाँव से कोई लगाव नहीं था। ये अधिकांश जमींदार प्रवासी थे वे दूरवर्ती शोषणकर्त्ता बन गए। इस प्रकार स्थायी बंदोबस्त ने अनुपस्थित जमींदारी प्रथा को स्वीकार कर कृषकों को पूर्णतया जमींदारों और उनके कारिन्दों पर आश्रित कर दिया जो स्थायी बंदोबस्त का वास्तविक उद्देश्य नहीं था।
12. इस व्यवस्था से कृषि का विकास नहीं हुआ क्योंकि पूँजीविहीन कृषक भूमि में कोई सुधार नहीं ला सका। फलतः उत्पादन में गिरावट आई।

TOUCH 'n' PASS

13. लगान व कृषि उत्पादन के महंगेपन ने किसान को कर्जदार बना दिया।
14. स्थायी बंदोबस्त ने भारतीय ग्रामीण सामाजिक संबंधों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया। समाज में सुविधा संपन्न एवं सुविधा रहित वर्ग को एक दूसरे के सामने ला दिया। दोनों वर्गों का विभेद क्रमश: बढ़ता ही गया। फलत: संगठित रूप से राष्ट्रीय आंदोलन के विकास को भी अवरूद्ध कर दिया।

लॉर्ड विलियम बेंटिक—"यदि जबर्दस्त जनविद्रोहों या क्रांति का मुकाबला करने के लिए सुरक्षा की जरूरत है तो मैं यह कहना चाहूँगा कि कई मामलों में और कई महत्त्वपूर्ण बातों में असफल रहने के बावजूद स्थाई बंदोबस्त का कम-से-कम एक बहुत बड़ा फायदा है वह यह कि धनी भू-स्वामियों का एक ऐसा विशाल संगठन खड़ा किया गया है जो तहे दिल से यह चाहता है कि अंग्रेजी साम्राज्य बना रहे और इसका जनता पर दबाव कायम रहे।"

मार्शमैन—"यह साहस, बहादुरी एवं बुद्धिमानी का कार्य था"

हेम्स—"स्थायी बंदोबस्त एक दुखद भूल थी।"

चाल्स मेटकॉफ—"कार्नवालिस भारत में व्यक्तिगत संपत्ति का निर्माण करने वाला नहीं बल्कि व्यक्तिगत संपत्ति का नाश करने वाला था।"

बेवरिज—"केवल जमींदारों के साथ समझौता करके और किसानों के अधिकार को पूर्णत: भूलाकर एक महान भूल और अन्याय किया गया।"

प्र.2. रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त पर विस्तृत टिप्पणी कीजिए।

Write a detailed description of Ryotwari Settlement.

उत्तर

रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त
(Ryotwari Settlement)

रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

मूल आधार (Basic Premises)

इसके मूल आधार निम्न प्रकार हैं—

1. स्थायी बंदोबस्त, बढ़ती ब्रिटिश आवश्यकता की पूर्ति में पूर्ण सक्षम नहीं।
2. इंग्लैण्ड में प्रचलित विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा। इंग्लैंड के उपयोगितावादी बेंथम, डेविड रिकॉर्डो जेम्स मिल आदि की धारणा का भी प्रभाव पड़ा।
3. रिकॉर्डो के अनुसार उपजाऊ भूमि पर जो अधिशेष निकलता है वह किराया है और यह अधिशेष जमींदारों द्वारा हड़प लिया जाता है। जो वास्तव में सरकार के पास पहुँचना चाहिए। इस तर्क के आधार पर रिकॉर्डो ने कहा कि उत्पादक और सरकार के बीच सभी बिचौलियों को हटा देना चाहिए।
4. मिल के अनुसार किराया प्राप्त करना सरकार का हक बनता है क्योंकि राज्य ही भूमि का स्वामी है।
5. दूसरे शब्दों में कंपनी सरकार किसान के श्रम का मूल्य एवं उत्पादन खर्च को छोड़कर किसान की शेष समस्त आय पर कब्जा करने को तत्पर थी।
6. ब्रिटिश शासन का दक्षिण एवं पश्चिम भारत में विस्तार हो जाने से इन क्षेत्रों में नवीन भू-राजस्व व्यवस्था को लाने की आवश्यकता थी क्योंकि यहाँ जमींदार वर्ग नहीं था।
7. पूर्वी भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में भौगोलिक विविधता अधिक रही। भूमि की किस्म और फसल अलग-अलग थी। आबादी का घनत्व अलग था। खेतों की निरंतरता पहाड़ियों, तालाबों या भूमि की किस्म से टूटती रहती थी इसलिए यहाँ प्रत्येक ग्रामीण समुदाय का अपना महत्त्व था।
8. भारत में भू-स्वामित्व कृषकों में निहित रहा। अत: ऐसा माना गया कि भारतीय परिस्थितियों में रैय्यतवाड़ी प्रथा सर्वोत्तम होगी।
9. स्थायी बंदोबस्त में धन केवल जमींदारों के पास एकत्रित होता था और वे ही ब्रिटिश वस्तुओं को खरीदने की स्थिति में थे। परंतु जब ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के कारण वस्तु निर्माण में वृद्धि हुई तब उनके लिए एक विस्तृत बाजार की आवश्यकता हुई। अत: धन के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता हुई। इस वजह से भारत के अन्य भागों में जमींदारी व्यवस्था न लागू करके रैय्यतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्था लागू की।

TOUCH 'n' PASS

विकास (Development)

इसके विकास को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 1792 ई० में कर्नल रीड ने बारामहल (मद्रास) जिले में रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त लागू किया था। उसने सीधे किसानों से लगान संबंधी समझौता किया लेकिन उसका इस व्यवस्था पर अधिक समय तक विश्वास टिका न रहा।
2. लेकिन थॉमस मुनरो का इस पर विश्वास बढ़ता गया और मुनरो को जब निजाम से प्राप्त क्षेत्र का कलेक्टर बनाया गया उसने इस बंदोबस्त को परीक्षण के तौर पर लागू किया। इस प्रकार 1809 तक इस पद्धति को मद्रास प्रांत में कुछ स्थानों पर लागू किया गया और 1820 ई० में मद्रास का गवर्नर बनने के पश्चात् सम्पूर्ण प्रदेश में रैय्यतवाड़ी व्यवस्था लागू की।
3. 1825 ई० में बंबई (महाराष्ट्र) में भी यह व्यवस्था एलिफिंस्टन द्वारा लागू की गई।
4. कुल भू-भाग के 51% भाग पर यह व्यवस्था लागू की गई।

विशेषताएँ (Characteristics)

इसकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में किसान को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया। उसके साथ लगान की शर्तें तय की गई।
2. इस व्यवस्था के अंतर्गत कोई स्थायी बंदोबस्त नहीं किया गया। प्रत्येक 20-30 वर्षों पर इसका पुनर्निर्धारण किया जाता था तब सामान्यत: लगान में वृद्धि कर दी जाती थी।
3. भूमि उस समय जब्त की जा सकती थी जब किसान लगान की अदायगी न करे।
4. 1812 ई० में इस व्यवस्था में एक नया पहलू जोड़ा गया कि लगान चुकाने के लिए किसान अपनी जमींन गिरवी रख सकता था या बेच सकता था।

बंदोबस्त का रैय्यतवाड़ी प्रभाव (Ryotwari Effects of Settlement)

बंदोबस्त के रैय्यतवाड़ी प्रभाव को दो भागों के विभाजित किया गया है, जो निम्न प्रकार है—

सकारात्मक (Positive)—ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. इस लगान व्यवस्था में सैद्धान्तिक रूप से रैय्यत अधिक स्वतंत्र थे।
2. इसमें निजी संपत्ति के लाभ अधिकतम व्यक्तियों में बाँटे जा सकते थे।
3. सरकार एवं रैय्यत के बीच सीधे एवं प्रत्यक्ष संबंध थे।
4. जमींदारी प्रथा में यह भय दिखता था कि भूमि केवल कुछ समृद्ध जमींदारों एवं भू-स्वामियों के पास केन्द्रित हो जाएगी। इस प्रकार का भय रैय्यतवाड़ी पद्धति में नहीं था।

नकारात्मक (Negative)—ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. रैय्यतवाड़ी व्यवस्था का प्रभाव भी कृषि एवं कृषकों पर प्रतिकूल पड़ा। भू-राजस्व की दर सामान्यत: बहुत अधिक होती थी जो 45%-55% के बीच थी और प्राकृतिक आपदा जैसे सूखा, बाढ़ में फसलों के नष्ट हो जाने पर भी किसान को पूरा लगान देना पड़ता था।
2. भू-राजस्व की दर इतनी अधिक थी कि उसे चुकाने के लिए कृषकों को साहूकारों से कर्ज लेना पड़ा। फलत: वे साहूकारों के चंगुल मे फंस गए और अपनी जमीन खो बैठे। इस प्रकार इस व्यवस्था में महाजनी प्रथा का सर्वाधिक विकास हुआ।
3. रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त ने कृषक स्वामित्व की किसी प्रथा को जन्म नहीं दिया। जमींदारों की जगह एक दानवाकार जमींदार ने ले ली अर्थात् राज्य ही अब जमींदार हो गया।
4. सरकार जब चाहे लगान की राशि बढ़ा सकती थी। फलत: किसानों को लगान की अनिश्चितता का भय था। इस तरह राज्य यहाँ स्वयं शोषणकर्त्ता था।
5. लगान की दर अधिक होने, महाजन का ब्याज, दूसरी तरफ हथकरघा उद्योगों का पतन होने से कारीगरों को पुन: भूमि पर लौटना पड़ा, जिससे प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात तेजी से बदल गया। फलत: इसी कारण 19वीं शताब्दी में भूमिहीन किसानों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई।
6. ऋणग्रस्तता और महाजनी प्रथा ने कृषक को कृषि दास में तब्दील कर दिया। इसे कमियौटी प्रथा के संदर्भ में समझा जा सकता है जिसमें कमिया लोग अपने मालिक के बंधुआ नौकर थे।

TOUCH 'n PASS

7. किसानों के पास पूँजी का अभाव हो गया। फलत: किसान खेती में सुधार नहीं ला सकते थे।
8. इस प्रकार रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में किसानों का निर्धनीकरण, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, महाजनी प्रथा, कृषि दासता, उत्पादन में कमी हुई।

आर०सी० दत्त—"इस बंदोबस्त से कंपनी के रैय्यतों पर जकड़ का स्वरूप वही हो गया जो गुलाम के ऊपर उनके मालिकों का रहता है।"

आर्थर यंग—"किसी व्यक्ति को चट्टान पर भी निश्चित अधिकार दे दीजिए तो वह उसे बागीचे में परिवर्तित कर देगा। उसे नौ वर्षों के लिए बागीचे का ठेका दे दीजिए तो वह उसे रेगिस्तान में परिवर्तित कर देगा।"

प्र.3. महालवाड़ी व्यवस्था की विवेचना कीजिए।
Explain Mahalwari Settlement.

उत्तर

महालवाड़ी व्यवस्था
(Mahalwari Settlement)

महालवाड़ी व्यवस्था के अनुसार भूमि कर की इकाई कृषक का खेत नहीं बल्कि ग्राम या महाल को माना गया। गाँव की समस्त भूमि सम्मिलित सभा की मानी गई जिसे 'भागीदारों का समूह' (Body of co-shares) कहते थे। भूमि कर के लिए यही समूह उत्तरदायी माना गया।

विकास (Development)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 19वीं शताब्दी के पहले दशक में कम्पनी को 1801 ई० में अवध के नवाब से इटावा, फर्रूखाबाद, गोरखपुर, बरेली क्षेत्र मिला। प्रायोगिक तौर पर यह व्यवस्था इन क्षेत्रों में लागू की गई।
2. 1804 में मराठा से प्राप्त क्षेत्र—पानीपत, सहारनपुर, आगरा, अलीगढ़ में लागू की गई।
3. 1822 ई० में औपचारिक रूप से हॉल्ट मेकेंजी द्वारा यह व्यवस्था स्थापित की गई।

विशेषताएँ (Characteristics)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. समस्त 'महाल' सम्मिलित रूप से राजस्व चुकाने के लिए उत्तरदायी था।
2. राजस्व वसूली का काम ग्राम प्रधानों या जमींदारों पर छोड़ दिया गया।
3. कृषक का भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं रहता था। बल्कि समस्त महाल या ग्राम ही भूमि का मालिक था।
4. अगर कोई किसान अपनी भूमि छोड़ देता था तो ग्राम समाज ही उस भूमि की देखभाल करता था।
5. जमींदारों को कृषकों से प्राप्त आमदनी का 83% सरकार को देना पड़ता था। आगे मार्टिन बर्ड ने एक नई योजना तैयार की। गाँवों, को एकीकृत कर महाल की लगान निश्चित की गई और उसे विभिन्न गाँवों में (महाल के अंतर्गत आने वाले) बाँट दिया गया। दरों को निश्चित कर 66% तक किया गया। कालांतर में बेंटिक द्वारा दरों को पुनर्निर्धारण कर उन्हें घटाकर 60% तक किया गया। आगे डलहौजी द्वारा सहारनपुर नियम के तहत दरों को 50% पर नियंत्रित किया गया।

प्रभाव (Effects)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. महाल में कर वसूली करने वाले प्रतिनिधि अत्यधिक शक्तिशाली हो गए उनकी स्थिति जमींदारों जैसी हो गई।
2. लगान की अत्यधिक ऊँची राशि होने के कारण किसानों पर अत्यधिक भार, फलत: शोषण चक्र में वृद्धि हुई।

समग्र ब्रिटिश भू-राजस्व नीति का प्रभाव (Effect of Aggregate British Revenue Policy)

ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था के तहत लाई गई विभिन्न प्रणालियों में ऊपरी तौर पर चाहे जो भिन्नता रही हो किन्तु लक्ष्य एक था और वह था, ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को पूरा करना और आर्थिक अधिशेष को भारत से निकालना। इस कारण भू-राजस्व नीति का प्रभाव भारतीय समाज अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न वर्गों पर प्रतिकूल पड़ा।

TOUCH 'n' PASS

भूमि को हस्तांतरणीय बनाना (Making Land Transferrable)

भूमि पर निजी मिल्कियत स्थापित करके उसे क्रय-विक्रय योग्य बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि विपत्ति के समय कर न चुकाने की स्थिति में जमीन को बेचा या गिरवी रखा जाने लगा। इससे भूमि के दाम बढ़ने लगे, दूसरी तरफ भूमि का विखंडन हुआ, संयुक्त परिवार टूटने लगे और मुकदमेबाजी का विकास हुआ। फलत: किसानों की ऋणग्रस्तता बढ़ी।

उत्पादन में कमी (Decline in Production)

उत्पादन में कमी को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. अत्यधिक लगान के कारण किसान पूँजी विहीन हो गया। अत: वह कृषि का विकास जैसे खाद, उन्नत बीज तथा नवीन तकनीक का प्रयोग नहीं कर पाया। फलत: उत्पादन में गिरावट आई। अंतत: कृषक और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह घातक सिद्ध हुआ।
2. जिनके पास पूँजी थी अर्थात् जमींदार, साहूकार, उनकी रुचि कृषि विकास में नहीं रही क्योंकि सूर्यास्त कानून, अत्यधिक लगान के कारण प्राय: पुराने जमींदारों की भूमि जब्त कर नवीन जमींदारों को स्थापित कर दिया जाता था। फिर दूरवासी जमींदारी प्रथा ने भी कृषि के विकास को अवरुद्ध किया।
3. जमींन के हस्तांतरण एवं उसके विखंडन से खेतों/जोतों का आकार छोटा हो गया। फलत: परम्परागत एवं नवीन तकनीकी का प्रयोग सुगमतापूर्वक नहीं हो सका। परिणामस्वरूप उत्पादन में लगातार कमी आती चली गई।

कृषकों की ऋणग्रस्तता (Indebtedness of Farmers)

नीतियों ने किसानों को दरिद्र बनाकर उन्हें कर्ज के बोझ तले दबा दिया। फलत: वे साहूकारों के चंगुल में फंस गए और कृषक से भूमिहीन मजदूर में तब्दील हो गए।

अकाल एवं भुखमरी में वृद्धि (Increase in Drought and Famine)

अत्यधिक लगान होने के कारण तथा ब्रिटेन में कच्चे माल की माँग के कारण किसानों को परम्परागत खाद्यान्न की जगह नकदी फसलों को उपजाने हेतु बाध्य होना पड़ा। फलत: अकाल एवं भूखमरी में वृद्धि हुई।

कृषि क्षेत्र में नवीन वर्गों का उदय (Rise of New Categories in Agriculture)

ब्रिटिश भू-राजस्व नीति ने कृषि क्षेत्र में नवीन वर्गों को उत्पन्न किया जिसमें स्थायी बंदोबस्त के तहत जमींदारों का उदय भू-स्वामी के रूप में हुआ तो कृषकों का मजदूर एवं दास के रूप में तथा रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के अंतर्गत साहूकारों व महाजनों का उदय हुआ। ये जमींदार और महाजन शोषणकर्त्ता के रूप में स्थापित हुए। इस प्रकार ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के अंतर्गत तीन प्रकार के शोषण तंत्रों का उदय हुआ—एक ब्रिटिश सरकार दूसरा जमींदार तथा तीसरा साहूकार।

उद्योग की जगह भूमि में पूँजी निवेश को बढ़ावा (Promotion of Capital Investment in Land Instead of Industry)

भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त होने से लोगों का आकर्षण जमीन की ओर बढ़ा और 19वीं शताब्दी के आरंभ तक कुटीर उद्योग विनाश की स्थिति में पहुँच गये थे। फलत: महाजन एवं साहूकार ने अपना धन भूमि में लगाना शुरू कर दिया था। फलत: कृषि के साथ-साथ उद्योगों का और भी पतन हुआ।

अनुपस्थित जमींदारी प्रथा का विकास (Growth of Absentee Landlord Custom)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जो किसानों के शोषण का विशिष्ट माध्यम बनी।
2. साम्राज्यवादियों की कृषि नीति ने न केवल उन नए सामाजिक आर्थिक वर्गों को जन्म दिया बल्कि उनकी आर्थिक स्थिति को अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप भी ढाला।
3. नई नीतियों से ग्रामीण व्यवस्था प्रभावित हुई। ग्रामीण समुदायों के भूमि से जुड़े हुए परम्परागत अधिकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए और उनकी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की समाप्ति हो गयी।
4. नवीन भू-राजस्व व्यवस्था ने कृषकों के बीच सामाजिक आर्थिक विषमता को बल दिया। समृद्ध कृषक वर्ग समृद्ध बना रहा, कमजोर वर्ग और कमजोर बनता गया।

TOUCH 'n' PASS

5. कृषक असंतोष ने कृषक विद्रोहों की एक शृंखला को जन्म दिया फलस्वरूप अनेक काश्तकारी कानून पारित हुए किन्तु यह भी उनके शोषण को कम न कर सके।
6. कुल मिलाकर ब्रिटिश भू-राजस्व नीति ने भारत के निर्धनीकरण में प्रमुख भूमिका निभाई, ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाया, तनावपूर्ण बना दिया। अंततः ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों को पूरा किया।

प्र.4. ''भारतीय पुनर्जागरण के उदय के अनेक कारण थे।'' स्पष्ट कीजिए एवं इसके स्वरूप को बताइए।
"There were many causes for the rise of Indian Renaissance." Make clear and also tell about its form.

उत्तर 19वीं सदी में जबर्दस्त बौद्धिक व सांस्कृतिक उथल पुथल भारत की एक विशेषता थी। इस काल में हुए धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान हैं। इसके बहुमुखी स्वरूप एवं व्यापकता की दृष्टि से इसे एक महत्त्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आंदोलन ने देश के जनजीवन को झकझोर दिया। इसने जहाँ एक ओर धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की।

उदय के कारण (Causes for Rise)

भारतीय पुनर्जागरण के उदय के कारण निम्नलिखित हैं—

1. आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव व विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने की चेतना ने उन्नीसवीं सदी में एक नई जागृति को जन्म दिया।
2. विचारशील लोगों में जिन्हें आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त था। उनमें यह आम धारणा पनपी की औपनिवेशीकरण का मूल कारण भारतीय सामाजिक ढांचा एवं संस्कृति में विद्यमान कमजोरियाँ हैं। इन बुराइयों को दूर करने के भी उपाय खोजे जाने लगे।
3. जीवन के प्रति पाश्चात्य मानवतावाद और विवेकपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समाज में समता के सिद्धांत का उत्थान हुआ।
4. ईसाईयों के आगमन से अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ जिससे पाश्चात्य ज्ञान एवं विचार भारतीयों तक पहुँचने लगे और उनमें जागरण की चिंतनधारा फूटने लगी। जब ईसाई मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू किया। फलतः भारतीय अपने धर्म की रक्षा करने के प्रयत्न में जुड़ गए। वस्तुतः कुछ भारतीय इस बात को जानते थे कि ये ईसाई हिन्दूओं की कुछ कमजोरियों का फायदा उठा रहे हैं जिनमें जात-पात, अंधविश्वास और निरर्थक आडंबर प्रमुख थे। अतः हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उनमें सुधार आवश्यक प्रतीत होने लगा।
5. पुनर्जागरण लाने में उन कतिपय यूरोपीय विद्वानों का भी हाथ था जो भारत की प्राचीन सांस्कृतिक उपलब्धियों से प्रभावित थे। विलियम जॉस, मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति एवं ग्रंथों का अध्ययन कर उन्हें श्रेष्ठ बताया। फलतः भारतीयों में आत्मगौरव एवं आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न हुई तथा उन्होंने उसकी श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयत्न किया।
6. प्रेस की स्थापना हो जाने से अनेक पत्र-पत्रिकाओं, साहित्य का प्रकाशन हुआ। इनसे भारतीयों के प्रति अंग्रेजों की व्यवहार हीनता, शोषण, क्रूरता का ज्ञान भारतीयों को कराया। फलतः उनमें आत्मसम्मान की सुरक्षा की भावना जागृत हुई। उन्होंने अपने समाज व धर्म की रक्षा हेतु प्रयत्न आरंभ किए।

स्वरूप (Form)

भारतीय पुनर्जागरण के स्वरूप को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है—

1. इस आंदोलन का स्वरूप बहुआयामी था। यह सामाजिक एवं धार्मिक दोनों सुधारों से संबद्ध था। इस आंदोलन का मुख्य लक्ष्य समाज सुधार था चूँकि समाज में अनेक कुरीतियों का समर्थन धर्म के आधार पर किया जाता था अर्थात् सामाजिक जीवन बहुत सीमाओं तक धार्मिक विचारों व मान्यताओं से प्रभावित था। अतः धर्म में सुधारों के बगैर समाज सुधार तर्कहीन था।
2. आंदोलन का स्वरूप मूलतः सुधारवादी था, क्रांतिकारी नहीं। सुधारकों ने धार्मिक बुराईयों को दूर करने के क्रम में धार्मिक आडंबरों पर चोट की न कि उस धर्म को अस्वीकार करने की।

TOUCH 'n PASS

3. इसका स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से युक्त नहीं था। इसे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।
4. यह आंदोलन तकनीकी व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संबद्ध था।
5. धर्म से संबद्ध होते हुए भी आंदोलन का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष था। यद्यपि कुछ आंदोलनों में धार्मिक संकीर्णता के तत्त्व देखे जा सकते हैं।
6. यह आंदोलन कुछ सीमाओं तक राजनैतिक पहलुओं से भी संबद्ध रहा। राजा राममोहन राय के संदर्भ में इसे समझा जा सकता है।
7. यह आंदोलन मध्ययुगीन सुधार आंदोलन से भिन्न था क्योंकि 19वीं सदी के सुधारकों ने सुधार के क्रम में विधि व कानून निर्माण पर भी बल दिया।
8. आंदोलन अपने सामाजिक आधार के संदर्भ में मध्यवर्गीय था।
9. सुधारों का स्वरूप प्रजातांत्रिक था। इसमें व्यक्ति के अधिकारों एवं उनकी स्वतंत्रता, समानता पर बल दिया गया। आंदोलन में सामाजिक न्याय पर बल दिया गया जो प्रजातांत्रिक स्वरूप की ओर संकेत करता है।
10. सुधार आंदोलन शैक्षणिक सुधार का स्वरूप लिए हुए था। लगभग सभी सुधार आंदोलनों में शिक्षा के विकास पर बल दिया। महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया।

क्या सुधार आंदोलन भारतीय पुनर्जागरण के रूप में था?
(Was Reform Movement in the form of Indian Renaissance?)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. वस्तुत: इतिहासकारों ने इन आंदोलनों को सामूहिक रूप से भारतीय पुनर्जागरण के रूप में दिखाया है। उन्होंने ऐसा मत यूरोपीय पुनर्जागरण के परिप्रेक्ष्य में दिया। उनके अनुसार यूरोपीय पुनर्जागरण में मौजूद तत्त्व जैसे तर्कवाद, बुद्धिवाद, मानवतावाद, विज्ञान आदि इन आंदोलनों में भी मौजूद थे।
2. हालिया अध्ययन के प्रकाश में इन सुधारों को भारतीय पुनर्जागरण के रूप में देखने पर आपत्ति जाहिर की गई है। वस्तुत: यूरोपीय पुनर्जागरण के तत्त्व जैसे भौगोलिक खोजें, वैज्ञानिक आविष्कार, कला साहित्य के क्षेत्र में प्रगति भारत में उपस्थित नहीं थी।
3. भारतीय आंदोलन में मानवतावाद का व्यावहारिक पक्ष संकीर्ण था और आंदोलन का दृष्टिकोण छद्म वैज्ञानिकता पर आधारित था। सामाजिक सुधार, सामाजिक दबावों व मान्यताओं से पूरी तरह अलग नहीं दिखाई पड़ते हैं। इस तरह भारतीय पुनर्जागरण यूरोपीय पुनर्जागरण से कई अर्थों में भिन्न था।

क्या पुनर्जागरण ने भारत का आधुनिकीकरण किया?
(Did Renaissance Lead to the Modernisation of India?)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कुछ विद्वानों के अनुसार भारतीय धर्मसुधार आंदोलनों में स्वतंत्रता, समानता, मानवतावाद, बुद्धिवाद वैज्ञानिकता जैसे पश्चिमी दृष्टिकोण शामिल थे और ये आधुनिकता के वाहक रहे हैं।
2. इन सुधार आंदोलनों ने धार्मिक एवं सामाजिक अंधविश्वास रूढ़िवादिता और क्रूर अमानवीय प्रथाओं का विरोध किया। सामाजिक समता और विशेषकर महिलाओं की स्वतंत्रता का समर्थन किया तथा शिक्षा के माध्यम से आधुनिक ज्ञान, विचार एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जनमानस में प्रतिष्ठित करने की कोशिश की।

   किन्तु वास्तविकता तो यह है कि इन आंदोलनों से भले ही कुछ मौलिक परिवर्तनों की शुरुआत हुई हो परन्तु इनसे देश का आधुनिकीकरण नहीं हुआ। जिसे आधुनिकीकरण माना गया वह पश्चिमीकरण से कुछ ज्यादा नहीं था। पश्चिमी वस्त्र, रहन-सहन, संस्कृति की नकल की शुरुआत हुई। आधुनिकता के मुख्य आधार मानव विवेक, ज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं मानवतावाद आदि हैं। लेकिन ये सभी तत्त्व किसी समाज या देश विशेष को तभी आधुनिक बना सकते हैं जब इनका उस समाज के संदर्भ में स्वाभाविक रूप से विकास और विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग हो। इस प्रकार अलग-अलग देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं आयाम अलग-अलग हो सकते हैं। ग्रेट ब्रिटेन और भारतीय जीवन की पृष्ठभूमि एक

TOUCH 'n' PASS

दूसरे से पूर्णत: भिन्न थी। ऐसी हालत में भारत का आधुनिकीकरण ब्रिटेन के ही मॉडल पर हो यह जरूरी नहीं था। भारत में आधुनिकता अंग्रेजी नहीं बल्कि हिन्दी/संस्कृत के माध्यम से आ सकती थी और यहाँ के परम्परागत ज्ञान विज्ञान (आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि) के अध्ययन एवं विकास के जरिए आधुनिक बनाया जा सकता था। जापान व चीन का आधुनिकीकरण इसका ज्वलंत उदाहरण है।

क्या आंदोलन सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील था?
(Was the Movement Secular and Progressive in True Sense?)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. अपने आधुनिक मुखौटों के बावजूद यह आंदोलन छद्म वैज्ञानिकता का पोषक और बहुत हद तक रूढ़िवादी था। पुनर्जागरण काल का कोई भी आंदोलन धर्म से ऊपर नहीं उठ सका। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि का समग्र चिंतन हिन्दू धर्म पर आधारित तथा अलीगढ़ आंदोलन इस्लाम पर।
2. अत: इनमें से कोई भी एक आंदोलन समस्त भारतीय जनजीवन को अपना कार्य क्षेत्र नहीं बना सकता था। सभी आंदोलनों के मसले अलग-अलग थे। बाल हत्या या विधवा विवाह हिन्दू समाज के दोष थे जिनसे मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं था वैसे ही कुरान की व्याख्या कितनी भी आधुनिक तरीके से क्यों न हो उससे बहुसंख्यक हिन्दुओं का कोई वास्ता नहीं है। कोई भी आंदोलन अपने को धर्म से पूर्णत: विच्छेद करना नहीं चाहता था। यही कारण है कि आंदोलनों में प्राय: आंतरिक द्वन्द्व और अंतर्विरोध व्याप्त रहे। केशवचंद्र सेन बाल विवाह के विरोधी होते हुए अपनी नाबालिग पुत्री का विवाह पूरे वैदिक कर्मकांड के साथ करते हैं वहीं दूसरी तरफ सैयद अहमद आधुनिक विचारों से प्रभावित होते हुए पर्दा प्रथा पर बल देते हैं।
3. यदि आंदोलन धर्मनिरपेक्ष या सच्चे अर्थों में प्रगतिशील होता तो यह मौलिक परिवर्तन एवं अंतत: आधुनिकता ला सकता था।

प्र.5. दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्तों को लिखिए तथा समाजोत्थान में राजा राममोहन राय के योगदान की विवेचना कीजिए।

Write the main concepts of Arya Samaj founed by Dayanand Saraswati and discuss the contributions of Raja Ram Mohan Roy in the upliftment of society.

उत्तर

दयानंद सरस्वती एवं आर्यसमाज
(Dayanand Saraswati and Arya Samaj)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. दयानंद सरस्वती ने वेदों को मूलस्रोत माना। उनके अनुसार समस्त ज्ञान वेदों में निहित है। उन्होंने उत्तर भारत के हिन्दू धर्म के सुधार का बीड़ा उठाया। सत्यार्थ प्रकाश में अपने विचारों की तर्कपूर्ण प्रस्तुति की और 1875 ई० में आर्यसमाज की स्थापना कर 10 सिद्धांतों का निरूपण किया।
   (i) वेद समस्त ज्ञान के स्रोत है।
   (ii) ईश्वर निराकार, अनंत सर्वशक्तिमान है।
   (iii) प्रत्येक व्यक्ति को सदैव सत्य गृहण करने तथा असत्य को त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए।
   (iv) सबसे बड़ा कर्म परोपकार है।
   (v) ज्ञान का प्रसार अज्ञानता को दूर करने के लिए करना चाहिए।
   (vi) अपनी उन्नति के साथ सबकी उन्नति का प्रयास करना चाहिए।
   (vii) शुद्धि हेतु यज्ञों का आयोजन अपेक्षित है।
   (viii) कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास।
   (ix) हिन्दी-संस्कृत भाषा के प्रसार का प्रयत्न।
   (x) बाल-विवाह एवं बहुविवाह का विरोध।

TOUCH n PASS

2. दयानंद सरस्वती ने तमाम् झूठी शिक्षाओं से भरे प्राचीन धर्मग्रंथों और अज्ञानी पुरोहितों जिन्होंने हिन्दू धर्म को भ्रष्ट कर रखा है, के विरोधी थे। उन्होंने बाद के उन सभी धार्मिक विचारों को रद्द कर दिया जो वेदों से मेल नहीं खाते थे। वेदों तथा उसकी अनुउल्लघंनता पर इस तरह की पूर्ण निर्भरता ने उनकी शिक्षाओं को रूढ़िवादी रंग में रंग दिया।
3. फिर भी इस दृष्टिकोण का एक बुद्धिसंगत पक्ष था, वे मानते थे कि प्रत्येक को ईश्वर तक पहुँचने का अधिकार है। इसके अलावा हिन्दू कट्टरपन पर उन्होंने चोट किया। दूसरी तरफ मूर्ति पूजा, कर्मकाण्ड पुरोहितवाद तथा खासकर जातिप्रथा के प्रखर विरोधी थे। उन्होंने इस वास्तविक जगत में रह रहे मनुष्य की समस्याओं पर ध्यान दिया और दूसरी दुनिया में परंपरागत विश्वासों से लोगों का ध्यान हटाया।

आर्यसमाज एवं सामाजिक क्षेत्र (Arya Samaj and Social Arena)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. आर्यसमाज के सदस्यों ने पश्चिमी ढंग से शिक्षा के प्रसार के लिए देशभर में स्कूल कॉलेज का जाल सा बिछा दिया। इस संदर्भ में लाला हंसराज की भूमिका प्रमुख रही तो दूसरी तरफ परंपरावादी शिक्षा के प्रसार के लिए स्वामी श्रद्धानंद ने हरिद्वार के पास गुरुकुल की स्थापना की।
2. आर्यसमाजियों ने स्त्रियों की दशा सुधारने एवं शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष कार्य किया। वे सामाजिक समानता के प्रचारक थे। उन्होंने जनता में स्वावलंब एवं आत्मसम्मान की भावना जगाई तथा इससे राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला।
3. आर्यसमाज का एक मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन से रोकना भी था फलतः इसमें दूसरे धर्मों के खिलाफ एक जेहाद सा छेड़ दिया। यह जेहाद 20वीं सदी में साम्प्रदायिकता के प्रसार में सहायक कारण बना।
4. आर्यसमाज में दुर्भिक्ष, अकाल पीड़ितों को सहायता करने का भी संकल्प लिया। 1899 के दुर्भिक्ष के समय अकाल पीड़ितों को राहत सामग्री प्रदान की गई।
5. जहाँ तक उद्योग धंधों का प्रश्न है स्वामीजी ने देसी उद्योगों के विकास की आवश्यकता पर बल दिया तथा स्थानीय साहूकारों व व्यापारियों को स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण पर बल दिया।
6. कुल मिलाकर आर्यसमाज ने भारतीय जनता के अंदर स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना भरी। अचेतन रूप में उसने अपने कार्यों से भारतीय वर्गों की एकता को भंग तो किया, किन्तु इसके सिद्धांत और उद्देश्य कहीं भी साम्प्रदायिक नहीं थे। स्वामी दयानंद के बारे में कहा गया। कि "वे एक ऐसे भारत का स्वप्न देखते थे जो कुसंस्कार से शुद्ध हो, विज्ञान से पूरा लाभ उठाए, एक ईश्वर की पूजा करें, आत्मा से शुरू हो और उसे दुनिया के राष्ट्रों में उचित स्थान मिलें, उसके प्राचीन गौरव का पुनरूद्धार हो।"

राजा राममोहन राय
(Raja Ram Mohan Roy)

उपलब्धियाँ (Achievements)

बंगाल से शुरू हुए सुधार आंदोलनों का नेतृत्व राजा राममोहन राय ने किया। इसी कारण राजा राममोहन राय को भारत के नवजागरण का अग्रदूत तथा सुधार आंदोलनों का पहला नेता कहा जाता है। राजा राममोहन राय की उपलब्धियाँ विभिन्न क्षेत्रों—धर्म, समाज, राजनीति आदि में देखी जा सकती है।

धार्मिक क्षेत्र में उपलब्धियाँ (Achievements in Religious Arena)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. राजा राममोहन राय ने लगभग सभी धर्मों का अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्म सत्य है लेकिन कर्मकांड उन्हें दूषित कर देते हैं।
2. राजा राममोहन राय की पहली दार्शनिक कृति तुहफत उल मुजाहिदीन 1803-04 ई० में प्रकाशित हुई, जिसमें मूर्ति पूजा का विरोध किया गया तथा 'एकेश्वरवाद' को सब धर्मों का मूल बताया गया।
3. अपने विषद् ज्ञान, वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में राममोहन ने हिन्दू धर्म में उत्पन्न कुरीतियों एवं आडम्बरों पर गंभीर प्रहार किया। उपनिषदों के अनुवाद द्वारा राममोहन ने इस बात पर बल दिया कि अद्वैतवाद हिन्दू धर्म का मूल है।

TOUCH 'n PASS

4. 1815 ई० में राममोहन ने आत्मीय सभा का गठन किया और 1816 में वेदांत सोसायटी की स्थापना की।
5. 1820 में उन्होंने 'प्रीसेप्टस ऑफ जीसम' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने न्यू टेस्टामेंट के नैतिक एवं दार्शनिक संदेश को उसकी चमत्कारिक कहानियों से अलग करने की कोशिश की।
6. 1828 में उन्होंने ब्रह्म सभा की स्थापना की इसका उद्देश्य हिन्दू धर्म में सुधार लाना था।

सामाजिक क्षेत्र में (In Social Arena)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. राजा राममोनह राय ने जिस तरह हिन्दू धर्म को सुधारने का काम किया उसी तरह उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी सुधारों की नींव रखी।
2. उन्होंने जाति प्रथा, सती प्रथा, विधवा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनवाने की रही।
3. वे स्त्रियों के अधिकार के भी समर्थक थे उन्होंने बहुविवाह का विरोध किया और औरतों को आर्थिक अधिकार देने का समर्थन दिया।

शिक्षा क्षेत्र में (In Education)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. राजा राममोहन राय आधुनिक शिक्षा के समर्थक एवं प्रचारक थे। उनके विचार से भारत में आधुनिक विचारों के प्रसार के लिए आधुनिक शिक्षा आवश्यक थी इसलिए उन्होंने अंग्रेजी का भरपूर समर्थन किया। इसी क्रम में उन्होंने कलकत्ता में 1817 में डेविड हेयर के सहयोग से हिन्दू कॉलेज की स्थापना कराई।
2. अंग्रेजी शिक्षा के साथ-साथ स्थानीय भाषा के विकास को भी प्रोत्साहित किया। बांग्ला भाषा एवं साहित्य के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने स्वयं एक बांग्ला व्याकरण का संकलन किया। उनके लेखन से बंगाल में एक सुन्दर गद्य शैली का जन्म हुआ।

पत्रकारिता में (In Journalism)

राजा राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता के भी अग्रदूत थे। उन्होंने स्वयं बंगाली पत्रिका 'संवाद कौमुदी' का प्रकाशन किया। 1822 में 'मिरातुल अखबार (फारसी)' का प्रकाशन किया। 1829 में हिन्दी में 'बंगदूत' नामक समाचार पत्र निकाला। 1833 में उन्होंने समाचार पत्रों के प्रतिबंध के विरुद्ध प्रबल आंदोलन किया। 1835 में समाचार पत्रों को जो कुछ स्वतंत्रता मिली वह राजा जी द्वारा चलाए गए आंदोलन का परिणाम थी।

राजनीतिक क्षेत्र में (In Political Arena)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. वे उदारवादी विचारों के पोषक थे। अत: उन्होंने आमूल परिवर्तन की जगह भारतीय प्रशासन सुधार के लिए आंदोलन किया। ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय मामलों पर परामर्श किए जाने वाले वे प्रथम भारतीय थे।
2. बंगाली जमींदारों द्वारा कृषकों के शोषण की आलोचना की। उन्होंने भेदभावपूर्ण आयात-निर्यात नीति का विरोध किया।
3. उन्होंने वरिष्ठ सेवाओं के भारतीयकरण, ज्यूरी द्वारा न्याय और भारतीय तथा यूरोपियनों के बीच न्यायिक समानता की भी माँग की।
4. उन्होंने अपने देशवासियों में राजनीतिक जागरण पैदा करने का भी प्रयास किया।

अंतर्राष्ट्रीयता (Internationalism)

वे अन्तर्राष्ट्रीयता एवं विभिन्न राष्ट्रों के सहयोग के समर्थक थे। अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में गहरी दिलचस्पी ली और जगह-जगह उन्होंने स्वतंत्रता, जनतंत्र और राष्ट्रीयता के आंदोलन का समर्थन किया। 1821 में नेपल्स में क्रांति की विफलता की खबर से बहुत दुखी हुए थे। 1823 में जब स्पेनिश अमेरिका में क्रांति सफल हुई तो इस खुशी को उन्होंने सार्वजनिक भोज देकर मनाया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. अलीगढ़ आंदोलन एवं सैयद अहमद खाँ और मौहम्मद इकबाल का आधुनिक भारत में मुसलमानों तथा हिन्दुओं के दार्शनिक धार्मिक दृष्टिकोण पर क्या प्रभाव पड़ा। विवेचना कीजिए।

Discuss the impact of Aligarh Movement, Syed Ahmed Khan and Mohammad Iqbal on the philosophical religious outlook of the Muslims and Hindus of Modern India.

उत्तर

अलीगढ़ आंदोलन एवं सैयद अहमद खाँ
(Aligarh Movement and Syed Ahmad Khan)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. मुसलमानों में धार्मिक सुधार आंदोलन का प्रारंभ कुछ देर से हुआ। उच्च वर्गों के मुसलमानों ने पश्चिमी शिक्षा एवं संस्कृति के सम्पर्क से बचने का प्रयास किया। 1857 के विद्रोह के बाद धार्मिक सुधार के आधुनिक विचार उभरने शुरू हुए। इस दिशा में आरंभ 1863 में कलकत्ता में स्थापित मोहम्मडन लिटरेटरी सोसाइटी (Mohammedan Literary Society) ने किया। इसने आधुनिक विचारों के प्रकाश में धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक प्रश्नों पर विचार–विमर्श को बढ़ावा दिया और पश्चिमी शिक्षा अपनाने के लिए उच्च तथा मध्य वर्गों के मुसलमानों को प्रेरित किया।
2. मुसलमानों में सबसे प्रमुख सुधारक सैयद अहमद खाँ (1817-98) आधुनिक विचारों से प्रभावित थे। वे जीवन भर ईस्लाम के साथ आधुनिकीकरण का तालमेल का प्रयास करते रहे। सैयद अहमद खाँ ने कुरान की व्याख्या समकालीन बुद्धिवाद एवं विज्ञान की रोशनी में की। उनके अनुसार कुरान की कोई भी व्याख्या अगर मानव बुद्धि या विज्ञान से टकरा रही है, तो वास्तव में वह गलत व्याख्या है। उन्होंने कहा कि धर्म के तत्त्व भी अपरिवर्तनीय नहीं है। धर्म अगर समय के साथ नहीं चलता है तो वह जड़ हो जाएगा।
3. सैयद अहमद जीवन पर परंपरा के आधुनिकीकरण, रिवाजों पर भरोसा, अज्ञान तथा अबुद्धिवाद के विरुद्ध संघर्ष करते रहे उन्होंने लोगों से आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा विचार की स्वतन्त्रता अपनाने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि "जब तक विचार की स्वतन्त्रता विकसित नहीं होती सभ्य जीवन संभव नहीं है। उन्होंने कट्टरपंथ, संकुचित दृष्टि तथा अलग–अलग रहने के खिलाफ भी चेतावनी दी। छात्रों एवं अन्य लोगों से खुलेदिल वाला तथा सहिष्णु बनने का आग्रह किया।

   उन्होंने कहा कि बंद दिमाग सामाजिक बौद्धिक पिछड़ेपन की निशानी है। उन्होंने विश्वभर के अमर साहित्य की प्रशंसा करते हुए कहा, इससे छात्र उस मानसिकता को समझ सकेगा, जिसके सहारे महान व्यक्ति महान प्रश्नों पर विचार करते हैं, उसे पता चलेगा कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं और यह व्यक्तिगत मत का पर्याय नहीं होता और यह कि दुनिया उसके अपने पंथ समाज या वर्ग से कहीं अधिक व्यापक है।"
4. सैयद अहमद खाँ का विश्वास था कि मुसलमानों का धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को अपनाकर ही सुधार सकता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा का प्रसार उन्होंने जीवन पर्यन्त किया। अनेक नगरों में विद्यालय स्थापित किये। पश्चिमी ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद कराया और 1875 में अलीगढ़ में मोहम्मड़न एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की जो आगे चलकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से जाना गया।
5. सैयद अहमद खाँ धार्मिक सहिष्णुता के पक्के समर्थक थे उनका विश्वास था कि सभी धर्मों में एक बुनियादी एकता मौजूद है। वे मानते थे कि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है। इसलिए वैयक्तिक संबंधों में वे धार्मिक कट्टरता की निंदा करते थे। वे सांप्रदायिकता टकराव के भी विरोधी थे। हिन्दुओं और मुसलमानों से एकता का आग्रह करते हुए उन्होंने 1883 में कहा, "हम दोनों भारत की हवा में साँस लेते हैं और गंगा जमुना का पवित्र जल पीते हैं, हम दोनों भारत की धरती का अनाज खाकर जीवित रहते हैं, जीवन और मृत्यु दोनों में हम एक साथ हैं। भारत में हमारे निवास ने हम दोनों का खून बदल डाला है। हमारे शरीरों के रंग एक हो चुके हैं हमारे हुलिया समान हो चुके हैं, एक दूसरे के रीति रिवाजों को अपना लिया है। हम इस कदर एक हो चुके हैं कि हमने एक नई भाषा उर्दू को विकसित किया है जो न हमारी भाषा है न हिन्दुओं की इसलिए हम अपने जीवन के उन पक्षों को छोड़ दे जो ईश्वर से संबंधित है। नि:सन्देह इस आधार पर भी हम दोनों एक ही देश में रहते हैं। हमारा एक राष्ट्र एवं देश है। हम दोनों की प्रगति और कल्याण हमारी एकता पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है।"

TOUCH 'n PASS

6. अलीगढ़ कॉलेज चाहे मुस्लिम सुधार के लिए खुला हो, किन्तु इसके दरवाजे सभी भारतीयों के लिए खुले थे। इतना ही नहीं इनके अध्यापकों में भी गैर मुस्लिम शामिल थे और एक तो संस्कृत का प्रोफेसर था। इतना ही नहीं कॉलेज के कोष में हिन्दू, पारसियों एवं ईसाइयों ने भी खुलकर दान दिया था।

सैयद अहमद खान में स्वरूपगत परिवर्तन (Formal Change in Syed Ahmad Khan)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. सैयद अहमद अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मुसलमानों को उभरते राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने से रोकने के लिए बात की। इस क्रम में उन्होंने हिन्दुओं के वर्चस्व की शिकायत की फिर भी वे बुनियादी तौर पर सांप्रदायिक नहीं थे।
2. सैयद अहमद केवल यह चाहते थे कि मध्य तथा उच्च वर्गों के मुसलमानों का पिछड़ापन समाप्त हो। सैयद अहमद की राजनीति इस दृढ़ विश्वास की उपज थी कि ब्रिटिश सरकार को आसानी से नहीं हटाया जा सकता है और इसलिए तात्कालिक राजनीतिक प्रगति संभव नहीं है। दूसरी तरफ अधिकारियों की जरा सी भी शत्रुता शिक्षा प्रसार के प्रयास के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। जबकि सैयद अहमद इस शिक्षा प्रसार को वक्त की जरूरत समझते थे। उनका विश्वास था कि जब भारतीय भी विचार कर्म से अंग्रेजों जितने भारतीय बन जाएँगे तभी वे सफलता के साथ ब्रिटिश शासन को ललकार सकेंगे। इसलिए उन्होंने सभी भारतीयों विशेषकर शैक्षिक रूप से पिछड़े मुसलमानों को सलाह दी कि वे कुछ समय तक राजनीति से दूर रहे। इसी संदर्भ में उन्होंने कांग्रेस का स्वागत नहीं किया।
3. सैयद अहमद ने सामाजिक सुधार के कार्य में उत्साह दिखाया। उन्होंने मुसलमानों से मध्यकालीन रीति रिवाज, विचार व कर्म पद्धतियों को छोड़ देने का आग्रह किया। उन्होंने बहुविवाह प्रथा तथा मामूली विवाद पर तलाक की बात की भी निंदा की। स्त्री शिक्षा का भी समर्थन किया। वास्तव में वे अपने कॉलेज तथा शिक्षा प्रसार के उद्देश्य के प्रति इस तरह समर्पित हो चुके थे कि इसके लिए अन्य सभी हितों का बलिदान करने को तैयार थे। परिणामस्वरूप रूढ़िवादी मुसलमानों को कॉलेज का विरोध करने से रोकने के लिए उन्होंने धार्मिक सुधार के आंदोलन को भी लगभग त्याग दिया था। इसी कारण वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जिससे सरकार रुष्ट होती। इसी क्रम में कहीं-न-कहीं साम्प्रदायिकता और अलगाववाद को प्रोत्साहन मिला। निश्चय ही यह एक गंभीर राजनीतिक त्रुटि थी जिसके आगे चलकर हानिकारक परिणाम निकले। फिर उनके कुछ अनुयायी उनकी तरह खुले दिमाग वाले नहीं रहे बल्कि यूँ कहें कि उनके मूल लक्ष्य को समझने वाले नहीं रहे। फलतः इस्लाम का महिमा मण्डन करने लगे और दूसरे धर्म की आलोचना करने लगे। इस तरह साध्य को भुलाकर साधन को ही प्रमुख मानकर कार्य किया गया जिससे साम्प्रदायिकता की समस्या सामने आयी।
4. सैयद अहमद खान की सहायता जो लोग कर रहे थे उन्हें सामूहिक रूप से अलीगढ़ समूह कहा जाता हैं इसमें चिराग अली, नजीर अहमद मौलाना शिवली नुमनी, उर्दू शायर अल्ताऊ हुसैन हाली आदि प्रमुख थे।

मोहम्मद इकबाल (1873-1938 ई०)
[Mohammad Iqbal (1873-1938)]

इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. आधुनिक भारत के महानतम कवियों में एक मोहम्मद इकबाल ने अपनी कविता द्वारा नौजवान मुसलमानों तथा हिन्दुओं के दार्शनिक धार्मिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव डाला।
2. इकबाल का जन्म 1873 में सियालकोट में हुआ था उनकी शिक्षा आरंभ में अरबी, फारसी और फिर अंग्रेजी भाषा में हुई। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय और फिर आगे चलकर लंदन विश्वविद्यालय में वकालत की डिग्री हासिल की। वह असाधारण बौद्धिक गुणों से सम्पन्न थे। उनकी अंतरात्मा में इस्लाम के लिए सर्वाधिक लगाव, उसकी महत्ता के लिए गर्व और वर्तमान दुर्दशा के लिए आंतरिक पीड़ा दहकती रहती थी। उनकी रुचि मुख्यतः धर्मदर्शन साहित्य में थी। ज्ञान के शोध के क्रम में वह कैम्ब्रिज और म्यूनिख गए। म्यूनिख में उन्होंने 'ईरान में तत्वमीमांसा का विकास' विषय पर शोध प्रस्तुत किया तथा जर्मन भाषा सीखी। आगे ब्रिटिश विद्वानों के सम्पर्क में रहे और इसी क्रम में उन्हें 'सर' की उपाधि मिली।
3. यूरोप में रहते हुए उन्होंने ब्रिटेन फ्रांस जैसे तृप्त, इटली जर्मनी जैसे अतृप्त राष्ट्रों की स्थिति को देखा जो बाजारों के विस्तार अपने प्रभावों के प्रसार और पोषण के मौके खोजने के लिए प्रतिस्पर्धारत थे। यह वीभत्स नृत्य यूरोपीय राजनेताओं को रोमांचित करता था। किन्तु मुस्लिम राज्यों में घबराहट और कंपकपी पैदा करता था। इस साम्राज्यवादी शैतानियत और

राष्ट्रवादी पशुता दोनों के विरुद्ध इकबाल की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्हें लगा कि जैसे पाश्चात्य मनुष्य ने एक धार्मिक मानस और मानवताप्रेमी आदर्श को पूर्णतया तिलांजलि दे दी है। यहीं से वे राष्ट्रवाद के विरुद्ध भी दिखाई पड़ने लगे।

4. बंग भंग आंदोलन के सदर्भ में उन्होंने जो कुछ सुना उससे उन्हें धक्का लगा। 1905 का बंग भंग भारतीयों को आपस में भिड़ा देने के लिए किया गया था। बंग भंग के विरुद्ध प्रबल आंदोलन जो शुरू हुआ वह हिन्दुओं द्वारा संचालित हो रहा था। मुसलमान इस आंदोलन से प्राय: नाराज हो गए। क्योंकि वे बंग-भंग को अपने लिए हितकारी मानते थे। इस तरह दोनों के संबंध कटु हो गये। इकबाल जो यूरोपियन द्वारा मुसलमानों के साथ किये जाने वाले व्यवहार से बहुत दु:खी थे। हिन्दुओं के इस रूप से भी नाराज हो गए। अत: हिन्दोस्ता हमारा गीत लिखने वाले इकबाल मोहभंग की स्थिति में आ गए। बंग-भंग ने उनके मन से भारत को निकालकर ईस्लाम को प्रतिष्ठित कर दिया।
5. 1927 में इकबाल ने राजनीति में कूदने का फैसला किया जिन दो बौद्धिक शक्तियों ने इकबाल के मानस को ढाला था उनमें से एक कुरान और दूसरा पाश्चात्य दर्शन विज्ञान था। इकबाल ने पाश्चात्य दर्शन का व्यापक अध्ययन किया था। वह प्लेटो को इस्लाम विरोधी मानते थे क्योंकि उनके विचारों ने मुस्लिम चिंतकों को प्रभावित करके इस्लाम को हानि पहुँचायी। इकबाल ने अपनी वैचारिक संरचना का निर्माण कुरान के आधार पर किया था। वस्तुत: इकबाल का संदेश था कि व्यक्ति को याद दिलाना कि इस विश्व की योजना में उसका कितना दर्जा है और यदि उसमें इच्छा शक्ति, संकल्प की दृढ़ता हो तो वह महान हो सकता है।
6. इकबाल ने अपने चिंतन में यह स्पष्ट किया कि कुरान के आधार पर विकास किया जा सकता है। इस तरह इकबाल को उदारतावादी या रूढ़िवादी श्रेणी में रखना कठिन है। हाँ वह पुनरूत्थानवादी थे उनका विश्वास था कि हजरत द्वारा शामिल इस्लाम में आधुनिक उदारतावादी सभी मूल्य समाहित हैं। और इतना ही नहीं ये इस्लामी मूल्य पाश्चात्य मूल्यों की अपेक्षा कहीं अधिक सक्षम और मौलिक हैं।
7. 1927 में वह पंजाब विधानसभा के सदस्य चुने गए 1930 में मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेश की अध्यक्षता की। जहाँ उन्होंने साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के रूप में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में मुस्लिम स्वायतक्षेत्र की अपनी योजना प्रस्तुत की। 1931-32 में लंदन में आयोजित दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। 1938 में इनकी मृत्यु हो गयी।
8. इकबाल ने राजनीति को तीन प्रकार से प्रभावित किया एक तो उन्होंने भावना को बहुत प्रोत्साहित किया और उसी अनुपात में तर्क वितर्क को खारिज कर दिया दूसरे, इकबाल ने इस्लाम और इस्लामी सभ्यता की अद्वितीयता पर इतना अधिक बल दिया कि अन्य सम्प्रदायों से राजनैतिक समझौते करना असंभव हो गया। उनके अन्य वैचारिक तत्त्वों जैसे भौतिक तत्त्व, अर्थव्यवस्था की अपेक्षा करके केवल धर्म पर निर्भर रहने से धार्मिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला।

कार्य-विश्लेषण (Work-Review)

स्वामी विवेकानंद की तरह उन्होंने भी निरंतर परिवर्तन एवं अबाध कर्म पर बल दिया। वैराग्य एकांतवास की निंदा की और एक गतिमान दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया जो दुनिया को बदलने में सहायक हो। वे मूलत: एक मानवतावादी थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य को प्रकृति या सत्ताधीशों के अधीन नहीं होना चाहिए। बल्कि निरंतर कर्म द्वारा इस विश्व को नियंत्रित करना चाहिए। उनके विचार से, स्थिति को निष्क्रिय रूप से स्वीकार करने से बड़ा कोई पाप नहीं है। अपनी आरंभिक कविता में उन्होंने देशभक्ति के गीत गाए। किन्तु बाद में मुस्लिम अलगाववाद का समर्थन किया।

प्र.7. नए राजस्व बन्दोबस्त के परिणामों की विवेचना कीजिए।

Discuss the consequences of new revenue settlement.

उत्तर

राजस्व बन्दोबस्त के परिणाम
(Consequences of Revenue Settlement)

अंग्रेजों ने सरकार के राजस्व में इजाफे के इरादे से जमींदारी, रैय्यतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्थाएँ लागू की थीं। इनमें किसान और शासक के बीच सदियों पुराने रिश्ते को खत्म करके राजस्व बन्दोबस्त की पुरानी व्यवस्था, जिसमें जमींदार किसानों का सर्वस्व था, त्याग दी गई। पुरानी व्यवस्था की जगह एक नई व्यवस्था कायम की गई, जिसमें नए जमींदार उभरे जिनके लिए सत्ता

TOUCH 'n PASS

के हित सर्वोपरि थे। जमींदार जमीन के मालिक बन गए और कृषि कार्य केवल काश्तकारी (लगान देकर जमीन कमाना) बनकर रह गया। महालवाड़ी तथा रैय्यतवाड़ी के तहत, हालाँकि रैय्यत जमीन के मालिक बने, लेकिन जमीन पर उनका हक संदेहास्पद था। स्थाई बन्दोबस्त के तहत जमींदार 12 वर्ष से ज्यादा के लिए अपनी जमीन पट्टे पर नहीं दे सकते थे, लेकिन कई जमींदारों ने अपनी जमीन पट्टे पर दे दी। तथापि, यह प्रतिबन्ध 1812 में समाप्त कर दिया गया, और पट्टा अनुबंध पर जमीन देने की कोई सीमा नहीं रही। खेतों के टुकड़ों-टुकड़ों में बंटने से जमींदारों की आर्थिक सम्पत्ति में वृद्धि हुई। जमींदारों ने अपने काश्तकारों की कमजोर माली हालत को देखकर उन्हें **तकावी** कर्जे दिए, लेकिन नए शोषणकारी लगान के दबाव में वे इस प्रथा को जारी नहीं रख सके। इसने एक नए वर्ग यानि साहूकारों या महाजनों को जन्म दिया और गरीब तथा भूखे किसान इनके शिकार बने। स्वदेशी लोग जीवनयापन के लिए खेती पर निर्भर होने लगे। कृषक समाज के पुराने औजारों और उपकरणों से सरकार तेजी से प्रगति करते कृषक भारत का सपना तो देख रहे थे पर कृषि को बेहतर बनाने के लिए अपनी तरफ से कोई प्रयास नहीं कर रहे थे।

अंग्रेजों की लगान नीतियों का आर्थिक और सामाजिक प्रभाव
(Economic and Social Impact of Revenue Policies of the British)

19वीं सदी में लगान की ऊँची दरों के चलते गरीबी बढ़ी और खेती-बाड़ी में गिरावट आई, इससे किसान तबाह हो गए। किसान, महाजनों, व्यापारियों, धनी किसानों और अन्य समृद्ध वर्गों के शिकंजे में फंस गए। बढ़ते बाजारीकरण से महाजनों और व्यापारियों को खेतिहर समुदाय के शोषण का मौका मिला। किसान को फसल कटाई के तुरन्त बाद अपनी फसल बेचनी पड़ती थी ताकि वो सरकार और जमींदारों तथा महाजनों को लगान और कर्ज चुका सकें। इनके अलावा, खेती पर बढ़ते आबादी के दबाव से किसानों की हालत खराब हो गई।

किसानों की कर्जदारी में वृद्धि (Growth in Indebtedness of Farmers)

उपरोक्त कारणों से अंग्रेजों के शासन में भारतीय किसान कर्ज के बोझ तले दबता चला गया। 1880 के बाद, ग्रामीण ऋणग्रस्तता गुणोत्तर दर से बढ़ी जो चौंकाने वाली थी। हालाँकि, किसानों की कर्जदारी कोई ऐसी नई घटना नहीं थी जो अंग्रेजों के शासन में घटित हो रही थी। लेकिन ब्रिटिशों का राजनीतिक वर्चस्व स्थापित होने के बाद, इस कर्जदारी को एक नया आयाम मिला। नई परिस्थितियों के चलते अंग्रेजों ने भारी कराधान के रूप में किसानों पर नए-नए कर लगाए। ये वसूलियाँ ग्रामीण भारत की ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण बनी। महाजन, अंग्रेजों द्वारा शोषण का मुख्य औजार बने, इन्होंने कानूनी तंत्र द्वारा लागू अनुबंधों के आधार पर किसानों को कर्ज दिया। यदि किसान अपना कर्ज नहीं चुका पाते थे तो उनकी सम्पत्ति कुर्क कर ली जाती थी। ग्रामीण कर्जदारी बढ़ने का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण कृषक समुदाय में व्याप्त आम गरीब और धनवान लोगों पर इनकी निर्भरता थी। किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता की वजह से रैय्यतवाड़ी वाले क्षेत्रों में किसानों की जमीन बड़े पैमाने पर महाजनों के पास चली गई और जमींदारी वाले क्षेत्रों में काश्तकारों को भारी संख्या में उनके खेतों से बेदखल किया गया। अलग-अलग प्रान्तों में ब्याज की दरें अलग-अलग थीं। ये ब्याज दरें 12 प्रतिशत से लेकर 200 या 300 प्रतिशत तक थीं। इसके चलते गाँव के लोग साहूकार/महाजन या कर्जदाता को नफरत की नजर से देखते थे और ये तबका गाँव में बदनाम था। दुर्जन स्वाभाव की वजह से इन साहूकारों को सम-सामयिक साहित्य, नाटकों और ऐसे ही कथानकों में खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नए आर्थिक माहौल से गरीबी की हालात में आए किसान अपने कर्जे के बदले महाजनों को अपनी जमीन देने लगे और इस तरह उनकी ज्यादा-से ज्यादा जमीन महाजनों के कब्जे में चली गयी। ऋणग्रस्तता से ग्रामीणों की स्थिति दयनीय हो चुकी थी। हालात देखते हुए सर हैमिल्टन ने लिखा कि ऐसा प्रतीत होता है कि पूरा देश महाजनों के शिकंजे में है। वहीं दूसरी तरफ, कानूनी लड़ाई इतनी खर्चीली थी कि गरीब किसान धनवान महाजनों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। महाजन वकीलों की सहायता से लम्बे समय तक कानूनी लड़ाई लड़ सकते थे लेकिन गरीब किसान वकीलों की भारी भरकम फीस चुकाने में असमर्थ थे।

भारतीय कृषि का बाजारीकरण (Commodification of Indian Agriculture)

19वीं सदी के मध्य में कृषि बाजारीकरण की नीति शुरू होने के बाद भारतीय कृषि में एक नया रूझान देखने को मिला। एक निर्धारित धनराशि लगान के रूप में अदा करने की व्यवस्था तथा गाँव और खेत के रिश्ते को नए रूप में परिभाषित किए जाने की वजह से यह नया रूझान नजर आया। पहले ग्रामीण खेती का मतलब गाँव के लिए फसल उत्पादन था। लेकिन अब बिक्री के इरादे से फसल और उत्पादन तय किया जाने लगा और उपज बाजार से जुड़ गई। 1833 के आस-पास, विदेशी बाजार में निर्यात के

TOUCH 'n PASS

इरादे से बंगाल में जूट की खेती शुरू की गई। कुछ समय बाद कपास का निर्यात भी शुरू कर दिया गया। लेकिन, 1850 तक इन वस्तुओं का व्यापार काफी सीमित था।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत किसान मुख्यतया बाजार के लिए फसल उगाते थे ब्रिटिश शासन में ढुलाई के साधनों में सुधार होने और किसानों को कारोबारी पूँजी मिलने से बाजारी फसलों का उत्पादन बढ़ने लगा। किसानों को सरकार को भारीभरकम लगान चुकान होता था और इसके लिए उन्हें नकदी की जरूरत थी, इसलिए ऐसी उपजों की ओर उनका रूझान बढ़ा और भारतीय कृषि का बाजारीकरण होने लगा। किसान कुछ खास फसलें उगाने लगे। कपास, जूट, गेहूँ, गन्ना, तिलहन, नील, अफीम आदि जैसी एकल कृषि फसलों की खेती के लिए ही गाँवों की जमीन का उपयोग होने लगा। अंग्रजों ने कपास की जननी कहे जाने वाले देश को इंग्लैण्ड में बने सूती कपड़े से लाद दिया। भारतीय किसान अब भारतीय और विश्व बाजार के लिए उत्पादन करने लगे थे। इस तरह वे अस्थिर बाजार के उतार-चढ़ावों के अधीन आ गए। उन्हें, नई तकनीकों से भारी मात्रा में उत्पादन करने वाले अमेरिका, यूरोप और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों से मुकाबला करना था। वहीं दूसरी तरफ, भारतीय किसान, अपने छोटे-छोटे खेतों में परिवार के सदस्यों के सहयोग से बैलों से खेती करते थे। इन उत्पादों से होने वाली आय लगान चुकाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होती थी। इसके अलावा, बाजारीकरण के चलते खेतिहर किसान व्यापारियों को अपने उत्पादों की बिक्री पर निर्भर हो गए और ये व्यापारी बिचौलियों के रूप में किसानों का शोषण करते थे। ये व्यापारी अपनी समृद्ध माली हालत से किसानों की मजबूरी का पूरा लाभ उठाते थे।

इन नए हालातों से ग्रामीण समाज भयंकर गरीबी से ग्रस्त हो गए और इनका दिवाला निकल गया। ज्यादातर भारतीयों के पास सामान्य जीवन जीने के लिए भी साधन नहीं थे और बार-बार पड़ने वाले सूखे और बाढ़ में काल का निवाला बन गए। विलियम डिगबी के अनुमानों के अनुसार, 1864 से 1901 के बीच भारत में 24 बार अकाल पड़ा, जिनमें 29 मिलियन (दो करोड़ नब्बे लाख) भारतीयों की मौत हुई। 20वीं शताब्दी में भी हालात में कोई खास सुधार नहीं हुआ। आजादी से कुछ साल पहले 1943 में बंगाल में भयंकर सूखा पड़ा जिसमें 30 लाख लोगों की जान गई। ये भयंकर सूखे बताते हैं कि गरीबी, मुखमरी, कुपोषण और नवजात शिशुओं की मृत्युदर सारी हदें पार कर चुकी थी। भारत में पड़ने वाले सूखों की सबसे खराब खासियत यह थी कि लोग सूखा, बाढ़ फसल खराब होने और अनाज उपलब्ध न होने के कारण नहीं मरते थे, बल्कि लोगों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा न होने के कारण मरते थे।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-V

सत्ता का हस्तान्तरण
Transfer of Power

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. बंगाल विभाजन का क्या उद्देश्य था?

What were the consequences of the partition of Bengal?

उत्तर बंगाल-विभाजन का उद्देश्य बढ़ती हुई राष्ट्रीयता को रोकना था। किन्तु वास्तविक उद्देश्य हिन्दुओं एवं मुसलमानों में फूट डालकर राष्ट्रीय आन्दोलन की भावना को कमजोर बनाना था।

प्र.2. बंगाल का विभाजन क्यों हुआ?

Why was Bengal partitioned?

उत्तर राष्ट्रवादियों ने विभाजन को भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक चुनौती के रूप में देखा। यह बंगाल को धार्मिक आधार पर विभाजित करने का एक सोचा समझा प्रयास था, जिसमें पूर्वी भाग मुस्लिम बहुमत और पश्चिमी भाग हिन्दु बहुमत के लिए था।

प्र.3. बंगाल का विभाजन तथा एकीकरण कब हुआ?

Explain the partition of Bengal and its unification.

उत्तर बंगाल के विभाजन की घोषणा तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन ने 19 जुलाई, 1905 को की थी, 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया। राजनीतिक विरोध के बाद 12 दिसम्बर, 1911 को बंगाल का पुन: एकीकरण कर दिया गया।

प्र.4. भारत का प्रथम वायसराय कौन था?

Who was the first Viceroy of India?

उत्तर लॉर्ड विलियम बैंटिक 1828-1835 तक भारत का पहला गवर्नर-जनरल था। 1858 के भारत सरकार अधिनियम ने भारत के गवर्नर-जनरल के पदनाम को भारत के वायसराय में बदल दिया। इस प्रकार लॉर्ड कैनिंग 1858-1862 तक भारत का पहला वायसराय बना।

प्र.5. बंगाल विभाजन से आप क्या समझते हो?

What do you understand by partition of Bengal.

उत्तर बंगाल विभाजन के निर्णय की घोषणा 19 जुलाई, 1905 को भारत के तत्कालीन वायसराय कर्जन के द्वारा की गई थी। एक मुस्लिम बहुल प्रान्त का सृजन करने के उद्देश्य से ही भारत के बंगाल को दो भागों में बाँट दिए जाने का निर्णय लिया गया था। बंगाल-विभाजन 16 अक्टूबर, 1905 से प्रभावी हुआ। इतिहास में इसे बंगभंग के नाम से भी जाना जाता है।

प्र.6. लॉर्ड लिटन की प्रशासनिक नीतियों का भारतीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा?

What were the effects of the administrative policies of Lord Lytton on Indian politics?

उत्तर लॉर्ड लिटन का शासनकाल आन्तरिक एवं वैदेशिक क्षेत्रों में उपलब्धि के दृष्टिकोण से परिणामरहित था। आन्तरिक दृष्टि से उसने भारतीयों के प्रति जो नीति अपनायी उससे भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न हुआ। यद्यपि उसने राष्ट्रीय भावना की प्रगति में सहायता पहुँचायी थी। विदेश नीति की दृष्टि से उसकी अफगान नीति पूर्णत: निरर्थक सिद्ध हुई।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. लॉर्ड लिटन के सुधार क्या हैं?

What were the reforms of Lord Lytton?

उत्तर लॉर्ड लिटन ने 1878 में शस्त्र अधिनियम पारित किया जिसके द्वारा भारतीयों को हथियार रखने, बेचने या खरीदने के लिए लाइसेंस लेने के लिए कहा गया। उन्होंने वफादार भारतीयों को नौकरी प्रदान करने और सामान्य रूप से अनुबंधित सेवाओं के लिए प्रतिस्पर्धा करने के लिए भारतीयों की भावना को कम करने के लिए भारत में वैधानिक सिविल सेवा की शुरुआत की।

प्र.8. लॉर्ड रिपन की उदारवादी नीति क्या है?

What were the liberal policies of Lord Ripon?

उत्तर लॉर्ड रिपन उदार विचारों वाला सुधारवादी वायसराय था। वह भारतीयों का हितचिन्तक था तथा उसका विचार था कि ब्रिटिश सरकार का भी ध्येय भारतीय प्रजा के कष्ट का निवारण करना होना चाहिए। भारत की आय से इंग्लैण्ड को लाभ पहुँचाना वह अनुचित समझता था।

प्र.9. लॉर्ड लिटन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमान बनाया। कैसे?

Lord Lytton gave speed to National Movement. How?

उत्तर देशी भाषा समाचार-पत्र अधिनियम वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878 ई० में लॉर्ड लिटन के द्वारा लाया गया। देशी समाचार-पत्रों ने खुलकर साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध राष्ट्रवादी भावना को उत्पन्न किया।

प्र.10. बंगाल विभाजन का राष्ट्रीय आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ा?

What was the effect of Partition of Bengal on National movement?

उत्तर 16 अक्टूबर, 1905 ई० में बंगाल का विभाजन जब सरकारी रूप में मनाया गया तो राष्ट्रीय नेताओं ने सशक्त शब्दों में इसका विरोध किया। बंगाल विरोधी आन्दोलन ने शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त स्वदेशी उद्योगों की स्थापना के भी प्रयत्न किए, जिससे व्यापारिक जनता तथा श्रमिकों में भी राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

प्र.11. बंगाल विभाजन के बाद कौन-से प्रान्त बने?

Which provinces were created after the partition of Bengal?

उत्तर 1905 विभाजन के बाद पश्चिमी बंगाल प्रान्त—कर्जन ने ओडिशा, बिहार, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों को बंगाल के बचे हुए पश्चिमी जिलों के साथ मिलाकर पश्चिमी प्रान्त का निर्माण किया।

प्र.12. बंगाल विभाजन का प्रस्ताव कब रखा गया?

When was it proposed to partition Bengal?

उत्तर लॉर्ड कर्जन ने फरवरी, 1905 में बंगाल विभाजन का प्रस्ताव लंदन भेजा था। भारत के सचिव सेंट जॉन ब्रॉड्रिच ने जून के महीने में इस प्रस्ताव को मंजूरी दी थी। भारत सरकार ने 19 जुलाई, 1905 को एक प्रस्ताव में उनके अन्तिम निर्णय की घोषणा की और सितंबर के महीने में नए प्रान्त के गठन की घोषणा जारी की गई।

प्र.13. लॉर्ड रिपन के दो सुधार क्या थे?

Which were the two reforms of Lord Ripon?

उत्तर लॉर्ड रिपन ने भारतीयों को शिक्षा देने के लिए भी प्रयास किए तथा हण्टर कमीशन की सिफारिशों को लागू करवाया। सहकारी तथा सरकारी पाठशालाओं को प्रोत्साहित किया गया। शुल्क मुक्ति के नियम भी बनाए गए तथा निर्धनों को शुल्क मुक्ति प्रदान की गई। उच्च शिक्षा संस्थाओं का भी प्रबन्ध भारतीयों को दिया गया।

प्र.14. लॉर्ड रिपन का कार्यकाल कब से कब तक था?

What was the tenure of Lord Ripon?

उत्तर 1880 से 1884 तक लॉर्ड रिपन (Lord Ripon) ने भारतीय वायसराय के रूप में कार्य किया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.15. लॉर्ड कर्जन ने शासन की कौन-सी नीति अपनाई थी?

Which administrative policy was adopted by Lord Ripon?

उत्तर लॉर्ड कर्जन ने 1905 में "फूट डालो और शासन करो" की नीति का अनुसरण करते हुए बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया। उसने बंगाल की जनता की एकता को आघात पहुँचाने और वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों में सदैव के लिए फूट डालने के उद्देश्य से विभाजन का कुटिल षड्यंत्र रचा था, जिससे बंगाल में विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई।

प्र.16. लॉर्ड रिपन को स्थानीय स्वशासन का जनक क्यों कहा जाता है?

Why is Lord Ripon known as the father of Self-Governance?

उत्तर लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है। उन्होंने 1882 में स्थानीय स्वशासन की स्थापना करके पहली बार भारतीयों को स्वतंत्रता से अवगत किया था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लॉर्ड कर्जन की विदेशी नीतियों का उल्लेख कीजिए।

Mention the foreign policies of Lord Ripon.

उत्तर

लॉर्ड कर्जन की विदेश नीति
(Foreign Policy of Lord Ripon)

लॉर्ड कर्जन की विदेश नीति का उल्लेख निम्न प्रकार है—

1. **फारस की खाड़ी**—अंग्रेज चाहते थे कि इस क्षेत्र में कोई अन्य शक्ति अपना प्रभाव न बढ़ा सके। कर्जन ने एडमिरल डगलस के अधीन एक अंग्रेज युद्धपोत देकर कर्नल मीड को ओमान भेजा और धमकी देकर फ्रांसीसियों को दी गई रियासतें वापिस करवाई। इसी प्रकार, रूस, जर्मनी और तुर्की द्वारा किए गए सभी प्रयासों को विफल कर दिया गया। वे कोई सुविधा प्राप्त नहीं कर सके।
2. **तिब्बत**—कर्जन ने तिब्बत में रूसी तथा चीनी प्रभाव बढ़ने पर रोक लगाने का प्रयास किया। 1903 ई० में लॉर्ड कर्जन ने कर्नल यंग हस्बैण्ड को छोटी-सी गोरखा टुकड़ी के साथ विशेष शिष्ट मण्डल के रूप में भेजा जिसने कुछ सफलता प्राप्त की।

कर्जन-किचनर विवाद और कर्जन का त्यागपत्र—सन् 1902 ई० में लॉर्ड किचनर भारत में मुख्य सेनापति बनकर आया। वह सैनिक प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण चाहता था। सन् 1903 ई० में एडमण्ड एलिस ने, जो कार्यकारी परिषद् का सदस्य था, लॉर्ड किचनर द्वारा प्रस्तुत तिब्बत मण्डल की योजना में कुछ परिवर्तन कर दिया। लॉर्ड किचनर ने इसका विरोध किया और वह इस विषय पर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया। ऐसी स्थिति में गृह सरकार ने समझौते के प्रयत्न किए, किन्तु कोई समाधान नहीं निकल सका। अन्त में इस विवाद के चलते लॉर्ड कर्जन ने 1905 ई० में अपना त्याग-पत्र दे दिया।

मूल्यांकन—लॉर्ड कर्जन साम्राज्यवादी विचारों का व्यक्ति था। वह भारतीय उपनिवेश को इंग्लैण्ड के लिए अमूल्य मानता था। 1908 ई० में उसने कहा था—"भारत हमारे साम्राज्य का केन्द्र है—यदि साम्राज्य अपने कोई अन्य भाग खो बैठता है तो हम जीवित रह सकते हैं, परन्तु यदि हम भारत खो बैठे तो हमारे देश के साम्राज्य का सूर्य अस्त हो जाएगा।" उसके साम्राज्यवादी उद्देश्यों से भारत में राजनीतिक अशान्ति बढ़ी। अत: एक राजनीतिक के रूप में कर्जन बिल्कुल असफल रहा। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव दृढ़ करने आया था। परन्तु वह केवल जड़ उखाड़ने में ही सफल रहा। इतना अवश्य है कि उसकी कठोरता से भारत में राष्ट्रवाद की अधिक सशक्त भावना उपजी और राजनैतिक जागृति आई।

(लॉर्ड कर्जन के जाने के बाद लॉर्ड मिन्टो द्वितीय (1905-1910 ई०), लॉर्ड हर्डिंग (1910-1916 ई०), लॉर्ड चेम्सफोर्ड (1916-1921 ई०), लॉर्डरीडिंग (1921-1925 ई०), लॉर्ड लिटन (1925 ई०), लॉर्ड इर्विन (1926-1931 ई०), लॉर्ड वेलिंगटन (1931-34 ई०), लॉर्ड जार्ज स्टेनले (1934 ई०), लॉर्ड लिनलिथगो (1934-36 ई०), लॉर्ड बैरन ब्रेबर्न (1938 ई०), लिनलिथगों (1938-43 ई०), लॉर्ड वेवल (1943-1947 ई०) तथा लॉर्ड माउन्ट बेटन (1947-1948 ई०) भारत में वायसराय रहे। 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत को स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो गई। स्वतंत्रता के पश्चात् लॉर्ड माउण्टबेटन को जून, 1948 तक भारत का गवर्नर जनरल बनाए रखा गया। इसके पश्चात् जून, 1948 ई० से 1950 तक चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

TOUCH 'n PASS

गवर्नर जनरल रहे। 26 जनवरी, 1950 ई० को भारतीय संविधान सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया जिसके तहत डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। लॉर्ड कर्जन के बाद के वायसरायों के क्रिया कलापों का विवरण राष्ट्रीय आन्दोलनों के अध्यायों में उपलब्ध है।

प्र.2. बंगाल विभाजन तथा इसमें नारी सहभागिता का उल्लेख संक्षेप में कीजिए।

Briefly mention Participation of Bengal and women's participation in it.

उत्तर

बंगाल विभाजन तथा नारी सहभागिता
(Partition of Bengal and Women's Participation)

बंगाल विभाजन तथा इसमें नारी सहभागिता का उल्लेख निम्न प्रकार है—

1. 1905 में बंगाल के विभाजन ने राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्री सहभागिता में एक नई स्फूर्ति पैदा की। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन, स्त्रियों के लिए विशेष सभाओं तथा नए राष्ट्रीय समूहों के गठन के माध्यम से स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया गया। परन्तु इस दौर में स्त्री भागीदारी निजी एवम् सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में निष्क्रिय भूमिका के मॉडल से अधिक प्रभावित थी। परम्परागत सामाजिक रीति रिवाजों के कारण औरतों को अप्रत्यक्ष भागीदारी से ही संतुष्ट होना पड़ा। राजनीतिक सहभागिता तथा सामाजिक संकीर्णता दोनों साथ-साथ चलती रही। घरेलू तथा बाहरी क्षेत्रों में स्पष्ट विभाजन के बावजूद स्त्रियों ने क्रान्तिकारी संगठनों के इर्द-गिर्द महत्त्वपूर्ण परोक्ष भूमिका अदा की। यह भूमिका मुख्यत: तीन प्रकार की थी—(i)अपने परिवार के लोगों तथा जानकारों को देशभक्ति की भावना के लिए प्रेरित करना, (ii) आन्दोलन को व्यक्तिगत तथा सामूहिक सहानुभूति तथा (iii) पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाते हुए सीमित प्रत्यक्ष भागीदारी।
2. 1910 तथा 1920 के बीच स्त्रियों की राजनीतिक गतिविधियों में काफी वृद्धि हुई। बागी क्रान्तिकारियों एवम् आतंकवादियों को शरण देने तथा गुप्त संदेशवाहक के रूप में स्त्रियों की काफी माँग थी। बंगाल के इतिहास में पहली बार स्त्रियों ने अपने घरों से भागकर क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय हिस्सा लिया तथा सजाएँ भी भुगती। इस चरण में कुछ ब्रिटिश महिलाएँ भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सक्रिय समर्थक बन गई। इनमें प्रमुख थीं—ऐनी बेसेन्ट, डोरोथी जिनराजदास, मारग्रेट कजस तथा सिस्टर निवेदिता। इलाहाबाद में नेहरू परिवार की महिलाएँ स्त्री सुधार के क्षेत्र में काफी सक्रिय हो गई। मोतीलाल तथा जवाहर लाल के राजनीति में प्रवेश से बहुत पहले इन्होंने नारी समस्याओं को उठाना शुरू कर दिया था। स्त्री विषयों से सम्बन्धित तीन पत्रिकाएँ—'स्त्रीदर्पण', 'गृहलक्ष्मी' तथा 'चाँद' इलाहाबाद से प्रकाशित होनी शुरू हो गई थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1917 के अधिवेशन में औपचारिक रूप से पहली बार नारी अधिकारों पर अपनी स्थिति स्पष्ट की और शिक्षा की माँग की तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्धित निर्वाचित संस्थाओं के चुनाव एवं योग्यता के लिए स्त्रियों पर भी वही मानदण्ड लागू होना चाहिए जो पुरुषों पर होते हैं।
3. भारत सरकार अधिनियम, 1919 में औरतों को सीमित स्तर पर वोट का अधिकार दिया गया। इन्होंने इस सीमित अधिकार का भरपूर उपयोग किया तथा कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए राजनीतिक आन्दोलनों में हिस्सा लिया एक ऐसे समय पर जब कांग्रेस तथा गाँधी उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदार बनने की अपील कर रहे थे, 'उन्हें यह महसूस हुआ कि ईश्वर तथा प्रभुसत्ताधारी शक्ति दोनों ने एक-एक अस्त्र उनकी पहुँच की सीमाओं में रख दिया है। उन्होंने एक हाथ से निष्क्रिय विरोध को पकड़ा तथा दूसरे हाथ में वोट'।

प्र.3. बंगाल विभाजन के क्या परिणाम रहे? व्याख्या कीजिए।

What were the consequences of Partition of Bengal? Explain.

उत्तर

बंगाल विभाजन के परिणाम
(Consequences of Partition of Bengal)

बंगाल विभाजन (Partition of Bengal) के परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। अब राष्ट्रवादियों का रोष चरम-सीमा तक पहुँच गया और भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल हुई। वास्तव में अब तक कोई ऐसी घटना नहीं घटी थी, जिसने भारतीय राजनीति को इस तरह प्रभावित किया हो। बंगाल विभाजन (Partition of Bengal) को आन्दोलन से घबराकर सरकार ने रद्द

TOUCH 'n PASS

तो कर दिया लेकिन विरोध का जो ज्वार एक बार उठा वह फिर रुका नहीं। कर्जन ने बंगाल विभाजन के द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता को कुचलने का प्रयास किया था। कर्जन की इच्छा थी कि ब्रिटिश साम्राज्य सुरक्षित हो और उसे स्थायित्व प्रदान हो पर बंगाल विभाजन और अपनी प्रतिक्रियावादी नीतियों के द्वारा उसने ब्रिटिश साम्राज्य की कब्र स्वयं ही तैयार कर दी। यह बंग-भंग योजना अगली पीढ़ी के लिए वरदान साबित हुई। भारतवासियों में एक नए उत्साह का संचार हुआ। बंगाल का विभाजन (Partition of Bengal) कर्जन की एक बड़ी भूल साबित हुई, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य को लाभ पहुँचाने की जगह हानि ही पहुँचाई। लॉर्ड कर्जन एक घोर साम्राज्यवादी तथा प्रतिक्रियावादी वायसराय था। वह अंग्रेजों को भारतीयों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ, योग्य और सभ्य मानता था। उसके दिल में भारतीयों के प्रति घृणा भरी थी और भारत को राष्ट्र मानने के लिए वह तैयार ही नहीं था। उसके इसी रवैये ने भारत में असंतोष और उग्रवाद को बढ़ावा दिया। लॉर्ड कर्जन 1899 ई० से 1905 ई० तक भारत का वायसराय रहा। उसका सम्पूर्ण शासनकाल भूलों और गलतियों के लिए प्रसिद्ध था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दूत के रूप में कर्जन ने भारत में क्षोभ और असंतोष का तूफान खड़ा कर नव अंकुरित राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का काफी प्रयत्न किया। बंगाल विभाजन (Partition of Bengal) की योजना बनाना उसके हर कार्य से ज्यादा खतरनाक कार्य सिद्ध हुआ।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'लॉर्ड लिटन एक सुधारवादी वायसराय था।' इस कथन के आलोक में उसके सुधारों का वर्णन कीजिए।
'Lord Lytton was a reformist viceroy.' In light of this statement, mention his reforms.

उत्तर

लॉर्ड लिटन (1876-1880 ई०)
[Lord Lytton (1876-1880)]

लॉर्ड लिटन साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसका शासन काल भारत-विरोधी कार्यों के लिए प्रख्यात है।

लॉर्ड लिटन के शासन सम्बन्धी सुधार (Lord Lytton's Reforms)

लॉर्ड लिटन ने अपने कार्यकाल में निम्नलिखित आन्तरिक सुधार किए—

1. **1876-78 ई० का अकाल**—दक्षिण भारत में 1876-78 ई० के अकाल ने जनता की स्थिति को भयानक कष्टपूर्ण कर दिया। यद्यपि सरकार ने दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता में बहुत-सा धन व्यय किया फिर भी लगभग 50 लाख व्यक्ति काल के गाल में चले गए।
2. **आर्थिक सुधार**—आर्थिक सुधार में लॉर्ड लिटन को सर जॉन स्ट्रेची से बड़ी सहायता मिली। स्ट्रैची ने देशी राज्यों से समझौता करके नमक के उत्पादन पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित कर दिया। दूसरे स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना की ओर एक पग आगे बढ़कर देश के भीतरी भागों में चीनी पर जो चुंगी लगती थी उसे 1878 ई० में समाप्त कर दिया। 1889 ई० में मोटे कपड़ों पर आयात कर बिल्कुल हटा दिया। इसी वर्ष दक्षिण-भारत की कृषि सम्बन्धी उद्धार नियम पास किया गया जिसके द्वारा किसानों को महाजनों के चंगुल से बचाने का प्रयत्न किया गया।
3. **सिविल सर्विस में सुधार**—1878-79 में लिटन ने नियमानुसार सिविल सर्विस की स्थापना की। अब यह नियम बना दिया कि लगभग 16 प्रतिशत पद उन लोगों को दिया जाएगा जिनका जन्म भारतवर्ष में हुआ हो और उनकी नियुक्ति प्रान्तीय सरकारें गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल और भारत-मंत्री की अनुमति से करें।
4. **वर्नाक्लूयर एक्ट**—1878 ई० में लॉर्ड लिटन ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास कराया। इस एक्ट के द्वारा मजिस्ट्रेट अथवा कलक्टर को यह अधिकार दिया गया था कि वे देशी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों को प्रत्येक सम्पादक से या तो यह लिखित ले लें कि वे अपने समाचार-पत्रों में ऐसी बात न छापेंगे जिससे अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जनता में द्वेष अथवा रोष पैदा हो या उनसे कहें कि प्रकाशित होने से पूर्व अपने समाचार-पत्रों के प्रूफ एक विशेष अधिकार को दिखला लिया करें। इस एक्ट की तीव्र आलोचना हुई परन्तु लॉर्ड लिटन अपनी बात पर दृढ़ रहा और वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को पारित करा दिया परन्तु यह विधेयक अल्पकालीन सिद्ध हुआ क्योंकि चार वर्ष उपरान्त लॉर्ड रिपन ने इसे रद्द कर दिया।
5. **राज-उपाधि अधिनियम 1876 ई०**—अंग्रेजी संसद ने एक राज-उपाधि अधिनियम पारित किया जिससे महारानी विक्टोरिया को 'कैसर-ए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया गया। 1 जनवरी, 1877 ई० को दिल्ली में आयोजित एक वैभवशाली दरबार में इसकी घोषणा की गई। दुर्भाग्यवश यह उस समय किया गया जब देश में भीषण अकाल पड़ा हुआ

TOUCH 'n PASS

था। सरकार ने इस दरबार पर केवल दिखाने के लिए करोड़ों रुपये व्यय किए गए। उन लोगों को पुरस्कार वितरित किए गए जिन्होंने सरकार की सेवा की थी। लोगों की पेन्शनों में वृद्धि की गई और लगभग 16,000 बंदियों को मुक्त किया गया। कलकत्ता की एक पत्रिका ने दरबार की तुलना उस घटना से की जब नीरो बंशी बजा रहा था और रोम जल रहा था। दरबार से भारतीय रियासतों की अवस्था भी मित्र राजाओं की न रही।

6. **शिक्षा में प्रगति**—अलीगढ़ में मुहम्मडन एंग्लो ओरियण्टल कॉलिज की स्थापना की जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से विख्यात हुआ।
7. **उत्तरी-पश्चिमी सीमा**—प्रान्त सम्बन्धी आयोजन-लॉर्ड लिटन चाहता था कि उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त पंजाब-सरकार के नियन्त्रण से हटाकर केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में कर दिया जाए, परन्तु उसका यह आयोजन सफलीभूत न हो सका। आगे चलकर लॉर्ड कर्जन ने इसे कार्यान्वित कराया।
8. **स्वर्ण प्रमाण के स्थापित करने का आयोजन**—लॉर्ड लिटन भारत में आर्थिक स्थिति में स्वर्ण प्रमाण प्रारम्भ करना चाहता था और यदि उसकी यह योजना उस समय कार्यान्वित कर दी गई होती जब चाँदी का मूल्य गिरना आरम्भ हो रहा था तो भारत एक बहुत बड़े आर्थिक संकट से बच गया होता पर उसकी यह योजना भी क्रियान्वित न हो सकी।
9. **भारतीय शस्त्र-अधिनियम 1878 ई०**—1878 ई० के इस अधिनियम के अनुसार किसी भारतीय के लिए बिना लाइसेन्स के शस्त्र रखना या उसका व्यापार करना एक दण्डनीय अपराध बन गया। इस अधिनियम को तोड़ने पर तीन वर्ष तक की जेल अथवा जुर्माना अथवा दोनों और उसको छुपाने का प्रयत्न करने पर सात वर्ष तक की जेल अथवा जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिए जा सकते थे। इसमें भी भेदभाव किया गया था अर्थात् यूरोपीय, इंग्लो-इण्डियन अथवा सरकार के कुछ अधिकारी इस अधिनियम की परिधि से मुक्त थे। इस अधिनियम द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय अविश्वसनीय समझे जाते हैं।

आलोचना—आधुनिक काल में लॉर्ड लिटन के कार्यों की कड़ी आलोचना की जाती है। उसकी अफगान नीति, भारतीय प्रेस, एक्ट, भारतीय अस्त्र-शस्त्र अधिनियम, दरबार आयोजन आदि कार्यों ने उसे अलोक प्रिय बना दिया परन्तु राजनीतिक दृष्टिकोण से उसका कार्यकाल वरदान सिद्ध हुआ। उसकी दमनकारी नीति से भारतीय समाज में नयी जागृति आ गई और इच्छा न होते हुए भी लिटन ने भारत का उपकार ही किया।

प्र.2. लॉर्ड रिपन के प्रशासन का मूल्यांकन कीजिए तथा इनके प्रमुख सुधारों की विस्तार से समीक्षा कीजिए।
Do an appraisal of Lord Ripon's administration and review his main reforms in detail.

उत्तर

लॉर्ड रिपन (1880-1884 ई०)
[Lord Ripon (1880-1884)]

लॉर्ड रिपन एक सच्चा और उदार दृष्टिकोण वाला व्यक्ति था। उसने स्वयं कलकत्ता के एक वक्तव्य में कहा था, मेरा मूल्यांकन मेरे कार्यों से करना शब्दों से नहीं। उसके प्रमुख कार्यों में मानव सेवा की छाप थी और उसने भारत में प्रशासन को उदार बनाने का प्रयत्न किया। उसने लॉर्ड लिटन के कुछ अप्रिय अधिनियमों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। रिपन के समय में निम्नलिखित घटनाएँ तथा कार्य हुए—

1. **द्वितीय अफगान युद्ध की समाप्ति**—भारत की परिस्थिति का अध्ययन कर लॉर्ड रिपन ने अफगानिस्तान की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। उसने अब्दुर्रहमान को काबुल का अमीर स्वीकार कर लिया। अंग्रेजों ने अमीर को यह वचन दिया कि विदेशी आक्रमण की दशा में उसकी सदैव सहायता की जाएगी। अमीर को यह भी आश्वासन दिया कि अफगानिस्तान के किसी भी भाग में ब्रिटिश रेजीडेन्ट के रखने का प्रयत्न न किया जाएगा। ब्रिटिश सेनाएँ अफगानिस्तान से हटा ली गईं। अब्दुर्रहमान ने अपने प्रतिद्वन्द्वी अयूब खाँ को परास्त कर कांधार और हिरात पर भी अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार अफगानिस्तान में एक बार फिर राजनीतिक एकता स्थापित हो गई।
2. **1878 ई० का भारतीय भाषा समाचार-पत्र अधिनियम को रद्द करना**—लॉर्ड रिपन ने 1882 में लॉर्ड लिटन के समय में पारित दमनकारी भारतीय भाषा समाचार अधिनियम को रद्द कर दिया। इससे लोकमत के पुनः प्रसन्न करने में पर्याप्त सहायता मिली।
3. **भारतीय सिविल सेवा के लिए उम्र सीमा को बढ़ाना**—रिपन चाहता था कि सिविल सेवाओं की परीक्षाएँ इंग्लैण्ड और भारत में साथ-साथ हों पर ब्रिटिश सरकार ने इस सिफारिश को अस्वीकार कर दिया। फिर भी ब्रिटिश सरकार ने उच्चतम आयु सीमा को 18 से 21 वर्ष तक बढ़ा दिया। इससे भारतीयों को परीक्षा में बैठने की सम्भावनाएँ बढ़ गईं।

TOUCH 'n' PASS

4. **प्रथम फैक्टरी एक्ट (1881 ई०)**—यह एक्ट उन्हीं कारखानों पर लागू होता था, जहाँ 100 से अधिक श्रमिक काम करते थे। इस एक्ट द्वारा 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों से कार्य कराने पर रोक लगा दी तथा 12 साल से कम आयु के बच्चों के लिए काम करने का समय 9 घण्टे नियत किया गया। संकटपूर्ण मशीनों पर बाड़ लगाना आवश्यक कर दिया गया। इस प्रकार इस एक्ट ने भारत के औद्योगिक इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया, यद्यपि यह सीमित ही था।
5. **आर्थिक विकेन्द्रीकरण (1882 ई०)**—लॉर्ड रिपन ने निश्चय किया कि प्रान्तों का आर्थिक उत्तरदायित्व और बढ़ा दिया जाए। अब कर के साधनों को तीन भागों में बाँट दिया गया—(अ) साम्राज्यीय, (ब) प्रान्तीय, (स) बाँटी जाने वाली।
साम्राज्यीय मदों के अन्तर्गत सीमा शुल्क, डाक तार, रेलवे, नमक, अफीम, टकसाल तथा भूमि कर आदि रखे गए। इनकी आय केन्द्र को जाती थी तथा केन्द्र को व्यय इसी से करना होता था।
प्रान्तीय मदों के अन्तर्गत स्थानीय प्रकृति की मदें यथा जेल, स्वास्थ्य, मुद्रण, साधारण प्रशासन आदि थे। इनकी आय प्रान्तीय सरकारों को जाती थीं तथा उसे व्यय इसी से करना होता था।
बाँटी जाने वाली मदों के अन्तर्गत आबकारी कर, स्टाम्प कर, जंगल, पंजीकरण शुल्क आदि थी, जिनकी आय प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के बीच बँटती थी और व्यय भी उसी अनुपात में करना होता था।
इन निर्णयों से प्रान्तों में अपनी आय बढ़ाने में रुचि हुई तथा दोनों सरकारों के हितों में समन्वय हो गया।
6. **स्थानीय स्वायत्त शासन 1882 ई०**—लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वराज्य का जन्मदाता माना जाता है। 1882 ई० में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वायत्त शासन सम्बन्धी एक प्रस्ताव पारित किया। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—
   (i) एक सीमित या स्थानीय परिषद् के अन्तर्गत सबसे बड़ा क्षेत्र जिला न होकर सब-डिवीजन होना चाहिए इसके अधीन प्राथमिक परिषदें होनी चाहिए, जो बहुत छोटे क्षेत्रों के लिए हों। फलस्वरूप इसका प्रत्येक सदस्य इसके मामलों का ध्यान रखता और इसमें दिलचस्पी लेता।
   (ii) स्थानीय परिषदों (लोकल बोर्ड) में निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्यों का काफी बहुमत होना चाहिए। दूसरा अध्यक्ष भी गैर-सरकारी सदस्यों में से होना चाहिए।

   स्वायत्त शासन की वास्तविक शुरुआत यहीं से हुई, किन्तु दुर्भाग्यवश इस प्रस्ताव के आधारभूत सिद्धान्तों को पूरी तरह लागू नहीं किया गया। इसके बाद जो कानून बना, वह विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार का रहा।
7. **शिक्षा सुधार (1882 ई०)**—सन् 1854 ई० में वुड के निर्देश (Wood's dispatch) के पश्चात् सन् 1882 ई० में **सर विलियम हन्टर** की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं—
   (i) शिक्षा के प्रसार और उन्नति का उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों को सौंपा जाए और जिन पर सरकार की कड़ी निगरानी रहे।
   (ii) माध्यमिक शिक्षा को साधारण साहित्य शिक्षा तथा दूसरी व्यावहारिक शिक्षा नामक दो पद्धतियों में विभाजित कर दिया जाए।
   (iii) आयोग ने सहायक अनुदान प्रणाली का मध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रसार का प्रस्ताव किया। यह भी सुझाया गया कि सरकार को माध्यमिक पाठशालाओं से हट जाना चाहिए।
   (iv) आयोग ने स्त्री शिक्षा की अवस्था पर चिन्ता व्यक्त की तथा कहा कि सरकार को इसके लिए प्रयत्न करने चाहिए।

   सरकार ने आयोग के अधिकतर सुझावों को स्वीकार कर लिया।
8. **इलबर्ट बिल (1883-1884 ई०)**—सन् 1883 ई० तक भारतीय सेशन जज व मजिस्ट्रेट के पदों पर भी पहुँच गए थे, लेकिन तब भी उन्हें किसी अंग्रेज व्यक्ति का मुकदमा सुनने और उस पर फैसला देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। लॉर्ड रिपन को यह बात न्यायोचित नहीं लगी। इसलिए न्याय के क्षेत्र में इस अन्याय को दूर करने के लिए उसे अपनी कौंसिल के कानूनी सदस्य इलबर्ट से एक बिल पेश करवाया, जो **'इल्बर्ट बिल'** के नाम से पारित हुआ इस बिल के पारित हो जाने पर भारतीय जजों को यूरोपीय लोगों के मुकदमें सुनने और उन पर फैसले देने का अधिकार प्राप्त हो जाता। अंग्रेजों ने इसके विरुद्ध व्यापक आन्दोलन किया जिससे वह बिल पारित न हो सका। परन्तु इस घटना से भारतीयों का आत्म सम्मान जागा।
9. **जनगणना का प्रारम्भ**—भारत में जनगणना की व्यवस्था का प्रारम्भ लॉर्ड रिपन ने ही कराया। प्रत्येक धर्म व प्रत्येक जाति के लोगों की संख्या का ज्ञान प्राप्त करने और कार्यरत एवं बेरोजगार व्यक्तियों का पता लगाने के उद्देश्य से उसने 1881 ई० में प्रथम बार जनगणना करवाई और फिर हर दस वर्ष बाद जनगणना की व्यवस्था की।

TOUCH 'n' PASS

10. **अकाल संहिता (1883 ई०)**—अकाल के विषय में भारत सरकार ने 1883 ई० में फेमीन कोड प्रचारित किया तथा आगे के वर्षों में विभिन्न प्रान्तीय फेमीन कोड तैयार किए गए। आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्नवत् थीं—
    (i) यह आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया कि अकाल के समय में जरूरतमंद लोगों को सहायता पहुँचाना राज्य का कर्त्तव्य है।
    (ii) लोगों को यह सहायता भू-राजस्व व मालगुजारी स्थगित और माफ करके तथा बीज एवं बैलों के लिए कर्ज देकर हो सकती है।
    (iii) कमीशन ने सिफारिश की कि सहायता करदाताओं के प्रतिनिधियों के द्वारा दी जानी चाहिए, जिन्हें रकम का बड़ा भाग देना है।
    (iv) निर्णय लिया गया कि प्रत्येक वर्ष डेढ़ करोड़ रुपये अलग रख दिया जाए, जिससे अकाल सहायता और बीमा कोष का निर्माण हो।
11. **मैसूर का अध्यर्पण**—कुशासन का आरोप लगाकर बैंटिक ने मैसूर का विलय कर लिया था परन्तु बाद में सरकार को पता लगा कि अत्याचार के समाचारों में अतिश्योक्ति थी। रिपन ने इस अन्याय को सुधारने की भावना से पदच्युत किए राजा के दत्तक पुत्र को मैसूर पुन: लौटा दिया।

मूल्यांकन—रिपन जब अपने पद से त्याग-पत्र देकर 1884 ई० में स्वदेश लौटने लगा, उस समय उसका अभिनन्दन करने के लिए बम्बई के सारे मार्ग भरे पड़े थे। इससे यह पता लगता है कि लॉर्ड रिपन भारतीयों में कितना लोकप्रिय था। वस्तुत: लॉर्ड रिपन का काल सुधारों का ही काल था। उसके सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतया सम्यक है कि किसी अन्य वायसराय ने करोड़ों व्यक्तियों के लिए इतना कार्य नहीं किया जितना लॉर्ड रिपन ने किया। फ्लोरेन्स नाईटिंगेल ने रिपन को "भारत का उद्धारक" की संज्ञा दी। रिपन भारतीयों में बहुत लोकप्रिय बन गया था और लोग उसे 'सज्जन मित्र' के नाम से स्मरण करते थे। 1909 ई० में उसका स्वर्गवास हो गया।

लॉर्ड डफरिन (1884-88 ई०)—लॉर्ड रिपन के पश्चात् लॉर्ड डफरिन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। वह एक योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति था। लॉर्ड डफरिन ने किसानों के हितों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने बंगाल, अवध तथा पंजाब में तीन काश्तकारी अधिनियम पास किए। 13 फरवरी, 1885 ई० में उसने महारानी विक्टोरिया की बड़ी धूमधाम से रजत जयन्ती मनवाई। 1885 ई० में भारतीय स्त्रियों की रक्षा के लिए 'लेडी डफरिन फण्ड' की स्थापना की। लॉर्ड डफरिन ने ए०ओ० ह्यूम को सहयोग प्रदान किया। फलस्वरूप इसी के शासनकाल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885 ई०) की स्थापना हुई।

लॉर्ड लैन्सडाउन (1888-94 ई०)—लॉर्ड लैन्सडाउन साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने अपने शासनकाल में ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा व प्रभाव बढ़ाने का सफल प्रयास किया। उसने गृहनीति के क्षेत्र में भी कुछ सुधार किए।

लॉर्ड एल्गिन द्वितीय (1894-99 ई०)—लॉर्ड लैन्सडाउन के पश्चात् लॉर्ड एल्गिन द्वितीय को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। उसे भारत में आते ही आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। फलत: उसे आयात कर बढ़ा देना पड़ा। 1896 ई० में उसे एक दुर्भिक्ष का सामना भी करना पड़ा जिसमें उसने पीड़ितों की सहायता के लिए 55 हजार पौंड खर्च किया।

प्र.3. लॉर्ड कर्जन ने भारत का बहुत उपकार किया। इस कथन की विवेचना कीजिए तथा इनके शासन सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Lord Curzon did a great service to India. Explain the statement and briefly mention his administrative reforms.

उत्तर

लॉर्ड कर्जन (1899-1905 ई०)
[Lord Curzon (1899-1905)]

लॉर्ड एल्गिन द्वितीय के बाद लॉर्ड कर्जन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। लॉर्ड कर्जन का व्यक्तित्व काफी विवादास्पद रहा। भारत का कोई भी वायसराय इतना अलोकप्रिय नहीं हुआ था जितना लॉर्ड कर्जन। उसके क्रियाकलापों का विवरण निम्नवत् है—

प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms)

लॉर्ड कर्जन में सुधार करने का प्रबल उत्साह था। उसने अपने शासन को कुछ सिद्धान्तों पर आधारित किया था। उसका कथन था कि शासन के प्रत्येक विभाग की एक निश्चित नीति स्पष्ट रूप से घोषित कर दी जानी चाहिए और उसका अनुसरण करना चाहिए। कर्जन ने अग्रलिखित अतिरिक्त सुधार किए—

TOUCH 'n PASS

1. **कृषि सम्बन्धी सुधार**—लॉर्ड कर्जन किसानों का शुभचिन्तक था। उसने किसानों की दशा सुधारने के लिए पंजाब में भूमि हस्तान्तरण नियम लागू किया। इस नियम द्वारा यह निर्धारित किया गया कि यदि कोई ऋणदाता किसी किसान के विरुद्ध न्यायालय में डिक्री पा जाए तो वह उस किसान की भूमि को उस डिक्री के लिए विक्रय नहीं कर सकता। 1905 ई० उसने स्थगन क्षमा प्रस्ताव पास कराया। इस प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित हुआ कि ऋतु की स्थिति के अनुसार लगान की सरकारी माँग में परिवर्तन होना चाहिए। यथा यदि अनावृष्टि हुई तो सरकारी लगान में अनायास ही कमी हो जानी चाहिए। साहूकारों तथा ऋणदाताओं के चंगुल से किसानों को मुक्त करने के लिए कर्जन ने कृषि बैंकों तथा सरकारी समितियों की स्थापना की। इससे किसानों को बड़ी सुविधा प्राप्त हो गई। लॉर्ड कर्जन ने वैज्ञानिक रीति से कृषि करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया। इसी के लिए बंगाल में पूसा नामक स्थान पर अनुसंधान संस्था की स्थापना करवाई। इसका प्रधान लक्ष्य यह था कि भारतीय किसानों को वैज्ञानिक रीति से कृषि करना आ जाए। लॉर्ड कर्जन ने कृषि की समुचित व्यवस्था के लिए 'सामूहिक कृषि विभाग' की स्थापना की और उसके निरीक्षण एवं प्रबन्ध के लिए एक कृषि के इन्स्पेक्टर जनरल की नियुक्ति कर दी।
   लॉर्ड कर्जन ने सिंचाई के विषय में जाँच करने के लिए 1901 ई० में एक आयोग की नियुक्ति की जिसने 1903 ई० में अपनी रिपोर्ट दी और यह सिफारिश की कि सिंचाई के लिए 20 वर्षों में 44 करोड़ रुपया व्यय करना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब में नहरों में सुधार हो गया और अपर चेनाब, अपर झेलम केनाल तथा लोअर बड़ी दोआब केनाल का निर्माण आरम्भ हो गया।
2. **आर्थिक सुधार**—1899 ई० में लॉर्ड कर्जन ने स्वर्ण-मुद्रा कानूनी नियम पास करवाया और एक गिन्नी का मूल्य 15 रुपये के बराबर नियत कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अब सोना बाहर से भारत में आने लगा और रजत-मुद्रा के ढालने से जो लाभ होता था उसे स्वर्ण रक्षित कोष में एकत्रित किया जाने लगा और जब लॉर्ड कर्जन वापस गया तो भारत के कोष में वह 90 लाख पौंड छोड़कर गया। राजस्व के विकेन्द्रीकरण की पंचवर्षीय व्यवस्था को सन् 1904 ई० में लॉर्ड कर्जन ने स्थायी बना दिया। करों में कमी की गई। नमक कर में सब जगह कमी की गई। लॉर्ड कर्जन ने व्यापार तथा व्यवसाय की उन्नति के लिए एक नया विभाग स्थापित किया और इस विभाग का एक नया अध्यक्ष नियुक्त करके अपनी कौंसिल में छठाँ सदस्य बढ़ा दिया।
3. **शासन सम्बन्धी सुधार**—(i) **रेलों में सुधार**—1905 ई० में लॉर्ड कर्जन ने लोक सेवा विभाग की रेलवे शाखा को समाप्त कर दिया। अब रेलवे का कार्य एक रेलवे बोर्ड को सौंप दिया गया। जिसमें कुल तीन सदस्य थे। नई-नई रेलवे लाइनों का निर्माण हुआ और यातायात के साधनों में वृद्धि हुई।
   (ii) **पुलिस सम्बन्धी सुधार**—पुलिस विभाग की त्रुटियों को दूर करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। आयोग ने सिफारिश की कि पुलिस के सिपाही का वेतन कम-से-कम इतना हो कि वह अपनी रोजी-रोटी का काम चला सके। ट्रेनिंग के लिए स्कूल हों। प्रत्येक प्रान्त में अपराध अन्वेषण विभाग हो और एक अपराध अन्वेषण संचालक हो। आयोग की इन सिफारिशों को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया।
   (iii) **स्थानीय स्वशासन की संस्था के अधिकारों में कमी**—कलकत्ता कॉरपोरेशन सुधार विधेयक का लक्ष्य कलकत्ता कॉरपोरेशन के अधिकारों को कम करना तथा कार्यकारिणी के अधिकारों को बढ़ाना था। इस नए विधान ने कलकत्ता कारपोरेशन के सदस्यों की संख्या को 95 से घटाकर 50 कर दिया। कारपोरेशन के 25 विर्नाचित सदस्यों को जो करदाताओं के प्रतिनिधि थे हटा दिए गए और अंग्रेजों का बहुमत कर दिया गया। इस प्रकार कॉरपोरेशन ऐंग्लो-इण्डियन सदन बन गया।
   (iv) **भारतीयों के प्रति अविश्वास**—लॉर्ड कर्जन की धारणा थी कि भारतीयों में शासन करने के उन सभी गुणों का अभाव होता है जो अंग्रेजों में पाए जाते हैं। फलतः उसने सभी उच्च-पदों को अंग्रेजों के लिए सुरक्षित करने का निश्चय किया। सरकारी नौकरियों में उसने प्रतियोगिता की परीक्षा द्वारा नियुक्त करने के स्थान पर मनोनीत करने की प्रथा का अनुसरण किया। उच्च सरकारी पदों के लिए उसने कुछ जाति वालों को अयोग्य ठहरा दिया था।
   (v) **प्राचीन स्मारकों की सुरक्षा व्यवस्था**—लॉर्ड कर्जन का यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य था कि उसने प्राचीन स्मारकों की सुरक्षा तथा जीर्णोद्धार की व्यवस्था कराई। उसने एक डाइरेक्टर जनरल ऑफ आर्केयोलोजी की नियुक्ति की और 1904 ई० में '**प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम**' पास कराया। इस नियम द्वारा सरकार ने प्राचीन इमारतों की रक्षा और जीर्णोद्धार का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

TOUCH 'n' PASS

(vi) **मजदूरों की संरक्षण व्यवस्था**—मजदूरों के संरक्षण के लिए माइन्स एक्ट तथा 'आसाम लेबर एक्ट' पास किए गए। इससे मजदूरों को काफी सुविधाएँ प्राप्त हुईं।

4. **सेना सम्बन्धी सुधार**—रूस की मध्य एशिया की नीति एवं ताशकन्द रेलवे लाइन के बनने से भारत सरकार को अपनी सीमा असुरक्षित लगने लगी। सैनिक सुधार का कार्य मुख्य सेनापति लॉर्ड किचनर द्वारा किया गया। उसने भारतीय सेना को दो कमानों में बाँट दिया। एक उत्तरी कमान जिसका कार्यालय पुरी में था और प्रहार केन्द्र पेशावर था। दूसरे कमान का कार्यालय पूणा में था और प्रहार केन्द्र क्वेटा में। अफसरों के प्रशिक्षण के लिए क्वेटा में एक संस्था स्थापित की गई। 1901 ई० में इम्परीरियल कैडेट कार्स आरम्भ किया गया ताकि उच्च घरानों के युवकों को सैन्य शिक्षा दी जा सके। समुद्र तट की रक्षा के उपाय किए गए। सैनिकों को आधुनिकतम अस्त्र दिए गए। बटालियनों का प्रशिक्षण कड़ा कर दिया। प्रत्येक बटालियन को कड़े परीक्षण से गुजरना पड़ा था। इसे **किचनर टेस्ट** बोला जाता था। इससे सेना की दक्षता बढ़ी पर खर्चा भी बढ़ गया।

5. **न्यायिक सुधार**—कलकत्ता उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी गई जिससे कार्य विलम्ब से न हो। उसने उच्च और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों का वेतन तथा पेंशन बढ़ा दी। इसके अतिरिक्त भारतीय व्यवहार प्रक्रिया संहिता (Indian Code of Civil Procedure) को पूर्णतया संशोधित किया।

6. **शिक्षा सम्बन्धी सुधार**—लॉर्ड कर्जन ने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार किए। 1902 ई० में एक विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया जिसका उद्देश्य भारत में विश्व विद्यालयों की अवस्था की परीक्षण करना और सुझाव देना था। आयोग के सुझावों पर विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 ई० पारित किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख बातें निम्न थीं—
   (i) विश्वविद्यालयों की परीक्षा कराने के अतिरिक्त अनुसंधान कार्य भी कराने चाहिए।
   (ii) विश्वविद्यालयों तथा उनसे सम्बद्ध कॉलिजों में परस्पर सम्पर्क हो तथा कॉलिजों का निरीक्षण भी विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा हो।
   (iii) स्कूलों तथा कॉलिजों में छात्रावास व्यवस्था की गई।
   (iv) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कॉलिजों की व्यवस्था की गई।
   (v) सीनेटों तथा उनके सदस्यों की संख्या कम कर दी गई। सीनेट के सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते थे।
   (vi) **पुलिस सुधार**—1902 ई० में सर टण्डयू फेनर की अध्यक्षता में एक पुलिस आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सुझाव दिए—
      (a) बड़ी-बड़ी सेवाओं के लिए भर्ती की जाए।
      (b) सभी स्तरों पर वेतन वृद्धि की जाए।
      (c) प्रशिक्षण संस्थाएँ खोली जाएँ।
      (d) प्रान्तीय पुलिस की संख्या में वृद्धि की जाए।
      (e) एक निदेशक के अधीन केन्द्रीय गुप्तचर विभाग की स्थापना की जाए।
      (f) प्रत्येक प्रान्त में सी०आई०डी० विभाग की स्थापना की जाए।
   इन सुझावों की स्वीकृति दी गई तथा इनका क्रियान्वयन किया गया।

6. **बंग-भंग**—1905 ई० में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया। इस विभाजन का कड़ा विरोध हुआ। कर्जन का उद्देश्य राजनीतिक और कूटनीतिक दोनों थे। उसने बंगालियों की बढ़ती हुई राजनीतिक जागृति को समाप्त करने का यह एक मार्ग निकाला था। परन्तु इससे भारत ब्रिटिश सम्बन्धों में कटुता आ गई। सन् 1911 ई० में यह विभाजन रद्द करना पड़ा।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-VI

भारत में कृषि के व्यवसायीकरण के प्रभाव
Impacts of Commercialisation of Agriculture in India

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कृषि का व्यवसायीकरण कब हुआ?

When was agriculture commercialised?

उत्तर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय कृषि में एक विकासशील प्रवृत्ति देखी गई। भारतीय कृषि में व्यवसायीकरण का उद्‌भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चिहिन्त विशेषता थी।

प्र.2. कृषि का व्यवसायीकरण क्या है?

What is commercialisation of agriculture?

उत्तर किसी देश में कृषि इस उद्‌देश्य से की जाती है कि उपज की विभिन्न वस्तुओं को बेचकर अधिक लाभ प्राप्त किया जाए (तथा जिसका उद्‌देश्य मात्र जीवित रहने के लिए कृषि करना न हो) तो उसे कृषि का व्यवसायीकरण कहा जाता है।

प्र.3. कृषि को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं?

Which are the factors that affect agriculture?

उत्तर कृषि विकास को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। उनमें भौतिक, प्रौद्योकीय, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक, संस्थागत संगठनात्मक, राजनीतिक कारक शामिल हैं। ये सभी कारक भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते हैं, जैसे परिवार, गाँव, जिला, राज्य, राष्ट्र और समग्र रूप में विश्व।

प्र.4. कृषि परिभाषित कीजिए।

Define agriculture.

उत्तर कृषि का अर्थ है फसल उत्पन्न करने की प्रक्रिया, फसल उत्पादन, पशुपालन आदि की कला, विज्ञान और तकनीक को कृषि कहते हैं। भूमि के उपयोग द्वारा फसल उत्पादन करने की क्रिया और प्रक्रिया को कृषि कहते हैं। कृषि एक प्राथमिक कार्य है जिसका मुख्य उद्‌देश्य संसाधनों के उपयोग द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

प्र.5. कृषि के व्यवसायीकरण के क्या महत्त्व हैं?

What is the importance of commercialisation of agriculture?

उत्तर तुलनात्मक लाभों का दोहन करके, कृषि व्यवसायीकरण व्यापार और दक्षता को बढ़ाता है, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास और कल्याण में सुधार होता है।

प्र.6. भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण के प्रभाव क्या हैं?

What are the effects of globalisation on Indian Agriculture?

उत्तर इससे कई गुना निवेश साधनों और बाजार आदि की सुविधाओं में बढ़ गया। इससे कृषि उत्पादन तो बढ़ा परन्तु इसके साथ ही बाजारों में खाद्यान्न की आपूर्ति बढ़ी। हरित क्रांति के बाद श्वेत क्रांति, पीली और नीली क्रांति आई जिससे दूध, तिलहन और मछली उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. देश के विकास में रेलवे का क्या योगदान है?

What is the contribution of railway in the development of the country?

उत्तर रेल परिवहन सड़क परिवहन की तुलना में काफी किफायती है सड़क परिवहन की तुलना में इसमें 6 गुना कम ऊर्जा खर्च होती है और चार गुना अधिक किफायती है पर्यावरण के प्रदूषण में भी रेलवे का योगदान कम होता है रेलों के निर्माण की लागत भी अन्य यातायात से लगभग 6 गुना कम बैठती है।

प्र.8. भारत में रेलवे का क्या प्रभाव है?

What is the impact of Railways in India?

उत्तर रेलवे ने भारत को गतिशील बना दिया और देश के लोगों के लिए नए रास्ते और अवसर खोले। यह नई विशेषज्ञता और व्यापार, नई तकनीक लाया और सबसे बढ़कर, इसने लोगों को स्वतंत्रता की भावना दी। जैसे–जैसे रेलवे का विकास हुआ, उनकी भूमिका केवल परिवहन के प्रदाता से काफी बड़ी हो गई।

प्र.9. भारतीय अर्थव्यवस्था में रेलवे का महत्त्व क्या है?

What is the importance of Railways in Indian Economy?

उत्तर रेलवे ने कृषि उत्पादन में वृद्धि, खाद्यान्न का निर्यात, बाजारों का चौड़ीकरण, कृषि का व्यवसायीकरण, और इसलिए, फसल का पैटर्न बढ़ाया। जैसे–जैसे रेलवे ने कृषि क्षेत्रों के लिए बाजारों को चौड़ा किया, भारतीय कृषि विश्व व्यापार चक्रों से जुड़ गई। किसान अब अपने फसल के पैटर्न का निर्धारण करते हुए मूल्य उत्तरदायी बन गए।

प्र.10. रेलवे कैसे महत्त्वपूर्ण है?

How is railways important?

उत्तर रेलवे लोगों और माल ढुलाई के लिए एक जलवायु–स्मार्ट और कुशल तरीका है। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में कटौती करते हुए रेलवे आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है। वे लाखों यात्रियों और लाखों टन माल को देशों और महाद्वीपों में ले जाने का एक साफ और कॉम्पैक्ट तरीका हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. परम्परागत उद्योगों का पतन एवं विऔद्योगीकरण की पृष्ठभूमि व कारणों को बताइए।

Write about the causes and background of decline of traditional industries and deindustrialisation.

उत्तर

परंपरागत उद्योगों (हस्तशिल्प/दस्तकार) का पतन एवं विऔद्योगीकरण
(Decline of Traditional Industries and Deindustrialisation)

इसको निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

भारत में ब्रिटिश सत्ता का भारतीय अर्थव्यवस्था पर स्पष्ट और गहरा प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों ने जो आर्थिक नीतियाँ बनाई उनसे भारत की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में हो गया और विऔद्योगीकरण इसी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का एक पहलू था। विऔद्योगीकरण का अर्थ है—परंपरागत भारतीय उद्योगों का विनाश जिसके तहत ग्रामीण एवं हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हुआ। संरचनात्मक रूप से विऔद्योगीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत 1813 से मानी जाती है जब भारत के साथ व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार हुआ।

पृष्ठभूमि (Background)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत में ब्रिटिश शासन से पहले कुटीर एवं हथकरघा उद्योग का पर्याप्त विकास हुआ था। कपड़ा उद्योग अत्यधिक विकसित था जिसकी माँग पूरे विश्व में थी। इसी प्रकार धातु कार्य, प्रस्तर शिल्प, कसीदाकारी, चीनी मिट्टी के बर्तन का उद्योग भी पर्याप्त विकसित था।

TOUCH 'n PASS

2. परंपरागत भारतीय उद्योगों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—ग्रामीण एवं शहरी। ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग में ग्रामीण कारीगरों को गाँव से ही आवश्यक कच्चा माल मिल जाता था कच्चे माल तक के लिए गाँव आत्मनिर्भर थे। निर्मित चीजें अधिकांशत: गाँव में खपत हो जाती थी और शेष माल साप्ताहिक मेलों या हाटों में बेचे जाते थे। ये ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग सारे देश में फैले हुए थे और यह कृषि एवं उद्योग के अपर्याप्त विभाजन पर आधारित था।
3. शहरी हस्तशिल्प उद्योग अमीर और धनी व्यापारिक वर्ग की भोग विलास की वस्तुओं का उत्पादन करते थे। ब्रिटिश पूर्व काल में इनका विकास चरम पर था। भारतीय कपड़ों, हीरे-जवाहरात आदि की संसार के कोनों-कोनों में प्रसिद्धि थी।
4. इन उत्पादित वस्तुओं का लाभ भारतीय किसान, व्यापारी को मिलता था।

पतन के कारण (Causes of Decline)

इसके पतन के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. रेलों की स्थापना तथा यातायात के सस्ते एवं सुगम साधनों के विकास से गाँव में ब्रिटिश निर्मित माल आसानी से एवं सस्ते दामों पर उपलब्ध होने लगा। यह भारतीय ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योगों के ह्रास का प्रमुख कारण था।
2. डी०एच० बुकानन—"अलग-थलग रहने वाले स्वावलंबी गाँव के कवच को इस्पात की रेल ने बेध दिया तथा उसकी प्राणशक्ति को क्षीण कर दिया।"
3. कंपनी के द्वारा बंगाल के दस्तकारों का शोषण किया जाता था। दस्तकारों को अपनी वस्तुएँ बाजार कीमत से कम पर बेचने तथा अपनी सेवाओं को प्रचलित मजदूरी से कम पर देने के लिए मजबूर किया जाता था। अत: दस्तकार अपने पुस्तैनी पेशे को छोड़ने को विवश हो गए।
4. अकाल के दौरान कारीगर विशेषकर जुलाहे अलग धंधों में लग गए।
5. ब्रिटिश मुक्त व्यापारिक नीति ने विदेशी सामानों को भारत में पाट दिया। फलत: भारत में परम्परागत उद्योगों में निर्मित माल का बाजार भी समाप्त हो गया क्योंकि ये माल विदेशी मालों का सामना नहीं कर पाए।
6. यूरोप में भारतीय वस्तुओं के आयात पर लगाए गए उच्च आयात शुल्कों तथा अन्य प्रतिबंधों के कारण यूरोपीय बाजारों के दरवाजे भारतीय विनिर्माताओं के लिए वस्तुत: बंद हो गए।
7. देशी राज्यों पर अंग्रेजों के नियंत्रण से भारतीय हस्तशिल्प उद्योग विशेषकर शहरी उद्योग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि ये देशी राज्य इन सामानों के सबसे बड़े खरीदार थे। उदाहरण के लिए सैनिक हथियारों का उत्पादन पूरी तरह से भारतीय राज्यों पर निर्भर था किन्तु अब अंग्रेजों ने इन्हें ब्रिटेन से खरीदना शुरू कर दिया था।
8. भारतीय शासकों और कुलीन सामंतों की जगह ब्रिटिश अधिकारियों एवं नवजात बुद्धिजीवी वर्ग ने ले लिया। जिन्होंने ब्रिटिश उत्पादनों को अपनाया। फलत: भारतीय उद्योगों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन नहीं मिला।
9. ब्रिटिश सामाजिक—शैक्षणिक नीति ने भारतीय की रुचि को परिवर्तित किया। अंग्रेजी भाषा व फैशन का अनुसरण प्रबुद्धता का सूचक माना जाता था। इससे भी देशी उद्योगों को नुकसान पहुँचा।
10. **ददनी प्रथा**—ब्रिटिश ने ददनी प्रथा के माध्यम से दस्तकारों पर अत्याचार किया। फलत: वे उत्पादन छोड़कर भाग खड़े हुए। इस प्रथा के अंतर्गत जुलाहों पर वस्त्र उत्पादन के लिए पेशगी के रूप में रुपए दिए जाते थे तथा एक निश्चित समय के अंदर उन्हें पूरा करने के लिए बाध्य किया जाता था। कच्चे मालों पर अंग्रेजों का पूर्ण नियंत्रण था और जुलाहों को यह बहुत ऊँचे मूल्य पर मिलता था।

प्र.2. विऔद्योगीकरण के प्रभावों को लिखिए तथा ब्रिटिश अकाल नीति की व्याख्या कीजिए।

Write the effects of deindustrialisation and discuss the British Famine Policy.

उत्तर विऔद्योगीकरण के प्रभावों को दो भागों में विभाजित किया गया है—

I. नकारात्मक प्रभाव, II. सकारात्मक प्रभाव।

I. नकारात्मक प्रभाव (Negative Effects)

ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. भारतीय हस्तशिल्प उद्योग तथा दस्तकारी वर्ग का पतन हो गया। परंपरागत उद्योगों के पतन के साथ ब्रिटेन और पश्चिम यूरोप की तरह यहाँ आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हुआ। फलस्वरूप तबाह हस्तशिल्पी व दस्तकार वैकल्पिक रोजगार

TOUCH 'n PASS

पाने में असफल रहे। अत: बाध्य होकर कृषि को अपनाया। फलत: जमीन पर बोझ बढ़ा। इससे कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ तथा ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ी।

2. ग्रामीण शिल्पों के विनाश ने कृषि तथा घरेलू उद्योग की एकता को तोड़ दिया। फलस्वरूप स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विनाश हुआ।
3. भारतीय औद्योगीकरण का मार्ग अवरुद्ध हो गया।
4. हस्तशिल्प केन्द्र के रूप में विकसित शहरों का पतन हो गया—ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि।
5. भारतीय दस्तकार वर्ग का पूर्णत: विनाश हो गया। इसी बात को बैंटिक ने 1834-35 में लिखा कि—"इस दरिद्रता के समान दरिद्रता वाणिज्य के इतिहास में शायद ही कभी रही बुनकरों की हड्डियाँ भारत के मैदानों को विरंजित (रंग) कर रही है।"
6. भारत पूर्णत: एक औपनिवेशिक देश बन गया।

II. सकारात्मक प्रभाव (Positive Effects)

ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. परंपरागत उद्योगों के पतन से प्राक् पूँजीवादी उद्योगों का पतन हुआ जो एक प्रकार से सामंती आदर्शों से प्रभावित उद्योगों के पतन को सूचित करता है। फलत: आधुनिक उद्योगों के विकास का आधार तैयार हुआ।
2. हस्तशिल्पी वर्ग ने आधुनिक सर्वहारा वर्ग का रूप धारण कर लिया। इस वर्ग के उदय ने अपने तरीके से सामाजिक आर्थिक संबंधों को प्रभावित किया।

ब्रिटिश अकाल नीति
(British Famine Policy)

ब्रिटिश शासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भारत में पड़ने वाले बार-बार अकालों की थी और इन अकालों के दौरान भी ब्रिटिश शासन अपने औपनिवेशिक हितों की पूर्ति में लगा रहा और अकाल से भी लाभ उठाने का कोई अवसर नहीं छोड़ा।

ब्रिटिश शासन में पड़ने वाले अकाल (Famines during British Reign)

1. कंपनी शासन (1757-1857) के दौरान पड़े अकाल
[Famines during Company's Reign (1757-1857)]

इसका वर्णन निम्न प्रकार है—

(i) इस दौरान भारत में अनेक बार अकाल पड़े। इस दौरान 12 बार अकाल पड़े। सर्वप्रथम 1769-70 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। इसमें लाखों लोग मारे गए। कंपनी ने अकाल पीड़ितों को सहायता एवं राहत पहुँचाने का कोई काम नहीं किया। बल्कि ऊँचे दामों पर बिक्री कर लाभ कमाया। इसकी प्रतिक्रिया में बंगाल में सन्यासी विद्रोह हुआ जिसका उल्लेख बंकिमचंद्र चटर्जी ने अपने उपन्यास 'आनन्द मठ' में किया है।

(ii) इसी प्रकार 1781-82, 1784, 1792 में मद्रास एवं उत्तरी भारत में अकाल पड़े। 1833 में आंध्रप्रदेश में भीषण अकाल पड़ा। 2 लाख लोग भुखमरी के शिकार हुए।

(iii) कंपनी शासन ने इन अकालों के समय तटस्थता की नीति बनाए रखी। अकाल पीड़ितों के हित में कोई सरकारी नीति या सहायता नहीं पहुँचाई गई।

2. क्राउन के अधीन पड़े अकाल (1858-1947) [Famines under the Crown (1858-1947)]

इसका वर्णन निम्न प्रकार है—

(i) 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में अकालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई।

(ii) 1860-61 ई० में दिल्ली-आगरा क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा और दो लाख व्यक्ति मारे गए।

(iii) 1865-66 में अकाल ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा को घर दबोचा और 20 लाख लोग मारे गए।

(iv) 1868-70 में मद्रास, बम्बई, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजपूताना अकाल से ग्रस्त हुए लगभग 14 लाख से अधिक लोग मारे गए।

TOUCH 'n PASS

(v) 19वीं सदी का सबसे भयंकर अकाल 1876-78 में पड़ा और इसमें मद्रास, मैसूर, बम्बई (महाराष्ट्र), उत्तरप्रदेश मुख्यत: प्रभावित हुए। जिसमें 50 लाख लोगों को अपनी जानें गवानी पड़ी।

(vi) इसके बाद भी 1896-97, 1900 में भीषण अकाल पड़े जिसमें लाखों लोग मारे गए।

(vii) विलियम डिग्बी के अनुसार 1854 से 1901 के बीच पड़ने वाले अकालों में 2 करोड़ 88 लाख से अधिक लोग मारे गए। 1943 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा जिसमें 30 लाख लोग मारे गए। ये अकाल और उनमें मरने वालों की भारी संख्या इस बात का संकेत है कि गरीबी और भुखमरी की जड़ें भारत में इतनी गहरी हो गई थी।

प्र.3. अकाल नीति के कारण एवं प्रभावों को संक्षेप में लिखिए।
Write in brief the causes and effects of Famine Policy.

उत्तर

अकाल के कारण
(Causes of Famine)

अकाल नीति के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश काल में पड़ने वाले ये अकाल केवल सूखे या मानसूनी वर्षा के अभाव का परिणाम नहीं थे क्योंकि अकाल के दिनों में भी भारत से खाद्यान्न का निर्यात किया जाता रहा। अत: स्पष्ट है ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने अधिकांश अकालों को जन्म दिया।
2. ब्रिटिश कृषि नीति जिसमें भू-राजस्व की अधिकता तथा कृषि का वाणिज्यीकरण शामिल था ने खाद्यान्न उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। किसानों की निर्धनता बढ़ी। फलत: दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हुई।
3. ब्रिटिश औद्योगिक नीति ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों का पतन कर दिया और आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं किया। फलत: बेकार शिल्पी और कारीगर कृषि की ओर उन्मुख हुए। कृषि पहले से ही पिछड़ी हुई थी और वह इन बढ़े हुए लोगों का दबाव वहन नहीं कर पाई। फलत: प्रति व्यक्ति उत्पादन में और भी कमी हो गई।
4. ब्रिटिश यातायात जैसे रेलवे के विकास ने सुदूर क्षेत्रों से खाद्यान्न की निकासी विदेशों की ओर संभव बनाई। फलत: उन स्थानों पर खाद्यान्न की कमी हो गई जिसका परिणाम अकाल के रूप में सामने आया।

अकाल का प्रभाव (Effects of Famine)

अकाल के प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश काल में पड़ने वाले अकालों में भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया।
2. ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ी।
3. कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से हस्तशिल्प उद्योग भी प्रभावित हुआ क्योंकि कृषि एवं उद्योग का अन्योन्याश्रित संबंध होता है।
4. बार-बार पड़ने वाले अकाल ने मानव मृत्यु दर में वृद्धि के साथ ही पशु संपत्ति का भी ह्रास हुआ।
5. चारे की कमी से बड़ी संख्या में पशुओं की मौत हुई। वस्तुत: कृषक अर्थव्यवस्था में पशुओं की मौत किसान की मौत से जुड़ी थी।
6. अकाल ने सामाजिक तनाव और राजनीतिक असंतोष को बढ़ाने में मद्द की। इसकी अभिव्यक्ति किसान विद्रोहों एवं जन असंतोष के रूप में देखी जा सकती है। जैसे—पाबना दंगे, दक्कन खेतिहार दंगे आदि।
7. कुल मिलाकर ब्रिटिश शासन में अकाल महामारी के रूप में मौजूद रहे। वास्तव में भारत में ब्रिटेन की प्रगति का इतिहास लगातार बढ़ते जा रहे अकाल और उनसे अधिकाधिक प्रभावित होने वाले लोगों का इतिहास है।

प्र.4. अकाल दूर करने के सम्बन्ध में नीतियों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the policies to prevent famine.

उत्तर

अकाल दूर करने के संबंध में नीतियाँ
(Policies to Prevent Famine)

अकाल दूर करने के सम्बन्ध में नीतियाँ निम्न प्रकार हैं—

1. अकाल के प्रति सरकार ने कोई स्पष्ट नीति नहीं बनाई। अकाल और राहत कार्यों के संदर्भ में कोई दिलचस्पी नहीं ली। वस्तुत: कंपनी अपने राज्य विस्तार की प्रक्रिया में ही संलग्न रही। उसे भारतीय जनता के कष्टों की चिंता नहीं थी।

TOUCH 'n PASS

2. 1792 के अकाल (मद्रास) के बाद सर्वप्रथम कम्पनी ने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए कुछ कार्य किए।
3. कंपनी शासन के दौरान स्थानीय स्तर पर कंपनी के अधिकारियों ने कुछ राहत कार्य आवश्य किए परंतु अकाल न पड़े और अकाल पड़ने के अवसर पर क्या सहायता एवं राहत कार्य किए जाए इसकी कोई निश्चित योजना नहीं बनाई। अर्थात् वर्तमान में स्थापित आपदा प्रबंधन नीति का अभाव था। क्राउन के शासनकाल में—
4. 1858 में ब्रिटिश क्राउन ने भारत की सत्ता अपने हाथों में ले ली फिर अकाल के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखा और सरकार का राहत कार्यों के संदर्भ में उत्तरदायित्व स्वीकार किया। इस संदर्भ में कई आयोग व समितियों का गठन किया गया।
5. 1860-61 में दिल्ली-आगरा क्षेत्र के दुर्भिक्ष के बाद प्रथम बार अकाल पीड़ितों को केन्द्रीय सहायता प्रदान की गई तथा कर्नल वेयर्ड के नेतृत्व में एक समिति गठित की गई। परंतु यह समिति कोई ठोस कार्य नहीं कर सकी।
6. उड़ीसा अकाल के बाद 1866 में जार्ज कैम्पबेल की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। समिति ने सुझाव पेश किया कि सरकार को राहत कार्य का भार स्वयं उठाना चाहिए, स्वयंसेवी संस्थाओं पर ही नहीं छोड़ना चाहिए।
7. अकाल पीड़ितों को सहायता व राहत पहुँचाने के लिए रेलवे, नहरों इत्यादि का काम आरंभ कर उसमें लोगों को रोजगार दिया जाए, भुखमरी रोकने के लिए सहायता की जाए।
8. लिटन के वायसराय काल में 1880 में रिचर्ड स्ट्रेची की अध्यक्षता में 'अकाल आयोग' गठित किया गया। इस आयोग ने अकाल एवं राहत सामग्री नीति के सदंर्भ में महत्त्वपूर्ण सिफारिश की—
   (i) अकाल की संभावना होने के पूर्व ही प्रभावित व्यक्तियों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराएँ जाएँ।
   (ii) असमर्थ एवं दरिद्र व्यक्तियों को भोजन उपलब्ध कराया जाए।
   (iii) अकाल प्रभावित क्षेत्रों में अनाज एकत्र करने की व्यवस्था होनी चाहिए। उस क्षेत्र से अनाज के निर्यात को प्रतिबंधित करना चाहिए।
   (iv) लगान एवं अन्य करों में छूट या राहत देनी चाहिए।
   (v) अकाल पीड़ित क्षेत्र से पशुओं को स्थानांतरित किया जाना चाहिए।
   (vi) प्रत्येक प्रांत में एक 'अकाल फंड' स्थापित किया जाना चाहिए।
   (vii) इस सिफारिश पर सरकार ने एक 'अकाल संहिता' (Farmine Code) बनाई 1883 में और दूसरा अकाल फंड जिसमें प्रति वर्ष ₹ 1 करोड़ राशि देने का प्रावधान था।
   (viii) अकाल संहिता में अकाल को रोकने तथा अकाल की स्थिति में जनता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए क्या-क्या कार्य किए जाए, नियमों का विस्तृत उल्लेख था।
9. 1900 में लॉर्ड कर्जन ने मैकडोनेल की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। इसके सुझाव थे—पशुओं एवं बीज के लिए अकाल के समय आर्थिक सहायता एवं अस्थायी जल प्रबंध करना, सरकारी राहत कार्यों के साथ-साथ गैर सरकारी साधनों का भी उपयोग करना चाहिए। कृषि की स्थिति सुधारने, सिंचाई एवं परिवहन की व्यवस्था करने का सुझाव दिया गया। इस अनुशंसा में सबसे प्रमुख बात यह थी कि इसमें सरकार को प्रजा में नैतिक साहस उत्पन्न करने के लिए कहा गया। इसके लिए आवश्यक है कि सरकार अकाल पीड़ितों को तुरन्त सहायता एवं आश्वासन देना आरंभ कर दे। इन सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया और इस दुर्भिक्ष नीति की निरंतरता आगे भी रही।
10. अंतिम दुर्भिक्ष आयोग 1943 में बना जो बंगाल दुर्भिक्ष आयोग के नाम से जाना जाता है। इसमें अखिल भारतीय खाद्यान्न परिषद् के गठन की अनुशंसा की गई।
11. कुल मिलाकर ब्रिटिश अकाल नीति आरंभ में अस्पष्ट थी और बाद में जब यह स्पष्ट नीति विकसित भी हुई तो उस पर पूर्ण अमल नहीं किया गया। इस तरह आयोग और संहिताएँ बनने के पश्चात् भी अकाल पड़ते रहे और यह ब्रिटिश अकाल नीति की सीमा है।

प्र.5. उपनिवेशवाद के अर्थ एवं प्रकृति को समझाइए।

Explain the meaning and nature of colonialism.

उत्तर

उपनिवेशवाद का अर्थ
(Meaning of Colonialism)

एक विदेशी क्षेत्र पर प्रत्यक्ष शासन के माध्यम से तरह-तरह का लाभ उठाना। इन लाभों में आर्थिक लाभों के साथ-साथ विदेशी जनसंख्या को विदेशी भूमि में बसाना भी शामिल है अर्थात् उपनिवेश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों पर

TOUCH 'n PASS

अधिकार जमा लेना। साम्राज्यवाद लोगों पर बाह्य प्रभुत्व का एक रूप है। साम्राज्यवाद प्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक शासन का रूप ले भी सकता है और नहीं भी ले सकता है किन्तु हर हालत में उसकी कोशिश यह रहती थी कि एकाधिकारी पूँजीवादी गतिविधियों के नए-नए क्षेत्रों में विस्तार की रक्षा की जा सके।

1. लेनिन के अनुसार—"साम्राज्यवाद पूँजीवाद का चरम रूप है अर्थात् साम्राज्यवाद पूँजीवादी विकास का वह चरण है जब एकाधिकार व वित्तीय पूँजी का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।"
2. उपनिवेशवाद वास्तव में साम्राज्यवाद को विकसित करने का तरीका था।
3. उपनिवेश प्राप्त करने की होड़ यूरोप में औद्योगिक क्रांति का प्रत्यक्ष परिणाम थी और भारत भी इस संदर्भ में ब्रिटेन का एक उपनिवेश बना। इंग्लैण्ड के आर्थिक ढाँचे में आए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश शासन की नीति शुरू से लेकर अंत तक एक सी नहीं रही। भारत के आर्थिक अधिशेष को हड़पने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए। परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद विभिन्न चरणों से होकर गुजरा और प्रत्येक चरण गुणात्मक दृष्टि से अन्य चरणों से भिन्न थे।

उपनिवेशवाद की प्रकृति (Nature of Colonialism)

उपनिवेशवाद की प्रकृति निम्न प्रकार है—

1. उपनिवेशवाद का मूल तत्त्व आर्थिक शोषण है जो विभिन्न तरीकों से किया जाता है।
2. एक उपनिवेश राष्ट्रीय उत्पादन की एक विशेष मात्रा का उत्पादन करता है इसका एक भाग उस उपनिवेश के रख-रखाव और निर्वाह के लिए आवश्यक होता है इसके अलावा जो बचता है वह उस उपनिवेश का आर्थिक अधिशेष होता है। यह आर्थिक अधिशेष कई तरीकों से हड़पा जा सकता है। इस अधिशेष को हड़पने का स्वरूप ही वास्तव में यह निश्चित करता है कि उपनिवेशवाद को किस नजर से देखा जाना चाहिए जैसे-जैसे हड़पने के स्वरूप में परिवर्तन आता चला जाता है, वैसे-वैसे औपनिवेशिक नीति में भी परिवर्तन आता रहता है।
3. उपनिवेशवाद का विकास एक ढाँचे के अंतर्गत होता है जिसमें कई के विचारों, व्यक्तित्वों और नीतियों का समावेश होता है लेकिन ऐसा नहीं है कि विचारों या व्यक्तियों के बदल जाने से उपनिवेशवाद की मूल प्रकृति में बदलाव आ जाता है अर्थात् उपनिवेश का शोषण जारी रहता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कृषि के वाणिज्यीकरण के उत्तरदायी कारक एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।

Describe the factors responsible for commercialisation of agriculture and their consequences.

उत्तर ब्रिटिश कृषि नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण था। कृषि के वाणिज्यीकरण का अर्थ—इस प्रकार के कृषि उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत करना जिसमें कृषि उत्पादों का प्रयोग (उपयोग) व्यापारिक मुनाफे के लिए किया जा सके। प्राक् ब्रिटिश भारत में उत्पादन उन वस्तुओं का होता था जो मानव के लिए आवश्यक थी तथा जिनका प्रयोग विनिमय के लिए होता था बाजार के लिए नहीं लेकिन अब किसान केवल वे वस्तुएँ उगाने लगा जिनका देशी और विदेशी बाजार के दृष्टिकोण से अधिक मूल्य था। इस तरह कृषि के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन हुआ।

कृषि के वाणिज्यीकरण के उत्तरदायी कारक
(Factors Responsible for Commercialisation of Agriculture)

ये कारण निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटेन में औद्योगीकरण जोरों पर था। अत: वहाँ कच्चे माल की आवश्यकता थी। अत: ऐसी फसलों के उत्पादन पर बल दिया गया जो ब्रिटिश उद्योगों एवं मजदूरों के खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।
2. भारत में पूँजीवादी व्यवस्था बढ़ने के साथ-साथ तथा नए भूमि संबंधों एवं लगान नीति के कारण किसान को अब नकद राशि की आवश्यकता थी इसलिए किसान उन फसलों को उगाने के लिए मजबूर होने लगा जिसका बाजार में क्रय विक्रय हो सके।

TOUCH 'n' PASS

3. 1853 के बाद ब्रिटिश पूँजीपतियों द्वारा भारत में पूँजी निवेश के कारण नील, चाय, कॉफी, रबर जैसी नकदी फसलों की खेती पर जोर दिया गया।
4. ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण पहलू भारतीय वस्तुओं का निर्यात करना तथा निर्यात के माध्यम से लाभांश प्राप्त करना था और निर्यात के अंतर्गत कृषि उत्पादों के निर्यात को महत्त्व दिया जाता था। यह निर्यात कृषि के वाणिज्यीकरण के माध्यम से तेजी से संभव था।
5. ईस्ट इंडिया कंपनी का चीन के साथ व्यापार के संदर्भ में व्यापारिक संतुलन चीन के पक्ष में था। कंपनी को इस व्यापारिक संतुलन को अपने पक्ष में करने की आवश्यकता थी। इसका उपाय कम्पनी ने भारत में ही चाय की खेती पर बल देकर चीन से होने वाले चाय के आयात को कम कर दिया। इसी प्रकार भारत में अफीम की खेती को बढ़ावा दिया ताकि इसका निर्यात चीन को कर संतुलन अपने पक्ष में रखा जा सके।
6. यातायात सुविधाओं का विकास भी कृषि के वाणिज्यीकरण के लिए एक प्रमुख कारक सिद्ध हुआ। अब शहर ग्राम संबंधों में अलगाव की स्थिति समाप्त हुई। अत: गाँव-गाँव एवं गाँव-शहर जुड़ाव द्वारा वाणिज्यीकरण को बढ़ावा दिया।

कृषि के वाणिज्यीकरण के परिणाम (Consequences of Commercialisation of Agriculture)

कृषि के वाणिज्यीकरण के परिणाम को दो भागों में विभाजित किया गया है—

I. नकारात्मक (Negative)

नकारात्मक परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. कृषकों की गरीबी और ऋणग्रस्तता को बढ़ावा मिला क्योंकि व्यापारी वर्ग खड़ी फसलों को सस्ते दामों पर ले लेते थे क्योंकि अपनी तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अपनी फसल मंडी में न ले जाकर कटाई के समय खेत में ही बेच देते थे।
2. फसलें प्राय: औद्योगिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उगाई जाती थी। अत: खाद्यान्नों में भारी कमी होने लगी। फलत: अकाल और दुर्भिक्ष प्राय: बढ़ने लगे जिसने जन जीवन को अव्यवस्थित कर दिया। वस्तुत: अकाल तो प्राक् ब्रिटिश भारत में ही पड़ते थे लेकिन इसका कारण धनाभाव न होकर यातायात के साधनों का अभाव होता था। साथ ही प्राकृतिक कारण भी होते थे। ब्रिटिश भारत में अशक्त और सूखों का प्रत्यक्ष कारण ब्रिटिश औद्योगिक एवं कृषि नीति थी।
3. उन्हीं फसलों तथा किस्मों को बढ़ावा दिया गया जिनकी विदेशी बाजारों में जरूरत थी पंजाब में अमेरिकी कपास की खेती को बढ़ावा दिया जाना इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसका उद्देश्य लंकाशायर के उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराना था क्योंकि अमेरिकी गृह युद्ध के बाद अमेरिका से कपास आना बंद हो गया था।
4. इस प्रकार कृषक को एक अत्यंत दूरस्थ एवं अपरिचित विदेशी बाजार पर आश्रित बना दिया गया जिसके साथ उसका एकमात्र संबंध बिचौलियों की एक सशक्त शृंखला के माध्यम से था। ये बिचौलिए अपने मुनाफे के लिए किसानों का जमकर शोषण करते थे। मूल्यों में अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव का भार भी अंतत: किसानों को ही वहन करना पड़ता था। फलत: उसका जीवन और भी कष्टपूर्ण हो गया। 1860 के दशक में बॉम्बे के कपास के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई थी। इसका कुछ लाभ किसानों को मिला था किन्तु 70 के दशक के मध्य अमेरिकी गृहयुद्ध समाप्त हो जाने से इंग्लैण्ड को कपास की आपूर्ति सुलभ हो गई। फलत: बॉम्बे के कपास उत्पादकों को भारी हानि हुई। जिसकी परिणति ऋणग्रस्तता, अकाल व खेतिहर दंगों में देखी जा सकती है।
5. किसानों की साहूकारों पर निर्भरता बढ़ती गई क्योंकि नकदी फसलों की खेती में अत्यधिक लागत आती थी और उन्हें साहूकारों से अग्रिम राशि लेनी पड़ती थी। फलत: किसानों का शोषण बढ़ा।
6. चाय, नील जैसी नकदी फसलों की खेती का नियंत्रण यूरोपीय बागान मालिकों के हाथों में था। इसमें श्रमिकों की भर्ती दूर दराज के क्षेत्रों से अनुबंध पद्धति के द्वारा की जाती थी। जिसमें उनकी स्थिति दासों के समान हो गई।
7. देश के विदेश व्यापार, जहाजरानी एवं बीमे के कारोबार पर वस्तुत: ब्रिटिश व्यापारिक प्रतिष्ठानों का पूर्ण नियंत्रण था। अत: बढ़ते निर्यात के लाभांश का एक बहुत बड़ा हिस्सा विदेशी फर्में हड़प कर लेती थी।
8. कृषि के वाणिज्यीकरण का स्वरूप औपनिवेशिक था इसलिए भारत का कृषि ढाँचा इंग्लैण्ड के उद्योगों की दया पर निर्भर हो गया।

TOUCH 'n' PASS

9. कृषि का व्यवसायीकरण स्वाभाविक रूप से नहीं हुआ बल्कि सरकारी नीति द्वारा थोपा गया था। फलत: इसका लाभ किसानों को नहीं ब्रिटिश सरकार को मिला। इंग्लैण्ड में कृषि के व्यवसायीकरण का लाभ किसानों को मिला क्योंकि वहाँ कृषि की आंतरिक पैदावार के बाजार में वृद्धि कृषि उत्पादन के मूल्यों में वृद्धि के साथ-साथ घटित हुई थी। साथ ही खेती के लिए नए-नए वैज्ञानिक तरीके अपनाए गए और फसलों का उत्पादन स्थानीय जरूरतों के संदर्भ में किया गया। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया भारत में होने वाले कृषि के व्यवसायीकरण में आरंभ से ही गायब थी।

II. सकारात्मक (Positive)

सकारात्मक परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. कृषि के वाणिज्यीकरण से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलगाव की स्थिति की समाप्ति हुई। विभिन्न क्षेत्रों का आपसी जुड़ाव हुआ, ग्रामीण-शहरी सम्पर्क बढ़ा, अर्थव्यवस्था एकीकृत हुई। इसने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार तैयार किया।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ गई और इसके प्रभाव से उच्च स्तरीय सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाओं का विकास हुआ।
3. बढ़ती हुई आर्थिक परेशानियों एवं यातायात में सुधार के कारण गाँव-गाँव और गाँव-शहर परस्पर समीप आए। उनमें आपसी सहयोग की भावना बढ़ी। इस सहयोग से राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जिसने किसान को शोषणकारियों के विरुद्ध विद्रोह के लिए तैयार किया। फलत: बहुत सारे काश्तकारी अधिनियम पास किए गए, किसानों द्वारा शोषणकारी सरकार का संगठित रूप से विरोध करने के लिए किसान संगठन भी बने।
4. विशेष क्षेत्रों में विशेष फसल उत्पादन से विशेषीकृत क्षेत्र का विकास हुआ।

कुल मिलाकर कृषि का वाणिज्यीकरण ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों से परिचालित था। फलत: इसका लाभ मुख्यत: इंग्लैण्ड व अंग्रेजों को मिला। यह एक थोपी गई प्रक्रिया थी जिसमें किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ और इसका जो भी थोड़ा बहुत सकारात्मक प्रभाव दिखाई पड़ता है वह ब्रिटिश नीति का उद्देश्य नहीं था और यह लाभ भी हानि की तुलना में नगण्य था।

प्र.2. धन का निष्कासन से आप क्या समझते हैं? धन निकासी की अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
What do you understand by Drain of wealth? Give a critical examination of the concept of Drain of wealth.

उत्तर

धन का निष्कासन
(Drain of Wealth)

धन की निकासी का तात्पर्य भारतीय धन संपदा का विदेशों में गमन और उसके बदले भारत को कुछ भी प्राप्त न होना। प्लासी के युद्ध के पश्चात् धन के निष्कासन की प्रक्रिया शुरू हुई। प्लासी विजय से पूर्व यूरोप के व्यापारी बाहर से धन लाकर इन वस्तुओं को खरीदते थे और अपना मुनाफा रखकर विदेशी बाजारों में बेचते थे। परन्तु बंगाल में कम्पनी की सत्ता की स्थापना से भारतीय धन और वस्तुओं का प्रवाह अत्यधिक मात्रा में इंग्लैण्ड को होने लगा। सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 1867 में England Debts to India धन की निकासी के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। आगे आर०सी० दत्त, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, जी०वी० जोशी, राणाडे आदि विद्वानों ने धन निकासी के संदर्भ में ब्रिटिश की आलोचना की।

धन निकासी के स्रोत (Sources of Drain and Wealth)

धन निकासी के स्रोत निम्न प्रकार हैं—

1. अंग्रेज कंपनी के अधिकारियों के वेतन, भत्ते, पेंशन।
2. भारतीय सार्वजनिक ऋण पर दिया जाने वाला ब्याज (Interest)-वस्तुत: भारत में साम्राज्य विस्तार एवं उसी क्रम में हुए विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा लिए गए ऋण पर ब्याज की अदायगी करना था।
3. कंपनी के शेयर धारकों को दिया जाने वाला लाभांश (dividend)
4. व्यापार, उद्योग, बागान में निवेश की गई निजी पूँजी की आय।
5. Home Charges यानी गृह प्रभार का खर्च-इसके तहत् भारत की ब्रिटिश सरकार द्वारा ब्रिटेन में किया गया खर्च जैसे—इंग्लैण्ड में नियुक्त यूरोपीय अधिकारियों के वेतन भत्ते, सैन्य खरीददारी, भारत सचिव के ऑफिस का खर्च आदि।

TOUCH 'n PASS

6. इंग्लैण्ड में रखे गए सुरक्षित कोष। इस कोष में भारतीय मुद्रा को रखा गया किन्तु उसमें किसी तरह का ब्याज नहीं मिलता था। फलतः भारत को भारी हानि उठानी पड़ी।

प्रक्रिया (Process)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. बंगाल से संपत्ति का दोहन 1757 में आरंभ हुआ। इसके बाद कंपनी के सेवक भारतीय शासकों, जमींदारों, व्यापारियों तथा साधारण जनता से झटककर जमा की गई बेपनाह दौलत अपने देश ले जाने लगे। वर्ष 1758-65 के बीच उन्होंने लगभग 60 लाख पौंड की दौलत ब्रिटेन भेजी। यह धन कंपनी को प्राप्त होने वाले व्यापारिक मुनाफे के अतिरिक्त था।
2. 1765 में कंपनी को जब बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई तब उसे धन प्राप्त करने का अतिरिक्त स्रोत मिला। यह बंगाल के राजस्व से ही भारतीय माल खरीदकर उसका निर्यात करने लगी। इन खरीदों को निवेश (Investment) कहा जाता था। इस तरह इस निवेश के रूप में बंगाल का धन विदेश भेजा गया।
3. 1765-70 के बीच कंपनी ने मालों के रूप में लगभग 40 लाख पाउंड का धन बाहर भेजा।
4. रेलों, बैंकों, उद्योगों के द्वारा भी भारत का अधिकांश धन इंग्लैण्ड ले जाया गया। धन निकासी का बड़ा सटीक वर्णन बोर्ड ऑफ रेवेन्यू (मद्रास) के अध्यक्ष जॉन सुल्लिवान ने किया—"हमारी व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज की तरह काम करती है उसके जरिए गंगा तट से सारी अच्छी चीजों को सौंप लिया जाता है और टेम्स नदी के किनारे लाकर उसे निचौड़ा जाता है।"
5. 1758 के बाद यह दोहन बढ़ता ही गया। 19वीं सदी के अंत में यह दोहन भारत की राष्ट्रीय आय का लगभग 9 प्रतिशत था।

धन निकास की मात्रा (Quantity of Drain of Effect)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जॉर्ज विनेग के अनुसार 1835-51 तक भारत से प्रतिवर्ष 42, 21, 611 पौंड प्रतिवर्ष की दर से इंग्लैंड भेजा गया।
2. जॉन डिग्वी के अनुसार 1757-1815 के बीच लगभग 10 करोड़ पौंड का धन इंग्लैण्ड ले जाया गया।
3. वस्तुतः भारत से कितना धन इंग्लैंड ले जाया गया इसका आंकलन करना कठिन है किन्तु इससे स्पष्ट है कि एक बहुत बड़ी राशि की निकासी हुई और यह राशि सरकारी आँकड़ों से कहीं अधिक रही।

प्रभाव (Effect)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. धन की निकासी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को खोखला कर दिया। ब्रिटिश उद्योगों के विकास के लिए भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों को नष्ट कर दिया गया।
2. कृषक वर्ग की तबाही हुई। अंग्रेजों ने किसानों को भू-राजस्व के बोझ से लाद दिया और इस आय को पुलिस, प्रशासन, सेना के ऊपर खर्च किया। फलतः गाँवों में तेजी से निर्धनता बढ़ी।
3. कृषि उत्पादन में गिरावट आई क्योंकि अधिक लगान के कारण किसान अच्छे खाद बीज का उपयोग नहीं कर पाया।
4. भारत में पूँजी संचय नहीं हो पाया। फलतः उद्योगों का विकास अवरुद्ध हो गया।
5. दुर्भिक्ष में लाखों लोगों की मौत हुई क्योंकि जनता के पास अनाज खरीदने को भी धन मौजूद नहीं था।
6. धन की निकासी ने इंग्लैण्ड में औद्योगीकरण को संभव बनाया और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में सहायक सिद्ध हुई।

धन निकासी का राष्ट्रीयता के विकास में योगदान
(The Contribution of Drain of Wealth in the Development of Nationalism)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. धन-निष्कासन सिद्धांत ने अंग्रेजों के शोषण मूलक चरित्र को उजागर किया। फलतः आरंभिक भारतीय बुद्धिजीवियों में ब्रिटिश के द्वारा भारतीयों के शुभचिंतक होने का नारा, एक धोखा नजर आया। इन बुद्धिजीवियों ने एकजुट होकर ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के खिलाफ आवाज उठाई और इस क्रम में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

TOUCH 'n PASS

2. राष्ट्रीय आंदोलन के विकास क्रम में धन निकास का मुद्दा सदैव अंग्रेजों के विरुद्ध एक हथियार के रूप में रहा।
3. धन निकासी के विरोध में स्वराज/स्वदेशी की माँग।

विचारणीय पहलू (Aspects to be Considered)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने धन निकासी नीति की जमकर आलोचना की है। उनके अनुसार धन निकासी से भारतीयों को कुछ नहीं मिला सिवाय गरीबी और तंगहाली के।
2. साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने धन-निष्क्रमण सिद्धांत को अस्वीकार किया। उनके अनुसार इंग्लैण्ड को जन-धन प्राप्त हुआ। वह भारत की अमूल्य सेवा करने के बदले प्राप्त हुआ।
3. अंग्रेजों ने भारत में उत्तम प्रशासनिक व्यवस्था, कानून व न्याय व्यवस्था की स्थापना के बदले ही धन प्राप्त किया।
4. किन्तु यह निर्विवाद है कि भारत में चाहे ब्रिटिश रेलवे, प्रशासनिक व्यवस्था आदि का विकास हुआ हो इससे भारत का स्वाभाविक विकास नहीं बल्कि विनाश ही हुआ।

धन निकासी की अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण
(Critical Examination of the Concept of Drain of Wealth)

धन निकासी की अवधारणा के आलोचनात्मक परीक्षण को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है—

1. ब्रिटिश शासक समर्थक बहुत से विद्वानों ने धन निकासी अवधारणा को गलत, भ्रामक एवं ब्रिटिश शासन को जानबूझकर बदनाम करने वाला षड्यन्त्र कहा। इनके अनुसार धन निकासी के जो भी अनुमान दिये गए वे सब तथ्यों को तोड़मोड़कर बढ़ाचढ़ा कर पेश किये गए ताकि ब्रिटिश शासन को बदनाम किया जा सकें और उसके खिलाफ भारतीय जनता को भड़काया जा सकें। इन समर्थकों ने निम्न तर्कों के आधार पर धन निकासी की आलोचना की।
2. निकासी को आयातों पर निर्यातों की अधिकता के रूप में परिभाषित किया गया। इनके अनुसार समूचे निर्यात आधिक्य को निकासी माना गया किन्तु इस निर्यात आधिक्य में एक भाग अदृश्य आयातों के लिए किया जाने वाला भुगतान ही होता है। इस अदृश्य आयातों में जहाजरानी, बीमा, बैंकिंग, सेवाएँ, भारतीय छात्रों एवं पर्यटकों द्वारा विदेशों में किया गया खर्च शामिल होता है। इस तरह के अदृश्य माँगों का भुगतान तो हर देश को करना पड़ता है। इसे निकासी नहीं माना जा सकता।
3. इसी प्रकार पूँजी खाते में व्यापार संतुलन का गलत रूप प्रस्तुत किया गया है। निर्यात अधिशेष की गणना करते समय निकासी सिद्धांत के पक्षधरों ने सोने एवं चाँदी के भारी आयात की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया।
4. यह कहना भी गलत है कि निर्यात आधिक्य के बदले भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। निकासी में सबसे बड़ा हिस्सा विदेशी ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज था। भारत में यह ऋण रेलवे के विकास, सिंचाई साधनों तथा अन्य उद्योगों के विकास के लिए लिया गया था। अत: इन ऋणों से भारत में जो काम प्रारंभ हुआ उससे भारत को बहुत लाभ हुआ। इन लाभों के बदले यदि भारत को ब्याज के रूप में थोड़ी सी रकम का भुगतान करना पड़ा हो तो उसे निकासी नहीं कहा जा सकता, ऐसा तो अर्थशास्त्र का अज्ञाता ही कह सकता है।
5. ये ऋण तो भारत के आर्थिक विकास एवं संपन्नता के सूचक थे। यदि इन ऋणों के रूप में भारत को विदेशी पूँजी प्राप्त नहीं हुई होती तो भारत का अनेक क्षेत्रों में विकास रूक जाता। इसके अलावा भारत को यह ऋण कम बयाज दर पर प्राप्त हुए थे, अत: इन ऋणों के लिए भारत को इंग्लैंड का आभार मानना चाहिए। ऐसी स्थिति में ऋणों की अदाएगी ब्याज के भुगतान को निकासी कहना सर्वथा अनुचित है।
6. गृह व्यय एवं यूरोपीय कर्मचारियों द्वारा अपनी बचत को बाहर भेजने के बारे में इनका तर्क था कि यह धनराशि भेजना भी निकासी नहीं है। वस्तुत: भारत को नि:स्वार्थ, योग्य ब्रिटिश अधिकारियों की जो सेवाएँ प्राप्त हुई तथा उन्होंने जो विदेशी आक्रमण से सुरक्षा एवं लोककल्याण के लिए प्रशासन चलाने वाली उत्तम सरकार उपलब्ध कराई उसके बदले में ही भारत को गृह प्रभार तथा कर्मचारियों के वेतन के रूप में कुछ खर्च करना पड़ा। यदि अंग्रेज विदेशी आक्रमणों से रक्षा करके शांति एवं आंतरिक सुरक्षा का वातावरण न बनाते तो भारत में किसी प्रकार की प्रगति न होती।

TOUCH 'n PASS

7. इस प्रकार अंग्रेजों के अनुसार भारत से इंग्लैण्ड को ऐसा कोई भुगतान नहीं किया जा रहा था जिसके बदले में उसे वस्तु या सेवा के रूप में कुछ न प्राप्त हो रहा हो। अर्थात् कुछ-न-कुछ तो मिल ही रहा था। अत: निकासी की अवधारणा अधारहीन कल्पना की उड़ानमात्र थी। विकास के तत्त्वों को ग्रहण करने के पश्चात् आभार मानने के बजाए उसका तिरस्कार करने के समान थी।

धन निकासी के समर्थकों का पक्ष (Side of the Supporters of Drain of Wealth)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. राष्ट्रवादी आर्थिक विद्वानों ने ब्रिटिश शासन के समर्थकों की समस्त आलोचनाओं का जवाब देते हुए सिद्ध किया कि निकासी की अवधारणा एक ठोस एवं वास्तविक अवधारणा है। इनका तर्क है कि अदृश्य आयातों के लिए किये जाने वाले भुगतान से वे भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने निकासी की गणना करते समय पहले ही जहाजरानी के किराए, बीमा व्यय आदि को ध्यान में रखा है।
2. यदि कोई सेवा देश के लिए उपयोगी है और उसे विदेशों से ही प्राप्त किया जा सकता है तो उसके लिए किये गए भुगतान निश्चय ही निकासी में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यदि वह सेवा निरर्थक है अथवा भारत में ही उपलब्ध है तो ऐसी विदेशी सेवा के लिए किया गया भुगतान अवश्य ही निकासी में शामिल होगा।
3. भारतीय राष्ट्रवादी इस बात से सहमत नहीं है कि विदेशी ऋण एवं विदेशी पूँजी से भारत को बड़ा लाभ मिला। इन विद्वानों का कहना था कि पहली बात तो यह है कि भारत में विदेशी पूँजी की आवश्यकता थी ही नहीं, और दूसरी बात भारत को विदेशी पूँजी की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि अंग्रेज भारत की सम्पत्ति को ले जाते रहे। इससे भारत में पूँजी संचय कम हुआ। यदि भारत में पूँजी रहती तो भारत को रेलवे या अन्य विकास के लिए ब्रिटिश पूँजी की जरूरत नहीं पड़ती। फिर यह विदेशी पूँजी भी एक तरह से भारत से गई पूँजी थी, जिसे अंग्रेज अनेक बहानों से ले गए थे।
   इन ऋणों के लिए भारत को ब्याजा के रूप में एक बड़ी रकम देनी पड़ी। इस प्रकार यह समूची प्रक्रिया एक चक्र के रूप में चलती रही और भारत का शोषण करती रही।
4. भारत द्वारा इंग्लैण्ड से लिए गए ऋण तथा ऋणों पर दिए गए ब्याज को निकासी न माना जाता यदि वह ऋण भारत ने अपनी इच्छा से लिया होता। किन्तु ये ऋण भारत पर जबरन लाद दिये गए। विदेशी पूँजी का जिन क्षेत्रों में निवेश किया गया उससे भारत को उतना लाभ नहीं हुआ जितना ब्रिटिश शासक बढ़ा चढ़ाकर बताते हैं।

प्र.3. उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Explain different stages of Colonialism in detail.

उत्तर

उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण
(Colonialism : Different Stages)

उपनिवेशवाद के तीन विभिन्न चरण माने जाते हैं—

1. वाणिज्यिक पूँजीवादी चरण [Commercial Capitalism Stage (1757-1813 AD)]
2. औद्योगिक पूँजीवादी चरण [Industrial Capitalism Stage (1813-1860 AD)]
3. वित्तीय पूँजीवादी चरण 1860 के बाद [Financial Capitalism Stage (After 1860)]

1. वाणिज्यिक पूँजीवादी चरण (1757-1813 AD)
[Commercial Capitalism Stage (1757-1813)]

पृष्ठभूमि (Background)—इसकी पृष्ठभूमि को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 18वीं शताब्दी में भारत एक विशाल कृषि प्रधान और औद्योगिक देश था। भारत के बने हुए कपड़े एशिया और यूरोप के बाजारों में निर्यात किए जाते थे।
2. कृषि एवं उद्योग का संतुलन था और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में व्यापारिक संतुलन भारत के पक्ष में था क्योंकि भारत के पास निर्यात के लिए बहुत कुछ था जबकि आयात करने के काबिल कुछ भी नहीं था।
3. भारतीय पूँजीपति के शक्तिशाली होने से पहले ही यूरोपीय देशों के पूँजीपति यहाँ आए और उनमें आर्थिक-राजनीतिक अधिकार के लिए प्रतिस्पर्द्धा हुई और इस प्रतिस्पर्द्धा में ब्रिटिश पूँजीपति सफल हुए।

TOUCH 'n' PASS

लक्ष्य (Aim)—इसके लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

1. इस काल में लक्ष्य था भारत में अत्यधिक पूँजी का संग्रह
2. भारत के व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित करना
3. कंपनी भारत में वस्तुओं को कम-से-कम कीमत पर खरीदे और यूरोप में अधिक-से-अधिक कीमत पर बेचे ताकि अधिक-से-अधिक लाभ कमा सके।
4. सैनिक शक्ति, किले, व्यापार केन्द्र तथा सामुद्रिक बेड़े का निर्माण हेतु भारी धन राशि प्राप्त करना।
5. भारतीय प्रशासन, न्यायिक व्यवस्था, यातायात, संचार तथा औद्योगिक व्यवस्था में कोई मौलिक परिवर्तन किए बगैर पूँजी प्राप्त करना।

प्रक्रिया (Process)—इसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

1. इंग्लैण्ड के व्यापारियों को घूस देकर कंपनी ने भारत से दूर रखा।
2. कंपनी द्वारा अन्य यूरोपीय शक्तियों से फ्रांस, डच से युद्ध करना पड़ा ताकि भारत पर कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो सके।
3. नौसैनिक शक्ति के बल पर भारतीय व्यापारियों को विदेशी व्यापार से वंचित करना प्रारंभ किया।
4. प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं दक्षिण के कुछ हिस्सों पर नियंत्रण।
5. विजित क्षेत्रों की सरकारी आय पर कंपनी का पूरा नियंत्रण।
6. निम्नतम कीमत पर माल हड़पने के लिए बल प्रयोग।
7. बंगाल के भू-राजस्व से प्राप्त धन का 'निवेश' बंगाल से वस्तु की खरीदारी में करके यूरोप में उसका निर्यात कर लाभ प्राप्त किया गया। इस प्रकार धन की निकासी द्वारा लाभ प्राप्त करना।

परिणाम (Consequence)—इसके परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. भारत से धन की निकासी, परिणामस्वरूप भारत गरीब हुआ और इंग्लैण्ड अमीर होता गया।
2. भारत से प्राप्त पूँजी ब्रिटेन के औद्योगीकरण में सहायक
3. शिल्पकारों को न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी भी नहीं दी गई। फलतः कृषि पर दबाव बढ़ा।

2. औद्योगिक पूँजीवादी चरण (1813-1860) [Industrial Capitalism Stage (1813-1860)]

पृष्ठभूमि (Background)—इसकी पृष्ठभूमि को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. प्रथम चरण में भारत की प्रत्यक्ष लूट से कंपनी के पास अत्यधिक पूँजी का संचय।
2. इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के विस्तार में यह पूँजी सहायक हुई।
3. इंग्लैण्ड में 1765-85 ई० के बीच में अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए जैसे-कताई की मशीन, स्टीम इंजन, पावर लूम, वाटरफ्रेम आदि।
4. औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैण्ड को संसार का प्रमुख उत्पादक एवं निर्यातक देश बना दिया। फलतः ब्रिटेन की आर्थिक प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। यह वाणिज्यिक पूँजीवाद से मुक्त व्यापार पूँजीवाद में परिवर्तन था अर्थात् नए औद्योगिक वर्ग ने ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक प्रभुसत्ता को सीमित करने तथा इसे ब्रिटिश संसद के अधीन करने का आंदोलन प्रारंभ किया।
5. ब्रिटिश उद्योगपति वर्ग को बढ़ते हुए उत्पादन के खपत के लिए बाजारों की आवश्यकता थी और भारत जैसा विशाल और अधिक जनसंख्या वाला देश उनके लिए जबर्दस्त आकर्षण था।

लक्ष्य (Aim)—इसके लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल और ब्रिटिश कारखानों में काम करने वालों के लिए खाद्यानों की प्राप्ति।
2. भारत का उपयोग ब्रिटेन की मशीन निर्मित वस्तुओं के एक बाजार के रूप में करना।
3. इसके लिए भारत में प्रशासनिक, शैक्षणिक, सामाजिक नीतियों में हस्तक्षेप करना। उनकी रुचि को ब्रिटिश उपभोक्ता के रूप में परिवर्तित कर देना था। प्रथम चरण के लक्ष्य जारी रहे।

प्रक्रिया (Process)—इसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

1. 1813 का एक्ट पारित जिसके अनुसार भारत में मुक्त व्यापार की नीति (Free Trade Policy) अपनाई गई। कंपनी को भारत में व्यापार करने के एकाधिकार से वंचित कर दिया गया। 1833 में सभी प्रकार के एकाधिकारिक गतिविधियों पर रोक लगा दी गई।

TOUCH n PASS

2. ब्रिटिश को संपत्ति खरीदने एवं बसने का अधिकार भारत में दिया गया।
3. ब्रिटेन को निर्यात किए जाने वाले तैयार भारतीय माल पर अत्यधिक आयात शुल्क लगाया गया।
4. संचार, यातायात साधनों का विकास कर, दूरस्थ क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त करना और तैयार माल ब्रिटेन भेजना।

परिणाम (Consequence)—इसके परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. भारतीय हस्तशिल्प उद्योग, कुटीर उद्योग का पतन होने लगा। इंग्लैण्ड के मशीन से बने कपड़ों ने भारतीय बुनकरों को बर्बाद कर दिया।
2. देश में बने पीतल, ताँबे के बर्तनों के स्थान पर यूरोप से आयातित कलईदार बर्तन और एल्युमिनियम के सामान का प्रयोग होने लगा।
3. विभिन्न क्षेत्रों में रेलों (Railways) के पहुँचने से वहाँ सस्ता विदेशी इस्पात एवं लोहा पहुँच गया जिससे लोहा गलाने वाले देशी उद्योग वस्तुत: समाप्त ही हो गए। इस तरह गाँव और शहर दोनों स्थानों में रहने वाले लाखों शिल्पियों, कारीगरों, बुनकरों, लोहारों का व्यवसाय चौपट हो गया और खेती ही उनके लिए विकल्प बचा। अत: भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा। इस प्रकार भारत जो कृषि एवं उद्योग की मिली जुली पद्धति वाला देश था अब जबरन ब्रिटेन के औद्योगिक पूँजीवाद का कृषि प्रधान उपनिवेश बना दिया गया।
4. कच्चे माल के निर्यात को बढ़ावा देने के क्रम में कृषि के वाणिज्यीकरण पर बल दिया गया जिसमें—नील, कपास, अफीम, चाय, जूट, कॉफी आदि के उत्पादन हेतु कृषकों को मजबूर किया गया। साथ ही ब्रिटिश मजदूरों के लिए खाद्यान्न का भी निर्यात हुआ। फलत: भारत में अकाल और दुर्भिक्ष की बारंबारता बढ़ी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सात अकाल पड़े तो उत्तरार्द्ध में 14 अकाल।
5. आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पर बल दिया गया जिससे भारतीय वर्गों में असमानता आई।
6. कुल मिलाकर भारतीय व्यापार एवं उद्योग धंधों का विनाश हुआ। कपड़ों के उत्पादक देश को विदेशी कपड़ों से भर दिया। भारत को गरीबी, बीमारी, भूखमरी का घर बना दिया।

3. वित्तीय पूँजीवाद चरण (1860 के बाद) [Financial Capitalism Stage (After 1860)]

पृष्ठभूमि (Background)—इसकी पृष्ठभूमि को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. यह चरण भारत के आंतरिक एवं बाह्य घटनाओं का परिणाम था। आंतरिक दृष्टि से भारत के संपूर्ण सामाजिक ढाँचे पर पहले दो चरणों के विनाशकारी परिणाम आने शुरू हो गए।
2. 1857 का विद्रोह ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विस्तार, भारतीय रियासतों के अधिक क्षेत्रों को अपने राज्य में मिलाने, कंपनी के अधिकारियों की उत्पीड़क लगान व्यवस्था तथा भारतीय कला उद्योग के विनाश का सीधा परिणाम था।
3. विद्रोह को दबा दिया गया तथापि यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आम जनता में नाराजगी है परिणामस्वरूप उपनिवेशवादी नीति में परिवर्तन आवश्यक हो गया।
4. बाह्य दृष्टिकोण से इंग्लैण्ड के अलावा यूरोप के अन्य देशों जैसे फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका तथा जापान में भी औद्योगीकरण हुआ। इन देशों ने अपने माल के लिए मंडियों की तलाश तथा कच्चे माल की खोज एशिया और अफ्रीका में आरंभ कर दी। फलत: अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तीव्र संघर्ष छिड़ गया।
5. औद्योगीकरण तथा औपनिवेशिक शोषण से इंग्लैण्ड में असीमित मात्रा में पूँजी जमा हो गई थी। यह पूँजी कुछ बैंकों, उद्योगपतियों तथा उत्पादक संघों तक ही सीमित थी। अत: इस पूँजी के निवेश की समस्या उत्पन्न हुई। ऐसा माना गया कि यदि यही पूँजी विदेशों में कृषि, खनिज सम्पदा अथवा यातायात के साधनों के विकास में लगाई जाए तो ज्यादा लाभप्रद रहेगी क्योंकि यह सुरक्षित तो रहेगी ही और उपनिवेशों में मजदूरी सस्ती रहने के कारण अधिक मुनाफा कमाया जा सकता था।

लक्ष्य (Aim)—इसके लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

भारत में ब्रिटिश पूँजी का निवेश व्यापारिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक हो गया कि रेल लाइनों का निर्माण, सड़कों का विकास, सिंचाई के साधन, देश भर में एक जैसी डाक व्यवस्था, यूरोप के ढंग की बैंक व्यवस्था आरंभ की जाए।

TOUCH 'n' PASS

प्रक्रिया (Process)—इसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

1. पूँजी निवेश का मुख्य हिस्सा सार्वजनिक ऋण था जिसे ब्रिटेन ने भारत पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए अपनाया।
2. ब्रिटिश पूँजी निवेश का दूसरा क्षेत्र पूँजी निर्माण, रेल निर्माण था और उस पर सरकार से पूँजीपति को 5 प्रतिशत ब्याज की गारंटी मिलती थी।
3. निवेश के अन्य क्षेत्र थे सिंचाई परियोजनाएँ, चाय, कॉफी, रबड़ के बागान, जूट मिलें, जहाजरानी, बैंकिंग आदि।
4. भारत में औद्योगीकरण पर नियंत्रण के लिए बैंकिंग व्यवस्था पर नियंत्रण आवश्यक था। अत: Imperial Bank of India तथा विदेशी एक्सचेंज बैंक की स्थापना की गई। इन बैंकों के मुख्यालय भारत के बाहर थे और इनका स्वरूप पूर्णत: विदेशी था।
5. भारतीय पूँजी पर नियंत्रण तथा औद्योगिक विकास पर प्रमुख जमाएँ रखने के लिए Managing Agencies की प्रणाली को अपनाया गया। इस प्रणाली के जरिए Managing Agencies विभिन्न औद्योगिक एवं कल कारखानों को बढ़ावा देती है। काफी हद तक उनके लिए पूँजी इकट्ठा करती है। उनके संचालन एवं उत्पादन पर अपना प्रभुत्व जमाए रखती हैं। इस संदर्भ में सबसे मजबूत कंपनियाँ अंग्रेजों की थी जैसे—Andrew Yule & Company आदि।

परिणाम (Consequence)—इसके परिणाम निम्न प्रकार हैं—

1. पूँजी विनियोजन का भारत के औद्योगिक विकास से कोई संबंध नहीं था। अंग्रेजों को भारत में अपना व्यापार फैलाने में सहायक सिद्ध हुआ।
2. भारत को आर्थिक दृष्टिकोण से निर्बल कर दिया गया। सार्वजनिक ऋण पर भारत को ब्याज व लाभांश भी देना पड़ा।
3. भारतीयों को स्वशासन एवं लोकतंत्र के लिए हमेशा के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया।
4. आधुनिक समाज संस्कृति और राजनीतिक विचारों के प्रसार पर रोक लगा दी गई क्योंकि इससे उपनिवेशवाद विरोधी विचारों के पनपने का खतरा था।
5. इस चरण में भारत असली अर्थों में ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया। भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक विकास के हित में ढले हुए थे।
6. भारतीय हितों और भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रगति तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद की टक्कर ने एक शक्तिशाली राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया।

प्र.4. ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने सामाजिक वर्गों पर क्या प्रभाव डाला? विवेचना कीजिए।

What was the effect of British Colonialism on the social groups? Explain.

उत्तर

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का सामाजिक वर्गों पर प्रभाव
(Effect of British Colonialism on Social Groups)

ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने सामाजिक वर्गों पर प्रभाव निम्न प्रकार डाला—

1. आर्थिक व्यवस्था के साथ ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत की सामाजिक व्यवस्था को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन के साथ ही भारतीय समाज में एक नई सामाजिक स्तरी व्यवस्था सामने आई जिसका आधार जाति व श्रम न होकर व्यावसायिक उपलब्धियाँ तथा मुक्त प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित नई आर्थिक शक्तियाँ थीं। कुछ ऐसे नये सामाजिक वर्गों का उदय होने लगा जो जातीय ढाँचे से ऊपर उठकर ऐसे समूहों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जो विभिन्न एवं परस्पर विरोधी जातियों का मिश्रण थे।
2. भारत नये सामाजिक वर्गों का उदय ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित नई अर्थव्यवस्था तथा नये प्रशासनिक ढाँचें का सीधा परिणाम थे। कृषि के स्तर पर नये भूमि संबंध, कृषि का वाणिज्यीकरण, नये दीवानी फौजदारी कानून नीति, सम्पत्ति का अधिकार, रेलवे तथा संचार सुविधाओं के विकास ने जमींदार, काश्तकार, अनुपस्थित भूमि स्वामी, कृषि दास, महाजन, साहूकार, वकील, पत्रकार, डॉक्टर, इंजीनियर आदि। ऐसे वर्ग पैदा हुए जिनकी प्रकृति तथा भूमिका पुरानी अर्थव्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी।
3. ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था ने एक ऐसे व्यापारिक वर्ग को जन्म दिया जिसे वाणिज्यिक बुर्जुआ के नाम से जाना गया। इस व्यापारिक वर्ग द्वारा अर्जित किये गये लाभ ने कालान्तर में कपड़ा खनन अन्य उद्योगों में सहायता की। आधुनिक उद्योगों की स्थापना तथा विकास ने पूँजीपति तथा मजदूर वर्ग को पैदा किया। इसके अतिरिक्त नई आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था

TOUCH 'n PASS

को सुचारु रूप से चलाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों की आवश्यकता थी जो आधुनिक कानून, प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था तथा प्रशासन तंत्र का ज्ञान रखते हो। इस आवश्यकता ने एक नये वर्ग को जन्म दिया जिसे मध्य वर्ग का नाम दिया गया जो वकील, डॉक्टर, अध्यापकों, इंजीनियरों, प्रबंधनों, पत्रकारों तथा राज्य पदाधिकारियों का मिला जुला समूह था।

4. अंत में एक नये वर्ग का और सृजन हुआ वह था भारतीय राजा नवाबों का कठपुतली के रूप में। पुराने वर्गों के अवशेष तथा नये वर्गों के उदय ने भारतीय समाज को विभिन्न वर्गों का बहुरंगी समूह बना दिया जिनके अपने-अपने हित थे और उन हितों के साथ भी वे भारतीय समाज के अभिन्न अंग रहे।

देशी राजे-रजवाड़े (Native Princes and States)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत में अपना सामाजिक आधार बनाने के लिए ब्रिटिश शासन ने केवल जमींदार वर्ग की रचना नहीं की वरन् देशी रियासतों एवं इनके राजाओं, नवाबों को बनाये रखा। जिन्हें ब्रिटिश सरकार के सामन्ती एवं संरक्षित वार्ड का नाम दिया गया।
2. वस्तुत: ऐसे नवाब राजाओं को बनाया रखा गया जो ब्रिटिश की दया पर निर्भर थे और जन असंतोष के लिए एक बांध का कार्य करते थे। यही कारण है कि महारानी की घोषणा में इन राजाओं के अधिकारों तथा उन्हें सम्मान एवं प्रतिष्ठा देने की बात की गई।
3. इन राजाओं तथा उनके रियासतों को संरक्षण देकर ब्रिटिश सरकार ने कोई परोपकार नहीं किया। इसके लिए भारतीय राजाओं को भारी कीमत चुकानी पड़ी। मान मर्यादा, प्रतिष्ठा को ताक पर रखकर ब्रिटिश साम्राज्य के एजेन्ट के रूप में कार्य करना पड़ा।
4. इन रियासतों में रहने वाली प्रजा की आर्थिक परिस्थिति काफी दयनीय थी। आम जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक सफाई अथवा अन्य सेवाओं के लिए किया जाने वाला व्यय न के बराबर था जबकि इन रियासतों में भू-राजस्व दर विश्व में सर्वाधिक ऊँची थी।
5. इन रियासतों में निम्न स्तर पर आम जनता का समान्तवादी शोषण तथा उच्च स्तर पर साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा राजाओं का शोषण दोनों का मिश्रण था।

जमींदार वर्गों पर (On the Jamindars)

1. कृषि ढाँचें में उच्च स्थान पर जमींदार भू-स्वामी वर्ग था और एक वर्ग के रूप में उपनिवेशवादी शासन की उपज था। अधिकांश जमींदार अनुपस्थित जमींदार थे। ये मूलत: लगान इकट्ठा करने वाला पराश्रित वर्ग था और किसानों का खून निचोड़ने वाला सरकार का बिचौलिया था।
2. यह जमींदार एक तरफ तो किसानों का शोषण करता था तो दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार के समक्ष इसकी स्थिति भी दयनीय रही। वैसे वर्ग के रूप में जमींदारों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया और ब्रिटिश सरकार ने विश्वसनीय निष्ठावान शक्ति के रूप में देखा तथा उनकी हमेशा तरफदारी की। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान इन जमींदारों ने सरकार का पक्ष प्राय: लिया। यह जमींदार वर्ग जो किसानों से संबद्ध था किन्तु भूमि सुधार तथा कृषि सुधार विकास के प्रति कोई रुचि नहीं लेता था। फलत: कृषि से जुड़े विभिन्न वर्ग लगातार विपन्न होते चले गये।

कृषक वर्ग (On the Farmers)

इसके आधार पर इनके प्रभाव को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जमींदार वर्ग के अतिरिक्त ग्रामीण स्तर पर दो महत्त्वपूर्ण वर्ग उभरे। ये थे कृषक वर्ग तथा खेतीहर मजदूर। ये नये वर्ग ब्रिटिश शासन के अंतर्गत ग्रामीण समुदायों के विलुप्त होने का सीधा परिणाम था। कृषक वर्ग की स्थिति ब्रिटिश नीतियों के फलस्वरूप दयनीय रही तथा वे गरीब किसान अनुपस्थित जमींदार के काश्तकार अथवा खेतिहार मजदूर की स्थिति से ऊपर नहीं उठ सके। इस प्रक्रिया में कई तत्त्वों ने मद्द की जैसे अत्यधिक लगान, भूमि का विखण्डीकरण, ऋणग्रस्तता आदि इस कृषि ढाँचें का किसान के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
2. जमींदार और किसान के बीच सारे उपनिवेशी काल में संबंध तनावपूर्ण ही रहे। भूमि के विखण्डन, किसान और महाजन के बीच झगड़े जैसी बुराईयों का खामियाजा केवल किसान वर्ग को भुगतना पड़ा। भूमिहीन किसानों की बढ़ती संख्या भूमि का महाजनों को हस्तांतरण बिचौलियों में उत्तरोत्तर वृद्धि जैसे तत्त्वों ने ब्रिटिश आर्थिक नीति की पोल खोलकर रख दी।

TOUCH 'n PASS

3. वस्तुत: किसानों का निर्धनीकरण हुआ। यह किसान भारत का वह वर्ग था जिसकी जनसंख्या सर्वाधिक थी और जो गाँवों में बसता था। बल्कि यूँ कहा जाए कि भारत गाँवों में बसता है तो ज्यादा उचित होगा और भारत की इस बहुसंख्यक आबादी और गाँवों को विपन्न तथा ऋणग्रस्त बनाकर ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत को विपन्न और ऋणग्रस्त बना दिया।
4. ब्रिटिश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप कृषि ढाँचें के निम्नतर स्तर पर कृषक मजदूर वर्ग का उद्‌भव हुआ जिसे कृषक दास के नाम से भी जाना जाता है। ब्रिटिश शासन के दौरान भूमिहीन मजदूरों की निरंतर बढ़ती संख्या की दशा सुधारने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया। यह भूमिहीन वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों में बिना किसी काम के इधर-उधर भटकता रहता था तथा कृषि की अकुशलता में और वृद्धि करता था।
5. ग्रामीण क्षेत्र की इन वस्तुपरक तथा व्यक्ति परक परिस्थितियों ने कृषि उपद्रवों को अवश्यम्भावी बना दिया। किसान वर्ग का यह असंतोष कई रूपों में उभरा जिसमें शांतिपूर्ण आंदोलन से लेकर हथियार बंद विद्रोह तक शामिल है।
6. ब्रिटिश शासन के दौरान किसान आंदोलन की प्रमुख माँगें थीं—जमींदारी उन्मूलन, जमींदारों द्वारा हड़पी गई भूमि को वापस दिलाना, बेगार प्रथा की समाप्ति आदि।

पूँजीपति वर्ग (Business Class)

इसके आधार पर इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् पूँजीवादी उपक्रमों के उदय ने भारत में एक पूँजीवादी वर्ग को जन्म दिया। प्रारम्भिक पूँजीपति भारतीय समाज के उस सम्पत्तिशाली वर्ग को देन थे जिन्हें ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों में कुछ समृद्धि हासिल हुई। टाटा करीम, गोकुल वाडिया जैसे लोग व्यापारिक तथा महाजनी पूँजी के महत्त्वपूर्ण अंग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जो धीरे-धीरे औद्योगिक पूँजी के क्षेत्र में आ गये। हालांकि बिचौलियों, व्यापारियों, जमींदारों, महाजनों का यह नया पूँजीवादी समूह ब्रिटिश उपनिवेशवाद से काफी घुला-मिला था तथा आरम्भ से ही यह एक स्वायत्त वर्ग के रूप में उभरा अर्थात् अपने उद्योगों के निर्माण तथा विकास के लिए ये ब्रिटिश पूँजी पर निर्भर नहीं रहे या यह बात जरूर है कि जिस उपनिवेशवाद अर्थव्यवस्था के अंतर्गत ये कार्यरत थे। वह ब्रिटिश तथा विश्व अर्थव्यवस्था के अधीन थे।
2. भारतीय पूँजीपति वर्ग द्वैध प्रकृति का शिकार था अर्थात् दीर्घकालिक दृष्टिकोण से जहाँ ब्रिटिश पूँजीपति एक भारतीय पूँजीपति वर्ग में विरोधाभास था वहीं अल्पकालिक दृष्टिकोण से यह ब्रिटिश उपनिवेशवाद पर निर्भर ही नहीं था बल्कि इसके साथ इसके सहयोग करने के लिए भी तत्पर था।
3. दीर्घकालिक दृष्टिकोण से भारतीय पूँजीपति वर्ग का प्रत्येक मुद्दे पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साथ विरोध था। उदाहरण के लिए यह भारत के अंदर तथा ब्रिटेन में ब्रिटिश पूँजी का प्रतिद्वन्द्वी था। भारतीय बाजारों में विदेशी उद्योगों के प्रभुत्व को समाप्त करना चाहता था। यह भारत के प्रमुख जैसे मशीनरी, परिवहन, जहाजरानी, भारी रसायन, खनिज पदार्थ आदि में विदेशी पूँजी निवेश के विरुद्ध था। यह ब्रिटिश वित्तीय पूँजी द्वारा भारतीय बैंकिंग व्यवस्था पर प्रभुत्व के विरुद्ध था और अंत में यह प्रमुख माध्यमों अर्थात् भारतीय बाजारों का प्रभुत्व विदेशी पूँजी निवेश तथा सार्वजनिक वित्त एवं सैनिक व्यय के बहाने भारत के आर्थिक अधिशेष को ब्रिटेन में हस्तांतरित करने के विरुद्ध था।
4. दूसरी तरफ अल्पकालीन दृष्टिकोण से भारतीय पूँजीपति वर्ग अपने अस्तित्व तथा प्रसार के लिए उपनिवेशी प्रशासन पर निर्भर था। खनिज पदार्थों के खनन का अधिकार केवल सरकारी ठेकों द्वारा ही मिल सकता था। इसी तरह सरकार की कर नीति पूँजी संचय की दर में निर्णायक भूमिका निभा सकती थी। इसके अतिरिक्त कानून व्यवस्था एवं सामाजिक शांति एवं सुरक्षा के लिए भी पूँजीपति वर्ग राज्य पर निर्भर था। अत: सरकार पर इस बहुमुखी निर्भरता के कारण इस वर्ग को एक संतुलित राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाना पड़ा तथा उपनिवेशवाद के साथ मधुर संबंध भी बनाने पड़े।
5. प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब भारतीय पूँजीपति वर्ग अपेक्षाकृत मजबूत हो गया तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का खुलकर समर्थन करने लगा। 1920 के बाद पूँजीपति वर्ग की विचारधारा ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों को कुछ हद तक प्रभावित करना शुरू कर दिया।
6. अन्य वर्गों की भाँति अपने हितों की सुरक्षा तथा अपनी माँगों को सरकार तक पहुँचाने के लिए पूँजीपति वर्ग ने कई संगठनों की स्थापना की जैसे—इंडियन जूट मिल एसोसिएशन, इण्डियन टी एसोसिएशन आदि।

TOUCH 'n PASS

7. सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण के परिणाम स्वरूप भारतीय पूँजीपति वर्ग के एक छोटे समूह में एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ भी आ गई। जैसे—टाटा उद्योग—यह टाटा आयरन स्टील कंपनी का मालिक तो था ही सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया का भी मालिक था। एक एकाधिकारी प्रवृत्ति ने स्वतंत्रता पश्चात् के आर्थिक असंतुलन को प्रोत्साहित किया।
8. कुल मिलाकर पूँजीपति वर्ग का उदय विरोधाभासी प्रकृति से युक्त था। चाहे इसने अपने आरंभिक विकास के लिए उपनिवेशवाद का थोड़ा सहयोग प्राप्त किया हो किन्तु जब वह स्वयं सबल हो गया तो उसने उपनिवेशवाद के विरुद्ध आंदोलन का साथ भी दिया।

मजदूर वर्ग (Labour Class)

इसके आधार पर इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत में मजदूर वर्ग 19वीं सदी के अंतिमचरण में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आया। भारतीय मजदूर वर्ग मुख्यत: गरीब भूमिहीन किसान तथा कुटीर उद्योगों से बाहर हुए शिल्पकारों में से आया। मजदूरों की संख्या अधिक होने से श्रम काफी सस्ता हो गया। फलत: मजदूरों का शोषण बढ़ा। ब्रिटिश शासन के दौरान मजदूर वर्ग के अधिकांश भाग का वेतन इतना नहीं था कि वह अपने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी कर सकता था। आकस्मिक बीमारी, बुढ़ापा तथा अकाल मृत्यु के विरुद्ध किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं थी। कम वेतन के कारण मजदूर प्राय: ऋण के बोझ तले दबते गये। मजदूरी तथा निर्वाह परिस्थितियों के दृष्टिकोण से खदानों में काम करने वाले मजदूरों की हालत काफी सोचनीय रही।
2. संक्षेप में ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिक मापदण्डों के अनुसार मजदूर वर्ग के लिए सामाजिक कानूनों का पूर्णत: अभाव था न तो स्वास्थ्य बीमा और न ही रहने योग्य परिस्थितियों का निर्माण किया गया। आगे चलकर मजदूरों ने इस उपनिवेशवाद के विरुद्ध एकजुटता दिखाई। फलत: कई सारे फैक्ट्री एक्ट लाये गये। किन्तु इनसे भी मजदूरों की दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ आगे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान वामपंथी विचारधारा ने मजदूर आक्रोश को संगठित दिशा दी और विभिन्न आंदोलनों के तहत हड़तालों, धरनों के माध्यम से ब्रिटिश उपनिवेशवाद को चुनौती दी।

'मध्य वर्ग (Middle Class)

इसके आधार पर इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत के मध्यवर्ग की उत्पत्ति भी ब्रिटिश शासन का सीधा परिणाम था। यह ब्रिटिश राज्य की एक बड़ी देन थी क्योंकि इसने भारत के अन्य वर्गों के बीच संतुलन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया। मध्य वर्ग दो प्रकार की प्रक्रियाओं का परिणाम था। पुराने शासक वर्ग सामंतों का विनाश तथा आधुनिक पश्चिमी शिक्षा, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले नये सामाजिक समूह; जैसे—डॉक्टर, वकील, अध्यापक, पत्रकार, सरकारी कर्मचारी आदि से बना।
2. ब्रिटिश शासन की देन मध्यवर्ग मूलत: एक अनुकरणशील वर्ग थी। एक ऐसा वर्ग जो रक्त और रंग से भारतीय था परन्तु बौद्धिक वैचारिक खान-पान से अंग्रेज था। ब्रिटिश शासन की आवश्यकताओं के अनुरूप इस वर्ग के सदस्यों ने सहयोग प्रदान किया।
3. जहाँ यूरोप में मध्य वर्ग सामंतवाद को समाप्त करने राजाओं के निरंतर शक्ति को उखाड़ फेंकने तथा स्वतंत्रता, समानता एवं पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास करने वाला वर्ग था। यहाँ भारत में शासन की प्रकृति उपनिवेशवादी होने के कारण यह वर्ग उपरोक्त कार्यों को अंजाम नहीं दे सका। तथापि जनसाधारण में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने, राष्ट्रीय आंदोलन को संगठित करना, अंततोगत्वा देश को विदेशी शासन से मुक्त करवाने का श्रेय मध्यवर्ग को जाता है।
4. विकास की उपलब्ध परिस्थितियों के कारण भारतीय मध्य वर्ग का अधिकांश भाग बुद्धिजीवी समूह से सम्बद्ध था परन्तु पश्चिमी बुद्धिजीवी वर्ग की तरह यह भारतीय संस्कृति की उपज न होकर उपनिवेशी शासन के उपज थे। इस तरह आरम्भ में मध्यवर्ग ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को सहयोग किया। किन्तु कालान्तर में जैसे—जैसे बौद्धिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप उपनिवेशवाद का वास्तविक चेहरा पढ़कर उसे लोगों के सम्मुख सामने लाया तथा भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह मध्यवर्ग ही था जिसने औपनिवेशिक अर्थतंत्र की मीमांसा करके साम्राज्यवादी विस्तार की जड़ ही खोद दी और फिर आगे उपनिवेशवाद के विरुद्ध चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व भी संभाला और अंतत: भारतीय स्वतंत्रता दहलीज तक पहुँचाया।

TOUCH 'n' PASS

नारी वर्ग (Women Class)

इसके आधार पर इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. ब्रिटिश शासन की स्थापना नये आर्थिक वातावरण तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप भारतीय नारी को उस सामाजिक रुढ़ियों कुरीतियों के दलदल से निकालने का प्रयास किया गया जिन्हें सामन्ती संरचना ने जकड़ दिया। 19वीं सदी के आरंभ में हुए समाज सुधार आंदोलनों ने नारी के जीवन में व्याप्त सामाजिक एवं कानूनी अन्याय तथा असमानता समाप्त करने को अपना उद्देश्य बनाया।
2. तथापि 19वीं शताब्दी के समाज सुधारक अपने उद्देश्य अपने प्रेरणा स्रोत में न तो एक मत थे न समरूप। विभिन्न समाज सुधारकों ने जैसे—राजा राममोहन राय ने आधुनिकीकरण एवं विकास की आवश्यकता पर बल दिया वहीं आर्य समाज ने अपने सुधारों में ऐसी सांस्कृतिक पहचान स्थापित करने का प्रयास किया जो ब्रिटिश पहचान से सर्वथा भिन्न हो। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित समाज सुधारकों ने नारी के परिवार के अंदर उसकी स्थिति तथा प्रतिष्ठा को उसकी उन्नति तथा आधुनिकीकरण का मानदण्ड माना। परिणामस्वरूप इन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुर्नविवाह जैसे अमानवीय परम्पराओं का जमकर विरोध किया। इनके प्रयत्नों तथा शक्ति समर्थन से ब्रिटिश शासन ने कई समाज सुधारक कानून का निर्माण किया जैसे सतीप्रथा उन्मूलन, विधवा पुनर्विवाह, नागरिक विवाह कानून आदि।
3. नारी उत्थान में पण्डित रमाबाई जैसी महिलाओं की भूमिका अग्रणी रही। उन्होंने नारी जाति की आत्मनिर्भरता पर बल दिया। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। आगे चलकर ज्योतिबा फूले, अम्बेडकर, गाँधी आदि जैसे नेताओं ने भी स्त्री शिक्षा एवं सामाजिक सहभागिता पर बल दिया। इन समाज सुधार आंदोलनों तथा नेताओं ने स्त्रियों के समूह को साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में भाग लेने के लिए तैयार किया।
4. वस्तुत: ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने नारी वर्ग के विकास के लिए कोई पृथक् नीति नहीं बनाई। समझने की बात यह है कि जिन कृषि व्यापारिक औद्योगिक नीतियों को लागू कर भारतीय किसान, शिल्पकार का शोषण किया गया। उसमें प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से महिलाएँ भी शामिल थी और जब अपने शासन को औचित्यपूर्ण बनाने की बात आई तो ऊपरी स्तर पर कुछ समाज सुधार कानून पारित किये गये और जैसे ही 1857 का गदर हुआ ये सुधार भी रोक दिये गये और आगे तमाम जो शैक्षणिक आयोग/मण्डल बने उनमें भी कोई विशेष प्रावधान स्त्रियों के लिए नहीं किये गये। इन सीमित अवसरों एवं कार्यक्रमों के बावजूद स्त्रियों की भूमिका उपनिवेशवाद के विरोध में सदैव से देखी जा सकती है। 1920 के बाद तो प्रत्येक आंदोलन में इनकी सहभागिता रही और अंतत: भारत उपनिवेशवाद से मुक्त हुआ इसमें भी सभी वर्गों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। पुरुष वर्ग के साथ-साथ नारी वर्ग को भी स्वतंत्रता दिलाने का उतना ही श्रेय प्राप्त है।

आदिवासी वर्ग (Tribal Class)

इसके आधार पर इनके प्रभावों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कृषक वर्ग के निम्नतम भाग के रूप में आदिवासी वनवासी समाज का एक अभिन्न वर्ग रहे हैं जो अपना जीवन स्थानांतरित/झूम कृषि, कृषि दास, सुदूर चाय बागानों में गुजार रहे थे। ये समाज के मुख्य धारा से कट कर अलग-अलग जंगलों के निवासी रहे थे। क्षेत्र छोटा नागपुर, संथाल परगना, नागालैण्ड, गोरा हिल्स, अजमेर, मारवाड़। इनकी प्रमुख जातियाँ थीं संथाल, भील, मुण्डली, कोली आदि।
2. ब्रिटिश शासन ने इनके अलगाव के शासन का अंत करके इन्हें अधिकार क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया इसके तहत मैदानी इलाकों में रहने वाले जैसे साहूकार व्यापारी ठेकेदार (दीकू) आदिवासी को आदिवासी क्षेत्र में घुसने में सक्रिय सहायता दी। ब्रिटिश शासन ने कई जगह आदि मुखियाओं को जमींदार के रूप में मान्यता तथा आदिवासी क्षेत्र में एक नये प्रकार के लगान तथा जंगली उत्पादन पर विशेषकर की शुरुआत की।
3. व्यक्तिगत नीति सम्पत्ति तथा स्वामित्व की नई धारणा ने भूमि के आदिवासी, संयुक्त स्वामित्व धारणा में दरार पैदा कर दी तथा आदिवासी समाज में कई आंतरिक अंर्तविरोध पैदा हो गये। ब्रिटिश शासन ने इन आदिवासी क्षेत्रों में व्यापारियों, साहूकारों तथा अमीर किसानों के प्रवेश के लिए द्वार खोले जिन्होंने आदिवासियों को उपनिवेशी अर्थव्यवस्था तथा शोषण के अंतर्गत लाने में मध्यस्थ का काम किया। कालान्तर में इन आदिवासियों को भू-स्वामित्व से वंचित होना पड़ा तथा उन्हीं क्षेत्र पर ये मजदूर दास के रूप में सामने आने लगे।

TOUCH 'n PASS

4. 1870 के बाद ब्रिटिश शासन ने उन सभी वन क्षेत्रों पर नियंत्रण बढ़ा दिया जिन पर आदिवासी समुदाय खाद्य पदार्थ, ईधन तथा पशुचार के लिए निर्भर थे। पुलिस एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा दमन और माँगों ने आदिवासियों के दु:खों में और वृद्धि की। प्रशासन द्वारा इनके वन क्षेत्रों में प्रवेश आदि में उनकी विशिष्ट पहचान पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। अपनी भूमि को बचाने तथा पहचान को संरक्षित करने के लिए इन आदिवासियों ने 19वीं सदी में कई उग्रवादी विद्रोह करने पर मजबूर हुए और 20वीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलन में भी हिस्सा लिया। जिनमें प्रमुख थे—बिरसा मुण्डा का विद्रोह, बिचौलिया विद्रोह आदि।
5. उपनिवेशी शासन के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह हिंसात्मक घटना के चलते यहाँ सामान्य कानून लागू नहीं हो सके। अत: यह क्षेत्र गैर नियंत्रक के अंतर्गत आ गये। कुल मिलाकर ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौर में आदिवासियों को अपनी संस्कृति और पहचान को खोने का अंदेशा था। फलस्वरूप इस पहचान को कायम रखने हेतु उपनिवेशवाद के विरुद्ध अपने-अपने क्षेत्रों में विद्रोह भी किया।
6. ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विभिन्न सामाजिक वर्गों पर शोषण मूलक प्रभाव पैदा हुआ ये विभिन्न वर्ग चाहे अपने हितों में परस्पर विरोधी रहे हों और समय-समय पर इनमें आपस में तनाव व्यक्त हुआ हो किन्तु ये सभी एक ही शक्ति के द्वारा शोषित व पीड़ित थे। फलस्वरूप शोषण की एक समान शक्ति के विरुद्ध ये अपने मतभेद को भुला करके उपनिवेशवाद के विरुद्ध एक जुट हुए भारतीय राजनीति आंदोलन इसका प्रमाण है और अंतत: एकजुटता ने उन्हें उपनिवेशवाद से मुक्ति भी दिला दी।

प्र.5. पूँजीवादी उत्पादन विकास के विभिन्न चरणों की समीक्षा विस्तार से कीजिए।

Review the different stages of Capitalism Production Development in detail.

उत्तर भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास मूलत: औपनिवेशिक राज्य के संदर्भ में हुआ। औपनिवेशिक राज्य ने विदेशी पूँजीवादी उद्योग को भारत पर लाद दिया और इन पूँजीवादी उद्योगों को लाद देने से भारत में पूँजीवाद का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका। भारत में पूँजीवादी औद्योगिक विकास समान रूप से विकसित नहीं हुआ। इसमें दो विपरीत व अंतर्विरोधी तत्त्व थे—विदेशी उद्योग, जिसका जन्म ब्रिटिश पूँजीवाद की आवश्यकताओं के कारण हुआ तथा भारतीय पूँजीवाद जो आंतरिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

पूँजीवादी उत्पादन विकास के चरण
(Stages of Capitalism Production Development)

भारत के पूँजीवादी उत्पादन के विकास के तीन विभिन्न चरण है—प्रत्येक चरण के विकास में विदेशी व स्वदेशी पूँजी का अलग-अलग महत्त्व है, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **प्रथम चरण (1850-1914)**—इस काल में निर्यात किए जाने वाले ऐसे माल का उत्पादन हुआ जो राष्ट्र के लिए लाभदायक था जैसे—पटसन, चाय इत्यादि। इसके साथ उस माल का भी उत्पादन हुआ जिसमें विदेशी प्रतिद्वन्दिता गंभीर नहीं थी। जैसे—मोटा कपड़ा। भारतीय पूँजी का क्षेत्र उद्योग की बजाय सट्टेबाजी ऋण देने तथा घरेलू व्यापार था। औद्योगिक क्रियाओं का भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्न स्तर था।
2. **दूसरा चरण (1914-1939)**—इस काल में उपभोक्ता वस्तुओं का घरेलू मंडियों के लिए अत्यधिक उत्पादन हुआ तथा इसी चरण में युद्ध, सीमा शुल्क तथा आर्थिक संकट के कारण इन वस्तुओं का आयात कम हुआ। अन्तर्द्वन्द इस काल में विदेशी पूँजी व स्वदेशी उद्योग में गहरा था क्योंकि विदेशी औपनिवेशिक नीति भारत में भारी उद्योगों की स्थापना के विरुद्ध थी।
3. **तीसरा चरण (1939-1947)**—इस काल में घरेलू मंडी के लिए भारी उद्योगों की स्थापना हुई परन्तु बाजार के बहुत सीमित होने के कारण उत्पादित माल की लागत पूँजी अधिक थी। इस काल में भारत में उद्योगों का निर्माण करने के लिए काफी पूँजी विद्यमान थी परंतु प्रौद्योगिकी (Technology) के अभाव के कारण उसे विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पड़ा।

I. प्रथम चरण (1850-1914) [First Stage (1850-1914)]

इस चरण को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. ब्रिटेन में औद्योगिक वर्ग के उदय से कंपनी के एकाधिकार का अंत हो गया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने एक नया मोड़ लिया। औपनिवेशिक राज्य ने ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग की एजेंसी के रूप में सहायता करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास किया जिसमें ब्रिटिश निजी पूँजी का भारत में निवेश हो सके।

TOUCH-n-PASS

2. ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग की सहायता से रेलवे, बागान, जूट उद्योग, कोयला उद्योग का विकास हुआ।
3. रेलवे का निर्माण दो निजी कंपनियों द्वारा किया गया। इन्हें लागत पूँजी पर 4.5% और 5% की गारंटी दी गई। इसने ब्रिटिश औपनिवेशिक आवश्यकताओं की पूर्ति की।
4. ब्रिटिश पूँजी ने चाय, कॉफी, रबर और नील के बागानों में निवेश किया जूट उद्योग पर ब्रिटिश पूँजी का एकाधिकार था। इन ब्रिटिश उद्यमों को देश सस्ता श्रम और रेशा प्रदान करता था।
5. कोयले के उद्यमों में ब्रिटिश पूँजी लगाई गई। कोयले के खानों के विकास का रेलों के निर्माण से घनिष्ठ संबंध था।
6. 1843 में 'बंगाल कोल कंपनी' का जन्म हुआ।
7. सूती वस्त्र उद्योग में भारतीय पूँजी लगी हुई थी। सर्वप्रथम सूती मिल 1853 में कावस जी नाना भाई ने बम्बई में शुरू की। 1879 में 56 सूती कपड़ा मिलें भारत में थी और 1905 तक 206 मिलें हो गई जिनमें करीब 1,96,000 लोग काम पर लगे थे। किन्तु आगे इस उद्योग में गिरावट आई क्योंकि अमेरिकी गृहयुद्ध तथा कपास में सट्टेबाजी के कारण कपास की कीमत बढ़ी और भारतीय सूती मिलों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। साथ ही औपनिवेशिक राज्य द्वारा भारत में बने कपड़ों पर चुंगी दर को बढ़ा दिया। इस तरह भारतीय मिलों के विरुद्ध भेदभाव की नीति रखी गई। इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध तक केवल अहमदाबाद और बंबई की कपड़ा मिलें ही ऐसी थी जो मुख्यत: भारतीय पूँजी द्वारा निर्मित हुई थी।
8. लोहा एवं इस्पात उद्योग में भारतीय पूँजी लगी थी। 1907 में टाटा आयरन एवं स्टील कम्पनी का निर्माण भारतीय पूँजी द्वारा हुआ। इस संदर्भ में जमशेद जी टाटा का महत्त्वपूर्ण योगदान था।
9. 1910 में टाटा हाइड्रो इलेक्ट्रिकल पॉवर सप्लाई कंपनी स्थापित हुई।
10. Joint stock Banks में राष्ट्रीय पूँजी लगी थी जिससे राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का विकास हुआ। इस संदर्भ में 1895 में पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना हुई, 1906 में बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक (1911) आदि की स्थापना हुई।
11. भारतीय नवोदित Joint stock Banks एकाएक ब्रिटिश प्रशासन एवं भेदभाव नीति के शिकार हुए।
12. कांग्रेस के स्वदेशी आंदोलन से भारतीय पूँजीवादी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप भारतीय सूती कपड़े की माँग बढ़ी। स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय पूँजी के संग्रह में सहायता प्रदान की तथा विभिन्न स्वदेशी उद्योगों जैसे—बंगाल केमिकल्स आदि की स्थापना की। परंतु इस आंदोलन का मुख्य लाभ व्यापारियों तथा साहूकारों को हुआ और यह आंदोलन सारे देश को प्रभावित न कर सका।

प्रकृति/स्वरूप (Nature/Form)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. अधिकतर आधुनिक उद्योगों पर ब्रिटिश पूँजी का स्वामित्व या नियंत्रण तथा विदेशी पूँजीपति भारतीय उद्योगों में उच्च मुनाफों की संभावनाओं के कारण और आकर्षित हुए।
2. श्रम अत्यंत सस्ता था। कच्चे माल तुरंत और सस्ती दर पर उपलब्ध थे। फलत: ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग ने इसका लाभ उठाया। विदेशी पूँजी ने अनेक उद्योगों में भारतीय पूँजी को दबा दिया।

भारतीय उद्योगों के सीमित विकास के कारण (Causes for the Limited Development of Indian Industries)

भारतीय उद्योगों के सीमित विकास के कारण निम्न प्रकार हैं—

1. पूँजी का अभाव मुख्य कारण था और पूँजी औद्योगिक विकास की पहली शर्त होती है।
2. नवोदित भारतीय उद्योग को सरकारी सुरक्षा की आवश्यकता थी ताकि वह ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों के समर्थ और सुस्थापित उद्योगों से टक्कर ले सके। मगर भारत की ब्रिटिश सरकार ने ऐसी कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की।
3. रेल किरायों की पक्षपातपूर्ण नीति ने भारतीय नवोदित उद्योगों को क्षति पहुँचाई।
4. भारत में पर्याप्त संख्या में technicians उपलब्ध नहीं थे। तकनीकी शिक्षा के साधन लगभग अनुपलब्ध थे।
5. भारत में भारी उद्योगों को प्रारंभ करने के लिए तकनीशियनों को विदेश से बहुत अधिक वेतन पर लाया जाता था। ऐसी स्थिति में भारत में भारी उद्योग जन्म नहीं ले सकते थे।
6. "Imperial Preferences/साम्राज्यीय वरीयता की नीति से भारतीय उद्योगों के विकास में बाधा पहुँची।

TOUCH 'n' PASS

II. दूसरा चरण (1914-39) [Second Stage (1914-39)]

दूसरे चरण को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

दो महायुद्धों के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian Economy between the two World Wars)

दो महायुद्धों के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

1. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों का विकास हुआ। इसका कारण तत्कालीन भारतीय परिदृश्य एवं वैश्विक परिस्थितियों में देखा जा सकता है।
2. 1905 और 1908 के बीच भारतीय राष्ट्रीय जनांदोलन ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को कुछ सीमा तक कमजोर कर दिया था और भारतीय पूँजी को सहायता प्रदान की।
3. ब्रिटेन के साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ने सहयोग दिया। फलतः भारतीय बुर्जुआ वर्ग को ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य से संरक्षण प्राप्त हुआ।
4. जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी से आयात की पूर्ण समाप्ति हो जाने से भारतीय उद्योगों को विकास का अवसर मिला।
5. युद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों की साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ प्रतिद्वंदिता में कमी आई। देशी माल को देश के अंदर और बाहर बड़ी मंडी प्राप्त हुई, युद्ध के ठेके मिले, कच्चा माल पहले से कम दामों पर उपलब्ध हुआ और उत्पादित माल के ऊँचे दाम प्राप्त हुए।
6. युद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यवाद धीरे-धीरे कमजोर होता गया और औपनिवेशिक राज्य राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के माँगों के प्रति और अधिक देर तक लापरवाही नहीं दिखा सका। सरकार औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने की सीमित रूप से चेष्टा कर रही थी। इस नीति परिवर्तन के कारण थे—
   (i) विश्व युद्ध के कारण यह अनिवार्य हो गया कि सैनिक और सामरिक कारणों से नए उद्योगों का निर्माण किया जाए।
   (ii) अंग्रेज और फ्रांसीसियों को पूर्व में इस्पात एवं बारूद के गोलों की आवश्यकता थी जिसकी आपूर्ति टाटा कंपनी द्वारा की जाती थी।
   (iii) भारतीय बाजार पर अंग्रेजों द्वारा स्थापित एकाधिकार को विदेशी प्रतियोगियों ने ध्वस्त करना शुरू कर दिया था। 1914 तक अंग्रेजों का भारतीय बाजार पर नियंत्रण अवनति की ओर प्रवाहमान था। 1874-1879 तक भारतीय आयात 82% था जो 1914 तक घटकर 66% हो चुका था। युद्ध के कारण ब्रिटिश औद्योगिक स्थिति के कमजोर होने से इस बात का खतरा पैदा हुआ कि युद्ध के बाद अन्य देशों का भारत में तेजी से प्रवेश होने लगेगा और भारत का बाजार ब्रिटेन के हाथ से निकल जाएगा। अतः इस स्थिति से बचने के लिए सीमा शुल्क की प्रणाली अपनाई गई। इसके दो फायदे हुए—(i) अपने आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व के कारण अंततः ब्रिटिश उद्योगपति भारत में प्रवेश किए बिना ही ब्रिटिश पूँजी के लिए मुनाफा निकाल सकते थे। लेकिन यदि भारत के बाजार पर किसी विदेशी पूँजीवादी शक्ति का कब्जा हो जाता तो इसकी कोई गुंजाइश नहीं रहती। (ii) आगे इस बात के लिए रास्ता तैयार हो जाएगा कि ब्रिटेन से आने वाले माल पर शुल्क कम करके अंग्रेज भारत के बाजार पर फिर से कब्जा कर ले।
   (iv) युद्ध के दौरान और बाद के अशांतपूर्ण वर्षों में भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए अंग्रेजों के लिए यह जरूरी हो गया था कि वे भारत के पूँजीपति वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए पूँजीपति वर्ग को आर्थिक व राजनीतिक सुविधाएँ दे।

भारतीय उद्योगों हेतु ब्रिटिश द्वारा संरक्षण की प्रक्रिया (The Process of Conservation of Indian Industry by the British)

इसकी प्रक्रिया को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. उपरोक्त परिस्थितियों एवं कारणों से 1916 में थॉमस हॉलैण्ड के नेतृत्व में Indian Industrial Commission का गठन हुआ जिसने 1918 में अपनी रिपोर्ट दी। इसमें कहा गया केन्द्रीय सरकार भारत के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करें, यांत्रिक शिक्षा (Mechanics) और अनुसंधान कार्य (Research Work) को विकसित करे, औद्योगिक बैंकों का निर्माण करें और निजी उद्योगों को वाणिज्य विकास हेतु सीधी आर्थिक मद्द दे।

TOUCH n PASS

2. औद्योगिक आयोग की सलाह पर 1921 में वित्त आयोग (Finance Commission) की स्थापना की गई। इसमें कहा गया कि विभिन्न उद्योगों को विवेकयुक्त संरक्षण प्रदान किया जाए परंतु भारतीय सदस्यों ने इसका विरोध करते हुए कहा कि संपूर्ण संरक्षण दिया जाए।
3. 1923 में एक Tariff Board का गठन किया गया और 11 उद्योगों को संरक्षण दिया गया—आयरन एंड स्टील, चीनी, कागज, सूती कपड़ा, नमक आदि। यद्यपि लंबी अवधि वाली संरक्षणात्मक नीति का निर्माण नहीं किया जा सका फिर भी इन थोड़े संरक्षण से भारतीय उद्योगों को आर्थिक सहायता मिली।
4. 1919 के अधिनियम के तहत् उद्योग को एक प्रांतीय विषय बना दिया गया। किन्तु, प्रांत राजनीतिक और आर्थिक रूप से इतने कमजोर थे कि वे औद्योगिक विस्तार में सहयोग नहीं दे सकते थे।
5. औद्योगिक विकास की मद्द के लिए केन्द्रीय उद्योग एवं शोध ब्यूरो (Central Bureau of Industries, Intelligence Research) की स्थापना हुई। इसके बावजूद भारतीय उद्योगों के स्वतंत्र, त्वरित और भरपूर विकास की बुनियादी शर्त पूरी नहीं हुई।
6. आयरन एवं स्टील कम्पनी को जो सहायता दी गई वह 1927 में वापस ले ली गई।

1927 के बाद ब्रिटिश नीति में परिवर्तन (Change in British Policy after 1927)

1927 के बाद ब्रिटिश नीति में हुए परिवर्तन निम्न प्रकार हैं—

1. 1927 के बाद भारतीय सीमा शुल्क की नीति साम्राज्यवादी प्राथमिकता में बदल गई। अब भारतीय उद्योगों की जगह ब्रिटिश उद्योगों को भारतीय मंडी में होड़ लेने के लिए सहायता प्रदान की गई। इसके बदले में भारत को अपना कच्चा माल और अर्द्ध उत्पादित माल बेचने के लिए छोड़ दिया गया। यह नीति भारत को 1914 की युद्धपूर्व स्थिति में पहुँचाने का प्रयत्न था।
2. भारत की वित्तीय और मुद्रा दर भी भारतीय हितों के विपरीत थी। युद्ध के पूर्व मुद्रा दर जो 1 सिलिंग 6 पेंस थी अब 1 सिलिंग 4 पेंस कर दी गई। इस विनिमय दर से भारतीय उत्पादकों को अत्यधिक क्षति पहुँची।
3. 1929-33 के विश्वव्यापी आर्थिक संकट का भारत पर गहरा असर पड़ा। 1928-29 से 32-33 के बीच भारत से निर्यात किए जाने वाले सामान का मूल्य 3 अरब 39 करोड़ से घटकर 1 अरब 35 करोड़ हो गया।
4. वित्त पर भारतीयों के नियंत्रण में और कमी लाने के लिए Imperial bank के साथ-साथ 1934 में नए Reserve Bank की स्थापना की गई।

इस प्रकार दूसरे विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने की पूर्वसंध्या पर भारत का औद्योगिक चित्रण इस प्रकार किया जा सकता है कि आधुनिक उद्योगों के निरंतर विस्तार के बावजूद भारत का विऔद्योगीकरण (Deindustrialisation) ही हुआ क्योंकि जिस गति से देशी उद्योगों का विनाश हो रहा था, उतनी तेजी से नए उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था। भारतीय उद्योगों का विनाश 19वीं शताब्दी की प्रमुख विशेषता थी जो 20वीं शताब्दी में भी जारी रही। वस्तुत: कारखाना उद्योग की प्रगति ने हस्तशिल्प उद्योग के विनाश की कमी पूरी नहीं की।

III. तीसरा चरण (1939-47 ई०) [Third Stage (1939-47)]

तीसरे चरण को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप बहुत बुरा प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों ने भारत की उत्पादन क्षमता को क्षतिग्रस्त कर दिया। इस काल की मुख्य विशेषता यह थी कि भारत के पूँजीगत उद्यम और ब्रिटिश पूँजीपति उद्यमों में बहुत गहरा अंतर्द्वन्द था। 1941 में जब पर्ल हार्बर पर आक्रमण हुआ तब भारत युद्ध का मुक्त क्षेत्र बना विदेशी सैनिक भारत में स्थित हो गए। उनको सभी प्रकार की सेवाएँ और खाने का सामान दिया गया एवं भारत द्वारा उन पर खर्च किया गया। इस भुगतान के लिए ब्रिटेन की शाही सरकार भारत सरकार और रिजर्व बैंक में इस बात पर सहमति बनी कि इन खर्चों के बदले भारत में अधिक-से-अधिक कागजी मुद्रा जारी करनी चाहिए ताकि यह स्टर्लिंग मुद्रा में परिवर्तित होकर बैंक ऑफ इंग्लैंड के खाते में जमा हो जाएगा। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर गंभीर प्रभाव पड़ा।
2. इस काल में कुछ देशी उद्योगों का विकास भी हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मिलों द्वारा उत्पादित सूती कपड़े की माँग को अब भारतीय मिलें ही पूरा कर रही थी।

TOUCH 'n PASS

3. युद्ध से मिले प्रोत्साहन के फलस्वरूप रसायन आदि के उत्पादन में वृद्धि हुई।
4. युद्ध के कारण ब्रिटिश पूँजीवादी उद्योगों का विकास रूक गया। फलत: भारतीय छोटे उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिला।
5. युद्ध के कारण जो लाभ हुए थे उनमें भारतीय उद्योगपति पहले विश्वयुद्ध की अपेक्षा अब अधिक शक्तिशाली हो गए। उनके पास अब अधिक मात्रा में पूँजी भी आ गई थी। बड़े भारतीय उद्योगपतियों ने स्वयं भारत के आर्थिक विकास की योजना बनाई जो बम्बई प्लान के नाम से जानी जाती थी।
6. युद्ध के दौरान भारतीय पूँजीपतियों ने कुछ मुनाफा कमाया था। फलत: उन्होंने छोटे और बड़े उद्योगों को खरीदा। इसमें असम के चाय बागान तथा दक्षिण भारत के रबर बागान प्रमुख थे। डालमिया ने कई फैक्ट्रियाँ खरीदी।
7. इन नई परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारतीय औद्योगीकरण के विकास के प्रति अपनी विरोधी नीति को बदलने के लिए मजबूर हुआ और उसने भारतीय पूँजीपतियों के साथ समझौता की पद्धति अपनाई। 1944 के अंत में टाटा, बिड़ला, सिंघानिया, ब्रिटेन और अमेरिका में अपने प्रतिनिधि संगठन ले गए।
8. ब्रिटिश पूँजीपति और भारतीय बुर्जुआ वर्ग वार्तालाप का सीधा परिणाम यह था कि 1945 में प्रथम मिश्रित ब्रिटिश इंडियन कंपनी का निर्माण हुआ। भारतीय राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का यह दोहरा स्वरूप (साम्राज्यवाद व जमींदारों के साथ सहयोग और उनके साथ ही उनका विरोध) भी स्पष्ट हो गया।

मूल्यांकन (Appraisal)

इनका मूल्यांकन निम्न प्रकार किया गया है—

1. कुल मिलाकर ब्रिटिश शासनकाल में भारत का औद्योगिक विकास सीमित रहा और इसका कारण था—
   (i) साम्राज्यवादी व्यवस्था की कार्यप्रणाली का रूप जिसका रवैया उपनिवेश के औद्योगिक विकास के प्रति शत्रुतापूर्ण रहा।
   (ii) भारतीय उद्योगों के लिए घरेलू बाजार की असाध्य समस्याएँ पैदा कर दी गई।
   (iii) बैंकिंग व्यवस्था का स्वामित्व यूरोपीय लोगों के हाथों में था जो भारतीय उद्योगों को ऋण देने में नस्लवादी भेदभाव करती थी।
   (iv) परिवहन सुविधाओं में भेदभाव।
   (v) ब्रिटिश उद्योगों को संरक्षण।
2. किन्तु इस धीमे विकास के बावजूद कुछ उद्योगों का निर्माण हुआ, पूँजीपति वर्ग का उद्‌भव हुआ। बागान तथा विदेशी स्वामित्व वाले अन्य उद्योगों से भारतीय जनता को कोई खास फायदा नहीं हुआ, उनके वेतन और मुनाफे देश से बाहर जाते थे। उन्होंने अपने अधिकांश उपकरण विदेशों में खरीदे। उनके अधिकांश उत्पादन विदेशी बाजारों में बिकते थे और बिक्री से प्राप्त विदेशी मुद्रा का इस्तेमाल ब्रिटेन करता था। इन उद्योगों से भारतीयों को एक ही फायदा हुआ कि अकुशल लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा हुए। मगर इन उद्योगों में अधिकांश मजदूरों को बहुत कम मजदूरी मिलती थी, बागानों में लगभग गुलामी की स्थिति थी।
3. आधुनिक उद्योग सरकारी सहायता के बिना तथा बहुधा ब्रिटिश नीति के विरुद्ध विकसित हुए। भारतीय उद्योगों को अपने शैशव काल में संरक्षण की आवश्यकता थी, वह उन्हें नहीं दी गई।
4. 20वीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय पूँजीपति वर्ग के दबाव के कारण सरकार द्वारा भारतीय उद्योगों को कुछ संरक्षण दिया गया किन्तु यहाँ भी भेदभाव मूलक संरक्षण दिया गया। जैसे—सीमेंट, लोहा-इस्पात, सीसा को या तो संरक्षण दिया नहीं गया या दिया गया तो नगण्य। दूसरी तरफ ब्रिटिश आयातित वस्तुओं को साम्राज्यीय वरीयता की प्रणाली के अंतर्गत भारतीयों के जोरदार विरोध के बावजूद विशेष रियायतें दी गई।
5. भारतीय औद्योगिक विकास की एक खास बात यह थी कि वह क्षेत्रीय दृष्टि से अत्यंत असंतुलित था। भारतीय उद्योग देश के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों व शहरों में सकेंद्रित था। इस असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास के कारण न केवल आय के वितरण में असमानता आई वरन् राष्ट्रीय एकीकरण के स्तर पर भी प्रभाव पड़ा।
6. देश के सीमित औद्योगिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि भारतीय समाज में दो नए सामाजिक वर्गों ने जन्म लिया—औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और आधुनिक मजदूर वर्ग।
7. कुल मिलाकर भारत में औद्योगिक प्रगति धीमी और दुखदायी रही।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. रेलवे के विकास एवं प्रभावों का आलोचनात्मक परीक्षण विस्तार से कीजिए।
Do a critical examination of the development of Railways and its consequences in detail.

उत्तर

रेलवे का विकास
(Development of Railways)

रेलवे के विकास को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. ब्रिटिशकालीन भौतिक साधनों की वृद्धि में रेलवे प्रणाली के विकास को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया।
2. भारत के लिए सर्वप्रथम भाप रेलगाड़ियों की योजना 1843 में इंग्लैंड में तैयार की गई। गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने कई तथ्यों के मद्देनजर रेल पथों के निर्माण को उपयोगी बताया।
3. 1849 में भारत सचिव ने ईस्ट इंडिया रेलवे कंपनी (E.I.R.C.) तथा ग्रेट इंडिया पेनान्सुलर रेलवे कंपनी (G.I.P.) के साथ पहले रेलवे के करारनामे पर हस्ताक्षर किए गए।
4. 1853 में पहली रेल लाईन बम्बई से थाने तक खोली गई।
5. 1869 के अंत तक 6000 किमी. से अधिक लाइन बिछ चुकी थी। किन्तु यह प्रणाली अत्यधिक खर्चीली साबित हुई।
6. 1869 में भारत सरकार ने सरकारी उद्यम के रूप में नई रेल लाइनें बिछाने का फैसला किया। किन्तु अभी भी रेलों के प्रसार की गति भारत के अधिकारियों एवं ब्रिटेन के व्यापारियों को संतुष्ट न कर सकी।
7. अत: 1880 के बाद निजी कंपनियों एवं सरकार दोनों ने मिलकर रेल लाइनें बिछाई।
8. 1905 तक लगभग 45,000 किमी. लंबी रेल लाइनें बिछाई जा चुकी थी।

रेलवे के विकास के महत्त्वपूर्ण पहलू (Important Aspects of the Development of Railways)

रेलवे के विकास के महत्त्वपूर्ण पहलू निम्न प्रकार हैं—

1. इन रेल लाइनों के विकास में 350 करोड़ से अधिक की पूँजी लगी थी। यह पूँजी पूरी की पूरी ब्रिटिश पूँजी निवेशकों की थी।
2. कंपनियों को रेलवे के निवेश पर 5% के लाभांश की गारंटी दी गई।
3. आरंभ के 50 वर्षों में इनसे वित्तीय घाटा ही होता रहा तथा वे लगने वाली पूँजी पर ब्याज तक नहीं दे सकती थी। प्राइवेट कंपनियों ने जो रेल लाइन बिछाई थी उनका घाटा तो भारत सरकार ने पूरा किया क्योंकि वह लगाई गई पूँजी पर एक निश्चित लाभ देने की गारंटी दे चुकी थी।
4. रेलों की योजना तैयार करते समय उनका निर्माण करते तथा उनके प्रबंध में भारत और उसकी जनता के आर्थिक राजनीतिक विकास को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया।

उद्देश्य (Aim)

इसके उद्देश्य को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक, राजनैतिक तथा सैनिक हितों की पूर्ति हो सके।
2. कृषि उत्पादन (कच्चे माल) के मुख्य निर्यात केन्द्रों को महत्त्वपूर्ण बंदरगाहों से जोड़ना ताकि कच्चा माल और खाद्यान्न इंग्लैंड पहुँच सके।
3. ब्रिटिश औद्योगिक वर्ग के लिए एक विशाल मंडी उपलब्ध कराना ताकि ब्रिटिश वस्तुओं की पहुँच एवं बिक्री भारत के विभिन्न स्थानों पर सुगमतापूर्वक हो सके।
4. उपद्रव को दबाने हेतु सेनाओं का तीव्र आवागमन सुनिश्चित करना अर्थात् ब्रिटिश सेना की सहायता से भारत को राजनैतिक रूप से अधीन बनाए रखना।
5. इन उद्देश्यों की पूर्ति के पक्ष में लॉर्ड डलहौजी और चार्ल्स वुड ने रेल विस्तार को अनिवार्य बताया।
6. वुड ने रेलों के विस्तार का समर्थन इसलिए किया था कि भारत के कपास उत्पादक क्षेत्रों से निर्यात बढ़ सकेगा और इंग्लैंड की संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भरता कम होगी।

TOUCH 'n PASS

रेल विकास एवं भारत का आधुनिकीकरण
(Development of Railways and India's Modernisation)

रेल विकास एवं भारत का आधुनिकीकरण निम्न प्रकार हुआ—

1. मार्क्स ने 1853 में यह भविष्यवाणी की कि "आधुनिक औद्योगीकरण रेल मार्ग से आएगा।"
   इस संदर्भ में मार्क्स ने कहा जिस देश में लोहा और कोयला प्राप्त हो वहाँ के परिवहन तंत्र में मशीनों का इस्तेमाल शुरू हो जाने के बाद उस देश द्वारा खुद मशीनों के निर्माण को नहीं रोका जा सकेगा। रेलवे की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन औद्योगिक प्रक्रियाओं की जरूरत थी, उन्हें लाए बगैर भारत जैसे बड़े देश में रेल तंत्र का सुचारू रूप से संचालन संभव नहीं था। उद्योग की जिन शाखाओं का रेलवे से सीधा संबंध था, उनमें भी मशीनरी के इस्तेमाल की जरूरत पड़ेगी। अत: रेलवे का प्रादुर्भाव भारत में आधुनिक उद्योगों के आगमन का पूर्व सूचक था।
2. मार्क्स का यह कथन रेलवे एवं औद्योगीकरण के संदर्भ में सत्य है। ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में रेलवे के विकास से आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण हुआ। किन्तु भारत के संदर्भ में यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से नहीं चल पाई और मार्क्स की उक्ति कमजोर सिद्ध हुई।
3. रेलवे के विकास ने भारत के औद्योगीकरण एवं उसकी समृद्धि को प्रोत्साहन नहीं दिया। इसके निम्न कारण थे—
   (i) रेलवे निर्माण के लिए अंग्रेज कंपनियों को आमंत्रित किया गया। उन्हें रेलवे में पूँजी विनियोग पर 5% निश्चित लाभ की गारंटी दी। जबकि बड़ी संख्या में अंग्रेज पूँजीपति अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा आदि में बिना गारंटी के पूँजी लगा रहे थे। इस गारंटी विधि के कारण रेलवे कम्पनियों ने फिजूलखर्ची भी की। क्योंकि इस फिजूलखर्ची में भी उनके लाभ की गारंटी निहित थी। गारंटी पद्धति द्वारा रेलों के निर्माण में दुगने से ज्यादा खर्च हुआ ईस्ट इंडिया रेलवे के प्रति मील रेल निर्माण पर 30,000 पाउण्ड का खर्चा हुआ जबकि इंग्लैंड में रेल लाइन निर्माण पर 9000 पाउण्ड/मील खर्च हुआ था। इस तरह लाभांश गारंटी के रूप में भारतीय धन की निकासी हुई।
   (ii) रेलवे निर्माण के लिए छोटा-से-छोटा पुर्जा भी इंग्लैंड से मंगाया जाता था। फलत: भारत में सहायक उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन नहीं मिला। इंजन, रेलें, पुलों के लिए इस्पात निर्मित वस्तुएँ आदि सभी चीजें ग्रेट ब्रिटेन से आयात की गई। ब्रिटेन में निर्मित 20% से अधिक इंजन को भारत भेजा गया। वस्तुत: 1869 में स्वेज नहर के खुल जाने के बाद समुद्रीय परिवहन में आसानी हुई। यह कार्य और भी सुगम हो गया। जिसका अनुमान 1853 में मार्क्स द्वारा नहीं लगाया जा सका था। इस तरह पारस्परिक शृंखला का लाभ इंग्लैंड के लोहा-इस्पात इंजीनियरिंग एवं खनिज उद्योगों को मिल रहा था। फलस्वरूप रेल मार्गों के विकास के साथ दूसरे भारी उद्योगों का स्वाभाविक विकास जो भारत में होना चाहिए था वह नहीं हुआ।
   (iii) इंग्लैंड की जनता का स्वार्थ भारत में रेलवे के विस्तार में निहित था क्योंकि भारत में रेलों से अंग्रेजी माल सस्ते मूल्य पर दूर-दूर तक भेज सकता था। साथ ही लोहे के अंग्रेजी कारखानों का संचालन भी इसी से संभव था इसलिए औपनिवेशिक शासकों ने रेलवे की तुलना में नहरों के विकास को महत्त्व नहीं दिया।

प्रभाव (Effect)

इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

1. भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण सुदृढ़ हुआ।
2. औपनिवेशिक शासन की दोहन क्षमता को दूरस्थ क्षेत्रों तक स्थापित कर दिया। साथ ही ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं की पहुँच को भी भारत के दूरस्थ क्षेत्रों में संभव बनाया।
3. ब्रिटिश आयात-निर्यात की मात्रा में वृद्धि हुई।
4. ब्रिटेन के औद्योगीकरण को आधार प्राप्त हुआ, ब्रिटेनवासियों के जीवन में समृद्धि आई। विभिन्न क्षेत्रों में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला।
5. रेलवे के विकास ने वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया।
6. रेलवे के विकास ने भारत से धन की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया।

TOUCH 'n' PASS

7. मूल्य संरचना में अंतर्क्षेत्रीय भिन्नताओं को कम करने में रेलवे विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। रेलवे विकास के पूर्व मूल्य संरचना अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग होती थी। इसका कारण यह था कि वस्तुओं की उपलब्धता सीमित थी।
8. आधुनिक उद्योगों के विकास के लिए रेलवे ने एक आधार का काम किया।
9. भारत के आंतरिक बाजारों में भी अंतर्संपर्क बढ़ा और वे सभी विदेशी बाजार से जुड़ गए। इस तरह पहले जो भारत था एक दूसरे से अलग बाजार खंडों का देश माना जाता था वह एक राष्ट्र के रूप में परिणत हो गया। जिसके सभी स्थानीय केन्द्र रेल से परस्पर जुड़े हुए थे।
10. रेलवे के विकास ने भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों के विकास को प्रोत्साहित किया। रेलवे ने जाति-पात, छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों को कमजोर बनाने में भी भूमिका अदा की।
11. भारतीयों के बीच सम्पर्क बढ़ा। फलतः लोगों में परस्पर विचार विनिमय में सुगमता हुई सामाजिक-राजनीतिक संगठनों के विकास को सहायता मिली एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

रेलवे का प्रभाव : आलोचनात्मक परीक्षण
(Effect of Railways : Critical Examination)

आलोचनात्मक परीक्षण के आधार पर रेलवे के प्रभाव को दो भागों में विभाजित किया गया है—I. नकारात्मक प्रभाव व II. सकारात्मक प्रभाव।

I. नकारात्मक प्रभाव (Negative Effect)

ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. अंग्रेजों ने भारत में रेलवे का निर्माण मूलतः ब्रिटिश हित को ध्यान में रखकर किया था न कि भारतीय। रेलवे ने यह काम बखूबी से किया भी, ब्रिटिश हित को ही सर्वोपरि रखा। भारतीय धन की निकासी को तीव्रता पहुँचायी।
2. भारत में अंग्रेजी शासन के खिलाफ उठने वाले विद्रोह को दबाने के लिए सेना भेजने में सहायता पहुँचायी। इस तरह भारतीय राष्ट्रवाद को दबाने में भूमिका निभायी।
3. रेलवे के फलस्वरूप भारत से कच्चे माल का निर्यात हुआ, साथ ही बड़ी मात्रा में खाद्यान्नों की निकासी हुई। फलस्वरूप अकाल की बारंबारता में वृद्धि हुई।
4. रेलवे के ऊपर किया गया अत्यधिक खर्च ने भारतीयों के ऊपर ऋण का बोझ बढ़ाया।

II. सकारात्मक प्रभाव (Positive Effect)

ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. **राजनीतिक क्षेत्र**—रेलवे के परिणामस्वरूप भारत अब पहले की तुलना में अधिक सुसंगठित राजनीतिक इकाई के रूप में उभरा। तो प्रशासनिक दृष्टि से प्रशासन की दक्षता में वृद्धि हुई।
2. **सामाजिक क्षेत्र**—जातिबंधन, जातिवाद ढीले पड़ने लगा और छुआछूत का प्रभाव भी कमजोर होने लगा। लोग, रेल के डिब्बों में साथ-साथ दूर-दराज की यात्रा करने लगे। विभिन्न स्टेशनों पर खाना पानी का उपयोग करने लगे। फलतः जाति संकीर्णता की भावना में कमी आई।
3. एक दूसरे से मिलने, बातचीत करने से विचारों का आदान प्रदान संभव हो पाया तो एक दूसरे की भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं भावनाओं की समझ भी बढ़ी। फलतः राष्ट्रीय एकता एवं भावनात्मक एकता को बढ़ावा मिला।
4. **आर्थिक क्षेत्र**—आर्थिक दृष्टि से उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्र में स्वावलंबी अर्थव्यवस्था के स्थान पर विस्तृत बाजार अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। रेलवे के द्वारा उत्पादन को दूर-दूर तक ले जाना आसान हुआ। अतः बाजार का विस्तार हुआ। विभिन्न स्थानों पर माल ले जाने की सुविधा होने से वस्तुओं की कीमतों में पाए जाने वाले क्षेत्रीय अंतर भी कम हुए। यात्री परिवहन में वृद्धि होने से श्रम की गतिशीलता में वृद्धि हुई।

   इस प्रकार भले ही अंग्रेजों ने भारत में रेलवे का निर्माण भारत को लाभ पहुँचाने के लिए नहीं किया था तो भी इससे देश को कई लाभ हुए। यह अलग बात है कि लाभ, नुकसान की तुलना में प्रभावी कम हुए।

TOUCH 'n' PASS

रेलवे के संदर्भ में राष्ट्रवादी आलोचनाएँ (Nationalist Critiasm in the Context of Railways)

रेवले के सन्दर्भ में राष्ट्रवादी आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. अंग्रेजी सरकार एवं उसके समर्थक विद्वानों ने रेलवे से मिले लाभ को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया। तो दूसरी तरफ राष्ट्रवादी नेताओं का मानना था कि जब हम इन सभी लाभों एवं मिली हुई हानि की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि अंग्रेजों ने रेलवे का उपयोग भारत के शोषण के उपकरण के रूप में किया।
2. दादा भाई नौरोजी ने स्पष्ट किया कि रेलवे के निर्माण से विश्व के दूसरे देशों को लाभ मिला वह भारत को नहीं मिला पाया। इंग्लैण्ड के अलावा जापान, जर्मनी ने भी रेलवे का विकास कर औद्योगिक विकास का सूत्रपात किया, किन्तु यही काम रेलवे भारत में नहीं कर सका। इसका कारण यह था कि भारत में रेलवे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जिन तैयार वस्तुओं को ले जाती हैं वे भारत में बनने के बजाए, इंग्लैण्ड के कारखानों में बनते थे, फलस्वरूप इंग्लैण्ड के कारखानों में वृद्धि हुई।
3. इतना ही नहीं रेलवे ने भारत के कच्चे माल के निर्यात में वृद्धि की उसका देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा। साथ ही हस्तशिल्प उद्योगों के पतन को भी रेलवे ने गति प्रदान की। इससे लोगों को परंपरागत रोजगार छोड़ना पड़ा और कृषि पर बोझ पड़ा। इस तरह रेलवे ने औद्योगिक विकास को भी अवरुद्ध किया।
4. भारत में रेलवे के विकास के लिए लाभांश की गारंटी सरकार ने दी थी। परिणामस्वरूप भारत पर वित्तीय बोझ पड़ा। रेलवे में बहुत बड़ी संख्या में विदेशी कर्मचारियों को लगाया गया था अतः ब्याज, लाभांश एवं वेतन आदि के रूप में बहुत मात्रा में धन की निकासी हुई। भारत में रेलवे के निर्माण के लिए लोहे की पटरियों एवं अन्य समान भी इंग्लैण्ड से मगाएँ गए। अतः देश की पूँजी बाहर गई।
5. रेलवे के माध्यम से अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण किया। इसे रेलवे की मालभाड़ा दरों के संदर्भ में समझा जा सकता है। अंग्रेजों ने रेलवे मालभाड़ा—किराए की दर इस प्रकार निर्धारित की कि भारतीय लोगों को इसका लाभ न मिल सके। भारतीयों के लिए मालभाड़े की दरें अत्यंत उच्च रखी गयी थी तो दूसरी तरफ कच्चे माल के निर्यात तथा ब्रिटेन से आयातित निर्मित माल पर अत्यंत निम्न दरें थी। दरों में विभिन्नता के कारण भारतीय उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
6. रेलवे ने जिस गति से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को प्रसारित एवं सुदृढ़ किया एवं ब्रिटिश की जनता को प्रत्यक्ष रूप से जो लाभ पहुँचाया। भारतीयों को मिले अप्रत्यक्ष लाभों की तुलना में कहीं ज्यादा प्रभावी रहा। इस दृष्टि से रेलवे ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को ही प्रोत्साहित किया।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

औपनिवेशिक काल में शिक्षा का विकास
Development of Education in Colonial Period

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत परिषद् अधिनियम 1909 क्या है?

What is Indian Councils Act 1909?

उत्तर भारत परिषद् अधिनियम (इण्डिया कौंसिल्स एक्ट), वर्ष 1909 में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक अधिनियम था, जिसे ब्रिटिश भारत में स्वशासित शासन प्रणाली स्थापित करने के लक्ष्य से पारित किया गया था। यह मार्ले–मिण्टो सुधार के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस समय मार्ले भारत के राज्य सचिव एवं लॉर्ड मिण्टो भारत के वायसराय थे।

प्र.2. भारत सरकार अधिनियम 1935 की विशेषता बताइए।

What is the main feature of Government of India Act 1935?

उत्तर 1935 के अधिनियम में केन्द्र में द्वैध शासन (दोहरा शासन) की व्यवस्था लागू की गई थी। संघीय विषयों को आरक्षित और स्थानान्तरित दो भागों में विभाजित किया गया था। आरक्षित विषयों के प्रबंधन की जिम्मेदारी गवर्नर जनरल और उसके सभासदों के हाथों में थी और स्थानान्तरित विषयों की जिम्मेदारी गनर्वर जनरल और मंत्रिपरिषद् को सौंपी गई थी।

प्र.3. लॉर्ड मार्ले कौन था?

Who was Lord Morley?

उत्तर लॉर्ड मिण्टो–2 को साम्प्रदायिक निर्वाचन के जनक के रूप में जाना जाता है क्योंकि इन्होंने पृथक् प्रतिनिधित्व का उपबन्द किया था। उस समय भारत के सचिव मार्ले थे।

प्र.4. भारत सरकार अधिनियम 1919 क्या है?

What is Government of India Act 1919?

उत्तर भारत सरकार अधिनियम 1919 यूनाइटेड किंगडम की संसद का एक अधिनियम था। यह भारत सरकार में भारतीयों की भागीदारी का विस्तार करने के लिए पारित किया गया था। इस अधिनियम में भारत के राज्य सचिव एडविन मोंटेग्यू और वाइसराय चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट में अनुशंसित सुधारों को शामिल किया गया था। इस अधिनियम ने 1919 से 1929 तक दस वर्षों को कवर किया। यह अधिनियम परोपकारी निरंकुशलता के अंत का प्रतिनिधित्व करता है।

प्र.5. भारत शासन अधिनियम 1919 के तहत गठित राज्य परिषद् के पहले अध्यक्ष कौन थे?

Who was the first president of the council of states formed under Government of India Act 1919?

उत्तर अलेक्जेंडर मुदिमान को 1919 में नए भारतीय विधानमंडल के ऊपरी सदन, राज्य परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्हें मार्च, 1924 में भारत सरकार के सदस्य और विधान सभा के निचले सदन अर्थात् विधानमंडल का नेता नियुक्त किया गया।

प्र.6. 1919 के अधिनियम की मुख्य विशेषता क्या है?

What is the main feature of the Act of 1919?

उत्तर अधिनियम के अनुसार, आयकर को केन्द्र सरकार को राजस्व के स्रोत के रूप में रखा गया था। विधायिका की सहमति के बिना विधायी विधेयकों को वायसराय की मंजूरी के तहत पारित किया जाना था। अधिनियम ने पहली बार भारत में एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए प्रदान किया।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. भारत शासन अधिनियम 1919 के तहत अन्तिम चुनाव कब हुए?

When were the last elections under the Government of India Act 1919 held?

उत्तर केन्द्रीय विधान सभा के चुनाव भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत वर्ष 1926 और 1945 में हुए थे। विधानसभा का अन्तिम चुनाव 1945 में हुआ था।

प्र.8. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना कब हुई?

When was dyarchy established at the centre?

उत्तर 1919 ई० के भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट) द्वारा प्रान्तीय सरकार को मजबूत बनाया गया और द्वैध शासन की स्थापना की गई। इसके पहले प्रान्तीय सरकारों पर केन्द्र सरकार का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। लेकिन अब इस स्थिति में परिवर्तन लाकर प्रान्तीय सरकारों को उत्तरदायी बनाने का प्रयास किया गया।

प्र.9. 1919 का अधिनियम क्या है?

What is the Act of 1919?

उत्तर ब्रिटिश संसद ने 1919 में भारत के औपनिवेशिक प्रशासन के लिए नया विधान बनाया जिसे भारत सरकार अधिनियम, 1919 के नाम से लागू किया गया। इस अधिनियम को 'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' भी कहा गया क्योंकि इस अधिनियम के पारित होने के समय मांटेग्यू भारत सचिव तथा चेम्सफोर्ड वायसराय थे।

प्र.10. मांटेग्यू की घोषणा क्या थी?

What was Montagu's Declaration?

उत्तर भारत सचिव लॉर्ड मांटेग्यू द्वारा 20 अगस्त, 1917 को ब्रिटेन की 'कामन्स सभा' में एक प्रस्ताव पढ़ा गया, जिसमें भारत में प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की बात कही गई थी। इसे 'मांटेग्यू घोषणा' कहा गया। मांटेग्यू घोषणा को उदारवादियों ने 'भारत के मैग्नाकार्टा की संज्ञा' दी थी।

प्र.11. 1909 के अधिनियम के पारित होने के क्या कारण थे?

What were the reasons for the passage of the Act of 1919?

उत्तर भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 को पारित करने के निम्न कारण थे—

(i) 1892 के सुधार से असंतोष
(ii) राष्ट्रीय आपदाओं का प्रभाव
(iii) कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति
(iv) विदेशों में भारतीयों का अपमान
(v) विदेशी घटनाओं का प्रभाव
(vi) प्रेस द्वारा प्रचार
(vii) उग्रवाद तथा आतंकवाद का विकास
(viii) कांग्रेस की माँग

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Give a critical review of Montagu Chelmsford Report.

उत्तर

माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट
(Montagu Chelmsford Report)

ब्रिटिश संसद तथा भारत सरकार द्वारा शिमला में आयोजित सर्वोच्च परिषद् की बैठक में 1917 के अगस्त प्रस्ताव पर विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। भारत सचिव माण्टेग्यू, गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड से विचार-विमर्श करते हुए एक शिष्टमंडल सहित 10 नवम्बर, 1917 को भारत (बंबई) आए। शिष्टमंडल का उद्देश्य भारत की राजनीतिक स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए

TOUCH 'n' PASS

विभिन्न दलों के नेताओं तथा प्रान्तों के सरकारी अधिकारियों से भेंट करके जानकारी प्राप्त करना था। माण्टेग्यू की भारत यात्रा का मुख्य उद्देश्य भारतीयों का ध्यान कुछ समय के लिए क्रांतिकारी गतिविधियों से हटाकर इन्हें वार्तालाप में उलझाए रखना था ताकि उस समय, जबकि प्रथम विश्वयुद्ध खतरनाक स्थिति में था, भारतीय नेताओं को चुप रखा जा सके। उक्त मसौदा 8 जुलाई, 1918 को 'माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड' रिपोर्ट के नाम से प्रकाशित हुई। यह प्रतिवेदन निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्तों पर आधारित था, जो नए प्रस्तावित 'भारत शासन अधिनियम, 1919' की उद्देशिका के रूप में समाविष्ट किए गए—

(i) स्थानीय संस्थाओं में यथासम्भव बाह्य नियन्त्रण से पूर्ण स्वायत्तता देनी चाहिए।

(ii) उत्तरदायी प्रशासन को सबसे पहले प्रान्तों में ही स्थापित किया जाए। केन्द्रीय सरकार पूरी तरह निरंकुश तथा संसद के प्रति उत्तरदायी रहेगी।

(iii) प्रान्तीय सरकार की स्वायत्ता के अनुपात में भारत सचिव का नियन्त्रण कम हो जाएगा।

(iv) इस अधिसूचना के बारे में भारतीय प्रतिक्रिया स्वाभाविक रूप से मिली-जुली थी। नरमपंथी नेता इन सुधारों को प्रगतिशील तथा उपयोगी समझते थे। श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने कहा कि, "भारत को जो दिया जा रहा है, वह आत्मनिर्णय नहीं, विदेशी निर्णय है और भारत से कहा जाता है कि उसे स्वीकार कर ले। भारत के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह इन प्रस्तावों को इनके वर्तमान रूप में स्वीकार न करे।" इन दोनों के मध्य दृष्टिकोण रखने वाला एक तीसरा मत भी था, जो रिपोर्ट को असंतोषजनक मानता था, लेकिन उसे अस्वीकार नहीं करना चाहता था। इस दल में और नरमपंथी विचारकों में केवल भाषा शैली का अन्तर था। नरमपंथी नेताओं ने अपने आपको कांग्रेस से अलग करके एक पृथक् दल बना लिया। कांग्रेस में बीच के विचार रखने वालों का बहुमत था। इसीलिए रिपोर्ट पर विचार-विमर्श करने के लिए विशिष्ट अधिवेशन बुलाया गया। तिलक, मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाए। इसलिए प्रस्तावों को स्वागत करते हुए उसके कुछ दोषों को दूर करने के लिए सरकार से अनुरोध किया गया। नरमपंथियों ने नवम्बर, 1918 में ऑल इण्डिया मॉडरेट कांफ्रेंस का अधिवेशन बुलाया और ऑल इण्डिया लिबरल फेडरेशन का गठन किया। नरमपंथियों के पृथक् संगठन बन जाने के पश्चात् दिसम्बर, 1918 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में रिपोर्ट की पर्याप्त आलोचना की गई।

प्र.2. राष्ट्रीय दलों के दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

Discuss the outlook of national parties.

उत्तर

राष्ट्रीय दलों का दृष्टिकोण
(Outlook of National Parties)

इसकी व्याख्या को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कांग्रेस ने अधिनियम की इस आधार पर आलोचना की और अस्वीकार किया; क्योंकि इसके निर्माण में भारतीय जनता से सलाह नहीं ली गई अर्थात् यह एक्ट जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। कांग्रेस ने सरकार पर आरोप लगाया कि उसने एक्ट को इस तरह बनाया है ताकि उत्तरदायी सरकार को टाला जा सके, अपने शासन को स्थायी बनाया जा सके और भारतीय जनता का शोषण किया जा सके। सरकार ने सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान नहीं किया। इस तरह अधिनियम को गैर लोकतांत्रिक, जनता के प्रभुत्व को नकारने वाला और संस्थागत रूप से अव्यावहारिक बताकर निन्दित किया। कांग्रेस दिसम्बर, 1929 में पूर्ण स्वतंत्रता की माँग कर चुकी थी और इसके पश्चात् उसने अनेक अवसरों पर इस माँग को दोहराया। दिसम्बर, 1934 में कांग्रेस कार्य समिति के अधिवेशन में इस अधिनियम को अस्वीकार कर दिया; क्योंकि इसके द्वारा "देश पर विदेशी आधिपत्य और शोषण को अमर और आसान बनाया गया है।"
2. राष्ट्रीय उदार (लिबरल) फेडरेशन के 30 दिसम्बर, 1935 को भारत सरकार अधिनियम के विषय में प्रस्ताव पास किया "यह खेद का विषय है कि ब्रिटिश संसद ने न केवल भारतीय दृष्टिकोण से उन्नति के सुझाव को अस्वीकार किया है; बल्कि और अधिक आपत्तिपूर्ण प्रावधान जोड़कर देश पर अधिनियम 1935 थोप दिया। भारत को किसी ऐसे संविधान से सन्तोष नहीं होगा, जो कि डोमीनियन राज्यों के संविधान से मिलता-जुलता न हो, जिससे भारत को राष्ट्रीय स्वशासन के पूरे अधिकार नहीं दिए गए हों और थोड़े समय के लिए अधिनियम द्वारा कम-से-कम आरक्षण हो और जो राष्ट्रीय एकता में सहायक हो।"

TOUCH 'n PASS

3. हिन्दू महासभा ने अपने कानपुर अधिवेशन में राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र में बाधक मानते हुए इसे मौजूदा संविधान से भी बदतर बताया।
4. मुस्लिम लीग ने भी जबरदस्ती थोपा हुआ संविधान घोषित करते हुए नापसन्द किया। लीग ने इस अधिनियम को लागू करने का प्रबल विरोध किया। उसने भारतीय संघ योजना को धृष्टतापूर्ण एवं हानिकारक माना।
5. खालसा दरबार के अध्यक्ष सरदार मंगलसिंह ने इसे अनिच्छुक और असहाय लोगों पर थोपा गया संविधान बताया।

प्र.3. माण्टेग्यू रिपोर्ट में कांग्रेस के दृष्टिकोण का उल्लेख कीजिए।
Mention the Congress' Outlook in Montagu Report.

उत्तर

कांग्रेस का दृष्टिकोण
(Congress' Outlook)

8 जुलाई, 1918 को जब माण्टेग्यू रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो भारतीय नेताओं और राजनीतिक दलों की प्रतिक्रिया उत्साहजनक नहीं थी। बालगंगाधर तिलक ने इस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं करने योग्य बताया। श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने भी इसकी निन्दा करते हुए कहा, "यह योजना प्रस्तुत करना इंग्लैण्ड की शान के खिलाफ है और इसे स्वीकार करना भारत की शान के खिलाफ।" 27 अगस्त, 1918 को हसन इमाम की अध्यक्षता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के प्रति अविश्वास की भावना के चलते सुधारों की योजना के सम्बन्ध में उपस्थित प्रतिनिधि एकमत नहीं हो सके। राष्ट्रवादियों का संदेह और गहरा बनाने वाली बातों के अन्तर्गत माण्टेग्यू का सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सीतलवाड़, चन्दावरकर, रहीमतुल्ला आदि नरमदल वालों को यह सुझाव देना कि वे सरकार के सहयोग से रिपोर्ट के पक्ष में प्रचार संगठित करें तथा अन्य ऐसी ही बातें भी थी। इसीलिए कांग्रेस ने जहाँ यह स्वीकार किया कि रिपोर्ट में कुछ प्रस्ताव किन्हीं दिशाओं में अग्रगामी कदम थे, वहीं उसने घोषणा की कि कुल मिलाकर योजना 'निराशाजनक और असंतोषजनक' है। दिसम्बर, 1918 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में, पूर्व के विशेष अधिवेशन में पारित प्रस्ताव की पुष्टि करते हुए इसमें निम्न धारा और जोड़ दी गई, "इस कांग्रेस की राय है कि जहाँ तक प्रान्तों का प्रश्न है उन्हें तुरन्त उत्तरदायी शासन दिया जाना चाहिए और प्रस्तावित संवैधानिक सुधारों के लाभ से ब्रिटिश भारत के किसी भी भाग को वंचित नहीं किया जाना चाहिए।" इस तरह से अगस्त, 1918 के अपने विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने माँग की थी कि केन्द्र में कुछ अधिकार और प्रान्तों में शांति और व्यवस्था के अलावा प्राय: शेष सभी अधिकार उत्तरदायी हाथों में हस्तान्तरित कर दिए जाएँ। दिसम्बर, 1918 के वार्षिक अधिवेशन में भी स्वशासी डोमीनियनों के दर्जे की माँग की गई थी। 1919 का वर्ष अनेक दु:खद घटनाओं का वर्ष था। इसके बावजूद कांग्रेस ने अमृतसर (दिसम्बर, 1919) अधिवेशन में ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा व्यक्त की और युद्ध के सफल समाप्ति पर भी एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया। ब्रिटिश साम्राज्य के अविछिन्न अंग के रूप में भारत के लिए उत्तरदायी शासन की माँग को दोहराया, साथ ही सुधारों के लिए कार्य करने का संकल्प व्यक्त किया। स्पष्ट है कि अपनी समस्त निराशा और संतोष के बावजूद उस समय तक वे सम्बन्ध-विच्छेद करने की हिम्मत नहीं जुटा पाए।

प्र.4. द्वैध शासन की असफलताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the failure of Dyarchy.

उत्तर

द्वैध शासन की असफलता
(Failures of Dyarchy)

द्वैध शासन की असफलता का उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—

1. कूपलैण्ड के मतानुसार लागू किए जाने के प्रथम तीन वर्षों तथा द्वैध शासन प्रणाली के अन्तर्गत कुछ प्रान्तों में आशातीन सफलता मिली, लेकिन शीघ्र ही इसके दोष उभरकर सामने आए। द्वैध शासन की असफलता के कारणों का परीक्षण करने हेतु 1924 में गठित मुडीमैन समिति के अनुसार इस योजना की असफलता के निम्नलिखित कारण थे—
   (i) प्रान्तीय विषयों के विभाजन का कोई तर्कसंगत उचित आधार नहीं था।
   (ii) मंत्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव था तथा उन्हें वास्तविक शक्ति से वंचित रखा गया था।
   (iii) हस्तांतरित विषयों को लागू करने में वित्तीय कठिनाइयाँ थीं तथा
   (iv) नौकरशाही तथा भारतीय सेवा के सदस्य मंत्रियों के साथ आवश्यक सहयोग नहीं कर रहे थे।

TOUCH 'n PASS

2. आरक्षित विषयों में राजस्व, मालगुजारी में सेवा व सहायता, न्याय, पुलिस, जेल, दण्ड एवं प्रक्रिया विधि, समाचार-पत्रों एवं मुद्रण कार्य की देखभाल, सिंचाई, खानें, बिजली व जन सेवा आदि थे, जिन्हें प्रान्त एवं उसके कार्यपालिका परिषद् के देख-रेख में छोड़ा गया था।
3. द्वैध शासन के अन्तर्गत विषयों के बेढंगे विभाजन पर प्रकाश डालते हुए संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन मंत्री ने अवलोकन किया कि सन् 1921 में कृषि विभाग के अधीन कृषि जोतों के विखण्डीकरण के बारे में जाँच शुरू की गई, लेकिन जब 1922 में जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो यह अनुभव किया गया कि यह मामला राजस्व विभाग द्वारा तय किया जाना उचित होगा और प्रकरण उस विभाग को सौंपा गया। बाद में 1924 में यह प्रतीत हुआ कि उक्त प्रकरण सहकारिता विभाग से सम्बन्धित था, इसलिए उसे सहकारिता विभाग को भेज दिया गया।
4. इस पद्धति में मंत्रियों को सरकार पर पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता था, जिससे उसकी स्थिति बहुत कमजोर थी। मंत्री की नियुक्ति तथा पदमुक्ति गवर्नर द्वारा किए जाने के कारण गवर्नर की मर्जी के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। आरक्षित विषयों में मंत्री का कोई सरोकार नहीं था, जबकि अनेक हस्तांतरित विषयों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आरक्षित विषयों से सम्बन्ध था। प्रान्तीय विधान परिषद् में भारतीयों की बहुलता होने पर भी मंत्री को अपने अस्तित्व के लिए गवर्नर और उसके समर्थकों पर निर्भर रहना पड़ता था। जिसके कारण उनकी स्थिति कमजोर थी।
5. द्वैध शासन पद्धति के अधीन मंत्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व न होने के कारण उनमें परस्पर सहयोग तथा एकता का अभाव था। मंत्रियों में आपसी खींचातानी के कारण विधान परिषद् में उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थी और न ही उनकी विशेष प्रतिष्ठा थी।
6. इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत हस्तान्तरित विषयों को भारतीय मंत्रियों को सौंप दिया गया था। लेकिन इन्हें सिविल सेवा के अधिकारियों का वंछित सहयोग प्राप्त नहीं था; क्योंकि प्रशासनिक सेवा पूर्णत: भारत सचिव के नियन्त्रण में भी। फलत: जब भी ये अधिकारीगण मंत्री के विभाग में पदस्थ किए जाते थे वे अपने कार्य दक्षता से नहीं करते थे। प्रजातीय उच्चता के साथ-साथ भारतीय सदस्यों की अकुशलता के सम्बन्ध में उनकी पूर्व कल्पना की थी। वे भारतीय मंत्रियों के साथ सहयोग बहुत कम करते थे। इसके अतिरिक्त मंत्री अपने काम के लिए अपेक्षाकृत नए और अनुभवहीन होने के कारण, प्रशासनिक अधिकारियों की सहायता के बिना अपना कार्य कुशलता से नहीं कर पाते थे। विवाद की स्थिति में गवर्नर बहुधा सिविल सेवकों का ही पक्ष लेता; क्योंकि वह उन्हीं में एक था। इस प्रकार मंत्री की स्थिति बहुत ही दयनीय और कमजोर थी।
7. वित्त विभाग की विचित्र स्थिति भी द्वैध शासन की असफलता का एक प्रमुख कारण थी। यह एक ऐसा विभाग था जो दोनों ही प्रकार के विषयों अर्थात् आरक्षित एवं हस्तांतरित विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता था; परन्तु दुर्भाग्यवश इसे कार्यपालिका परिषद् के एक सदस्य के अधीन रखा गया था, जिसके कारण आरक्षित विषयों के प्रति उदारता और हस्तांतरित विषयों के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाई जानी स्वाभाविक ही थी। अत: मंत्रियों के विभाग का कार्य आवश्यक वित्त के अभाव में पिछड़ जाता था और उन्हें वित्त सचिव की मर्जी पर निर्भर रहने के लिए मंत्री को जनता की आलोचना का शिकार होना पड़ता था।
8. प्राकृतिक विपदाएँ भी कुछ तक द्वैध शासन की विफलता का कारण बनीं। 1920 में मानसून वर्षा के अभाव में गम्भीर अकाल पड़ा, जिससे निपटने के लिए प्रान्तों को वित्तीय सहायता के रूप में बड़ी धनराशि केन्द्रीय सरकार को देनी पड़ी। इसका प्रान्तों के विभागों के कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। साथ ही जलियावाला बाग की त्रासदी तथा खिलाफत आन्दोलन आदि के कारण देश की राजनीतिक स्थिति बिगड़ गई फलस्वरूप प्रशासन को सुधार योजना से हटकर राजनीतिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु ध्यान देना पड़ा।

प्र.5. 1935 के अधिनियम सुधार में प्रान्तीय स्वायत्तता के कार्यन्वयन की व्याख्या कीजिए।
Discuss the implementation of provincial autonomy in Act 1935 reforms.

उत्तर

प्रान्तीय स्वायत्तता का कार्यान्वयन
(Implementation of Provincial Autonomy)

1935 के अधिनियम सुधार में प्रान्तीय स्वायत्तता के कार्यन्वयन की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है—

1. कांग्रेस ने यद्यपि अधिनियम की निंदा की थी, लेकिन कुछ कांग्रेसी नेताओं का विचार था कि संवैधानिक तरीकों को परीक्षण के तौर पर अपनाया जाना चाहिए। यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के मूल सवाल पर सब एकमत थे

फिर भी लड़ाई के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों को लेकर कांग्रेसियों में विवाद था। इस समय वामपंथी विचारधारा का काफी जोर था और वामपंथी तथा दक्षिणपंथियों के बीच इस मसले पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ। चुनावों में भाग लेने पर अन्ततः सभी सहमत थे।

2. यद्यपि जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट सत्ता में भागीदारी के खिलाफ थे। नेहरू जी ने लखनऊ अधिवेशन में कहा, "पहली बात तो यह है कि सत्ता में हिस्सेदार का मतलब अधिनियम 1935 को स्वीकार करना होगा; खुद को दोषी ठहराना होगा। यह तो बिना अधिकार के उत्तरदायित्व वहन करना होगा; क्योंकि राज्य और सत्ता के ढाँचे अपरिवर्तित रहेंगे। कांग्रेस तो जनता के लिए कुछ कर नहीं पाएगी, उल्टे वह किसी-न-किसी रूप में दमनकारी साम्राज्यवादी सत्ता का एक हिस्सा बन जाएगी और जनता के शोषण में उसका सहयोग करेगी।" आगे कहा "दूसरी बात सत्ता में साझेदारी से जनांदोलन का क्रांतिकारी चरित्र खत्म हो जाएगा।" कुल मिलाकर मुद्दा यह है कि हम चाहते क्या हैं? क्रांतिकारी परिवर्तन या ब्रिटिश द्वारा समय-समय पर फेंके जाने वाले टुच्चे सुधारों का टुकड़ा?"
3. साम्राज्यवादी सरकार ने घोषित किया कि 1 अप्रैल, 1935 से 1935 का अधिनियम लागू होगा, किन्तु पर्याप्त संख्या में देशी राज्य संघ में सम्मिलित होने के लिए तत्पर न थे इसलिए फेडरल संघ का संविधान स्थगित रहा। 1 अप्रैल से केवल प्रान्तीय सरकारों से सम्बन्ध रखने वाला भाग ही लागू हुआ। कांग्रेस कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर चुनाव लड़ने के लिए तैयार हुई और अन्य राजनीतिक दलों ने भी इसके प्रति असन्तोष व्यक्त किया; किन्तु वे निर्वाचनों में सम्मिलित होने के लिए तत्पर थे। फरवरी, 1937 में चुनाव करवाए गए थे, जिसमें कांग्रेस को महत्त्वपूर्ण सफलता मिली। मद्रास, संयुक्त प्रान्त तथा उड़ीसा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। उसे बम्बई में प्रायः आधे स्थान मिले और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त तथा असम में वह सबसे बड़े दल के रूप में उभरीं पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। बंगाल में प्रजापार्टी एवं सिन्ध में अनेक छोटे-छोटे गुटों का अविर्भाव हुआ। मुस्लिम लीग के लिए निर्वाचन परिणाम अनुकूल नहीं रहे, सभी विधानमण्डलों में उसकी शक्ति इतनी सीमित थी कि वह किसी भी प्रान्त में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने की स्थिति में न रही।
4. कांग्रेस ने चुनाव एक निश्चित सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर लड़े थे। इसलिए कांग्रेस को चुनावों में अपार सफलता मिली। राष्ट्रीय कांग्रेस को अभी तक 'मामूली अल्पमत' का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी मान कर चलने वाले समाचार 'लंदन टाइम्स' को मजबूर होकर लिखना पड़ा कि एक बार फिर भारत के चुनावों ने दिखा दिया कि केवल कांग्रेस पार्टी ही ऐसी पार्टी है, जिसका महज प्रान्तीय आधार पर संगठन नहीं है इस पार्टी के तमाम प्रस्ताव, अधिकांश विपक्षी पार्टियों के प्रस्तावों की तुलना में ज्यादा सकारात्मक और रचनात्मक रहे हैं। कांग्रेस कार्य समिति ने 18 मार्च, 1937 को कांग्रेस बहुल प्रान्तों में मंत्रिमण्डल बनाने के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया, लेकिन यह शर्त रखी कि गवर्नर यह वचन दे कि वे मंत्रियों के संविधानिक कार्यों में तथा दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा अपनी-अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमण्डलों की मंत्रणा पर ही करेंगे। भारत सचिव की अनुमति से गवर्नर जनरल लॉर्ड लिनलिथगो ने 22 जून, 1937 को गवर्नरों द्वारा मंत्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप न करने का आश्वासन देते हुए घोषणा कि, "जो विषय मंत्रियों के क्षेत्र में आते थे उनके सम्बन्ध में गवर्नर के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करें।" इस आधार पर कांग्रेस नेताओं की मान्यता थी कि इस घोषणा से गवर्नरों के लिए अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करना आसान न होगा।
5. कांग्रेस ने जुलाई, 1937 में संयुक्त प्रान्त, मद्रास, बम्बई मध्य प्रान्त, उड़ीसा एवं बिहार में अपने मंत्रिमण्डल बनाए। सितम्बर, 1937 में पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तथा सितम्बर, 1938 में असम में कांग्रेस के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार बनी। लगभग दो वर्ष कांग्रेस सत्ता में रही और सितम्बर, 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस का सत्ता में रहना स्वतंत्रता संग्राम के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। अपने कार्यकाल में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने किसानों की स्थिति सुधारने के लिए कानून बनाए। 'काश्तकारी कानून' लागू किया, जिसका उद्देश्य बेदखली के खिलाफ एक निश्चित सीमा तक सुरक्षा देना था। लगान में कमी करने के प्रयास किए गए। भूराजस्व संग्रह के बारे में जमींदारों के अधिकार सीमित कर दिए गए। किसानों को ऋण राहत के लिए कानून बनाए गए। अकाल के समय ऋण से राहत और अनेक सुविधाएँ उपलब्ध करवाने का प्रयास किया। मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए एक सम्पूर्ण कार्यक्रम तैयार किए गए। प्राथमिक शिक्षा जो अभी तक उपेक्षित थी पर विशेष जोर दिया गया। गाँधीजी की प्राथमिक शिक्षा की 'बुनियादी शिक्षा

TOUCH 'n' PASS

पद्धति' को अपनाया गया। स्वच्छकारों के उत्थान हेतु मन्दिर प्रवेश, नागरिक असुविधाओं का निवारण तथा शिक्षा प्रसार पर ध्यान दिया। शराबबन्दी के लिए जनता को प्रोत्साहित किया। कांग्रेस में मालवीय जैसे दक्षिणपंथी, पटेल और राजेन्द्र प्रसाद जैसे समझौतावादी, जवाहरलाल नेहरू जैसे वामपंथी, जयप्रकाश नारायण और नरेन्द्र देव जैसे समाजवादी एवं साम्यवादी शामिल थे, अत: कांग्रेस की नीतियाँ सदैव सामंजस्यपूर्ण रहीं। विधानमण्डलों में जहाँ कांग्रेस की सरकारें थीं मोटे रूप में स्पष्ट बहुमत होने के कारण गवर्नर भी उसमें अनावश्यक रूप से विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे। यद्यपि किसी सरकार की उपलब्धियों का परीक्षण करने के लिए 27 माह की अवधि पर्याप्त नहीं होती है; परन्तु कांग्रेस ने इस अल्प अवधि में जनता में एक अलग पहचान बनाई। द्वितीय महायुद्ध के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण कांग्रेस ने त्यागपत्र दे दिया था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मार्ले मिन्टो सुधार 1909 की विस्तृत विवेचन कीजिए।
Give a detailed discussion of Morley Minto reforms 1909.

उत्तर

मार्ले मिन्टो सुधार, 1909
(Morley Minto Reforms, 1909)

परिस्थितियाँ राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 1892 से 1909 तक का काल राजनीतिक उतार चढ़ाव का दौर कहा जा सकता है इस अवधि में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस गरम दल एवं नरम दल जैसे दो भागों में विभक्त हो गई थी। गरम या उग्र राष्ट्रवादी अंग्रेजों से सीधी टक्कर लेने को उत्सुक थे, वहीं नरम दल का अनुनय एवं शान्तिपूर्ण आन्दोलन में विश्वास था। लॉर्ड कर्जन (1899-1905) ने बंगाल विभाजन करके उस क्षेत्र के लोगों की राष्ट्रीयता को बाँटने की कोशिश की परिणामत: लोगों का सरकार विरोधी रवैया अधिक उग्र हुआ। यही नहीं कलकत्ता कॉर्पोरेशन अधिनियम (1899) और द ऑफिसियल सिक्रकट्स एक्ट, (1904) की घातक व्यवस्था का लोगों ने विरोध किया। यदि सैन्य व्यवस्था का उल्लेख किया जाए तो 1903 से 1909 के बीच सेनाध्यक्ष लॉर्ड किचनर द्वारा किए गए फेरबदल से सेना में असन्तोष था। ऊपर से 1899-1900 के भीषण अकाल से भी लोगों के कष्ट बढ़े और सरकार निष्क्रिय रूप में सब कुछ देखती रही थी। इन सब परिस्थितियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के उदारवादी पक्ष को कमजोर किया और उग्रवादी पलड़ा भारी पड़ने लगा एवं आतंकवादियों का आक्रोश बढ़ा।

1. उद्देश्य राष्ट्रीयता को क्षीण करने के लिए साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक हो गया था और बंगाल विभाजन उसी योजना की पहली कड़ी थी। वायसराय के सचिवालय से सम्बद्ध आर्चिबोल्ड की प्रेरणा से अक्टूबर, 1906 में आगा खाँ के नेतृत्व में मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल वायसराय लॉर्ड मिन्टों से मिला और मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन प्रणाली की माँग की और मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिए जाने का आग्रह किया। यह ब्रिटिश सरकार की राष्ट्रीयता को बाँटने की दूसरी बड़ी चाल थी, जो आगे जाकर सफल रही। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। गवर्नर जनरल से मिलने वाला प्रतिनिधिमण्डल मुस्लिम लीग में शामिल हो गया। अब साम्राज्य के प्रति निष्ठा प्रकट करने की शिक्षा दिया जाना मुस्लिम लीग का उद्देश्य बन गया। मुस्लिम प्रबुद्ध वर्ग को कांग्रेस से दूर रखने का सरकारी प्रयास कारगर साबित हुआ।
2. सुधारों का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी अथवा प्रतिनिधिक शासन की स्थापना कदापि नहीं था तत्कालीन भारत सचिव मार्ले मिन्टो भारत में उत्तरदायी शासन असम्भव और अनुपयुक्त मानते थे। उनका उद्देश्य भारतीय शासन में स्थानीय लोगों का सहयोग प्राप्त करना मात्र था।

अधिनियम 1909 के मुख्य प्रावधान (Main Provisions of the Act of 1909)

अधिनियम 1909 के मुख्य प्रावधान निम्न प्रकार हैं—

1. प्रावधान सर्वोच्च केन्द्रीय विधान परिषद् (केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा) जिसमें अधिनियम द्वारा 16 सदस्यों का प्रावधान किया था बढ़ाकर 60 सदस्यों की तथा 9 पदेन सदस्यों की व्यवस्था की। कुल 69 सदस्यों में से 37 स्थान सरकारी अधिकारियों और 32 गैर सरकारी सदस्यों के लिए सुरक्षित थे। 32 गैर सरकारी सदस्यों में से 5 नामजद और 27 चुने हुए सदस्य थे। निर्वाचित 27 सदस्यों में से 6 हिन्दू जमींदारों, 5 मुसलमानों, 1 मुस्लिम जमींदार, 1 बम्बई के चैम्बर ऑफ

TOUCH 'n PASS

कॉमर्स, 1 बंगाल के चैम्बर ऑफ कॉमर्स शेष 13 अन्य प्रान्तीय विधान परिषदों से निर्वाचित किए जाने का प्रावधान किए। तेरह सामान्य निर्वाचित सदस्यों में बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा संयुक्त प्रान्त से दो और पंजाब, बिहार, असम, मध्य प्रान्त तथा बर्मा (म्यांमार) से एक एक सदस्य चुने जाने थे।

2. निर्वाचन प्रक्रिया अप्रत्यक्ष थी, अर्थात् स्थानीय निकायों से निर्वाचन परिषद का गठन होता था जो प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों का निर्वाचन करती थी। प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्य केन्द्रीय व्यवस्थापिका (परिषदों) के सदस्यों का चुनाव करते थे।
3. पूर्व में जैसा उल्लेख किया गया कि मुसलमानों के अपने साम्राज्य के प्रति निष्ठा के बदले पृथक् प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू की गई और उनके प्रतिनिधित्व मामले में रियासत भी दी गई। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधान परिषद् में जनसंख्या के अनुपात में उन्हें अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला। हिन्दुओं की तुलना में आय की योग्यता को मुसलमानों के लिए कम रखा गया।
4. गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को शामिल करना इस अधिनियम की विशेषता थी। पहले भारतीय सदस्य के रूप में सत्येन्द्र सिन्हा को शामिल किया गया इसी प्रकार भारत सचिव की परिषद् (India Council) में दो भारतीयों के०सी० गुप्ता और सैय्यद हुसैन बिलग्रामी को इंग्लैण्ड स्थित कौंसिल में नियुक्त किया गया। आर्थिक प्रस्ताव पर बहस करने, संशोधन प्रस्ताव रखने, कुछ विषयों में मतदान करने, प्रश्न पूछने पर मतदान करने, सामान्य प्रश्नों पर बहस करने और सार्वजनिक हितों के प्रस्तावों को प्रस्तुत करने का अधिकार सदस्यों को मिला। प्रस्ताव प्रस्तुत करने से पहले अध्यक्ष को 15 दिन पूर्व सूचना देना अनिवार्य था।
5. प्रान्तीय विधान परिषदें मसलन बम्बई, मद्रास, बंगाल, संयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय कौंसिलों में भी अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 50 कर दी गई, जिनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होता था। छोटे प्रान्तों के लिए यह संख्या 30 तक सीमित रही।

समीक्षा (Review)

इसकी समीक्षा को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. भारत सचिव मार्ले ने अपने संसदीय अभिकथन में यह स्पष्ट किया था, कि इस अधिनियम का लक्ष्य भारतीयों को उत्तरदायी सरकार प्रदान करना नहीं है न संसदीय प्रणाली लागू करना है, अपितु विधान परिषदों को केवल परामर्शदात्री संस्थाओं के रूप में विकसित करना है। सरकार ने अधिनियम को सुधारों का नाम देकर साम्प्रदायिकता को बढ़ाया, जो राष्ट्रवादियों की एकता को तोड़कर उनमें दरार डालने की सोची समझी गई नीति का अंग था। केवल हिन्दू-मुसलमानों में भेद डालने से सरकार सन्तुष्ट नहीं हुई, अपितु देश को निम्न वर्ग एवं पूँजीपतियों, जमींदारों, व्यापारियों जैसे कई वर्गों में बाँट देना चाहती थी। अधिनियम द्वारा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिए जाने को जवाहर लाल नेहरू ने कैंसर की संज्ञा देते हुए कहा था, इसका प्रभाव ठीक उसी प्रकार था, जिस प्रकार कैंसर धीरे-धीरे शरीर के सभी अंगों को विनष्ट कर देता है।
2. वोट देने का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को दिया गया जिनकी वार्षिक आय ₹ 15,000 थी या जो ₹ 10,000 वार्षिक लगान देते थे। बंगाल में केवल उन्हीं लोगों को वोट देने का अधिकार मिला, जिन्हें राजा या नवाब की उपाधि प्राप्त थी। दरअसल लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनकर सीधे विधान परिषदों में भेजने का अधिकार नहीं था अपितु अप्रत्यक्ष पद्धति से निर्वाचित होते थे अर्थात् वे लोग जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।
3. जहाँ तक सर्वोच्च विधान परिषदों का प्रश्न है उसमें अभी तक सशक्त शासकीय बहुमत बना हुआ था तथा गैर-सरकारी सदस्यों को अल्पमत में रखा गया, जिससे वे सरकारी निर्णयों के विरुद्ध आवाज नहीं उठा सके। दूसरी ओर प्रान्तीय परिषदों में गैर-सरकारी बहुमत स्थापित हुआ लेकिन गैर-सरकारी सदस्यों के अतिरिक्त मनोनीत सदस्य होते थे, जो सरकार द्वारा मनोनीत होने के कारण उसी तंत्र का समर्थन करते थे, फिर गवर्नर जनरल या गवर्नर को वोट देने का अधिकार गैर सरकारी बहुमत की योजना को विफल करने के लिए पर्याप्त था।
4. यह भी उल्लेखनीय है कि इसके द्वारा न तो प्रान्तीय सरकारों पर केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण को कम किया गया एवं न ही केन्द्रीय सरकार पर भारत सचिव एवं उसकी परिषद् के नियन्त्रण में कोई कमी की गई।
5. 1909 के सुधारों से जनता को 'नाममात्र' सुधार ही प्राप्त हुए, वास्तविक रूप से कुछ नहीं। इससे प्रभाव तो मिला पर शक्ति नहीं। शासन का उत्तरदायित्व अन्य वर्ग को और शक्ति अन्य वर्ग को सौंप दी गई। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के विधि सदस्य लॉर्ड सत्येन्द्र सिन्हा ने 1917 में एक साक्षात्कार में कहा "यद्यपि 1909 के सुधार एक सुस्पष्ट अगला कदम थे लेकिन इसने भारतीयों को विधान परिषदों में केवल प्रभाव दिया न कि शक्ति।"

TOUCH 'n PASS

प्र.2. माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919 पर विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Montagu Chelmsford Reforms, 1919.

उत्तर

माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919
(Montagu Chelmsford Reforms, 1919)

परिस्थितियाँ (Conditions)

परिस्थितियों के आधार पर माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919 को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. बंगाल विभाजन के फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन में उठे तूफान को कम करने के लिए 1911 में विभाजन समाप्त कर दिया गया। 1914 में तिलक को 6 वर्ष की कैद से मुक्त किया गया। इसी दौर में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ। कांग्रेस ने साम्राज्य के प्रति निष्ठा दर्शायी और सरकार की कठिनाई को ध्यान में रखा गया।
2. मिन्टों मार्ले से मुस्लिम जनता सर्वाधिक लाभान्वित हुई। ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल का विभाजन भी भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का उद्देश्य से ही किया गया था; परन्तु क्रांतिकारियों के दबाव के कारण ब्रिटिश सरकार ने बंगाल का विभाजन निष्प्रभावी कर दिया जिसे भारतीय मुसलमानों ने हिन्दुओं के समक्ष सरकार का समर्पण माना। 1912-13 के बाल्कन युद्ध से सम्बन्धित ब्रिटिश सरकार की तुर्की के विरुद्ध नीति के कारण मुसलमानों का असन्तोष और भी अधिक बढ़ गया तथा उन्होंने इसे अंग्रेजों के षड्यंत्र की संज्ञा दी। इन परिस्थितियों में अंग्रेजी नीति के विरुद्ध मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और मौलाना मुहम्मद अली ने आवाज उठाई। 'अलहिलाल' तथा 'कामरेड' के माध्यम से उन्होंने यह प्रचार साधारण मुसलमानों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया।
3. साम्राज्य के विरुद्ध असंतोष को दबाने के लिए अंग्रेजी प्रशासकों ने 'डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट' बनाया प्रेस पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए। अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार के लिए अमेरिका और इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों ने कहा कि वे युद्ध में भाग इसलिए ले रहे थे कि विश्व में प्रजातंत्रीय प्रणाली सुरक्षित रहे। इस प्रचार से कांग्रेस के नेताओं को यह विश्वास हुआ कि सरकार सम्भवत: कुछ सुधार प्रदान करने वाली थी। ऐसे ही विचारों और प्रतिक्रियाओं की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय नेताओं ने भी कुछ ताजा संवैधानिक सुधारों की योजनाएँ बनाई। इन्हीं कुछ योजनाओं में से एक थी मद्रास के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड विलिंगडन की प्रेरणा से, गोपालकृष्ण गोखले द्वारा तैयार की गई योजना, जो बाद में गोखले की राजनीतिक वसीयत के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस योजना का प्रथम प्रकाशन हुआ अगस्त, 1917 में। गोखले की योजना के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को स्वायत्तता प्रदान की जानी थी। प्रत्येक प्रान्त का एक गवर्नर होना था तथा एक कार्यकारी परिषद् अथवा कैबिनेट। कार्यकारी परिषद् में छह सदस्य होने थे—3 भारतीय और 3 अंग्रेज। भारत सरकार और भारत सचिव के कठोर नियन्त्रण के स्थान पर स्थानीय प्रशासन के मामलों में प्रान्तों के अपने प्रतिनिधियों द्वारा बनाई गई विधान परिषदों का नियन्त्रण स्थापित किया जाना था। विधान-परिषदों की सदस्य संख्या 75 और 100 के बीच होनी थी और इसमें से 4/5 विभिन्न निर्वाचक मंडलों और हितों के द्वारा चुने जाने थे।
4. महायुद्ध के दौरान जो अन्य सुधार योजनाएँ सामने आई, उनमें प्रमुख थीं, 1916 का केन्द्रीय विधान परिषद् के 19 गैर-सरकारी सदस्यों का ज्ञापन तथा 1916 की ही कांग्रेस लीग योजना। ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वालों में मोहम्मद अली जिन्ना, पंडित मदनमोहन मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री जैसे विशिष्ट नेता थे। इस ज्ञापन में प्रस्ताव किया गया था कि—
   (i) प्रान्तीय और केन्द्रीय सभी कार्यकारी परिषदों में कम-से-कम आधे सदस्य भारतीय होने चाहिए।
   (ii) विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होना चाहिए।
   (iii) मताधिकार विस्तृत किया जाना चाहिए ताकि आम जनता को मत देने का अवसर मिल सके।
   (iv) अल्पसंख्यक वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।
   (v) भारत-मंत्री की परिषद् को समाप्त कर देना चाहिए।
   (vi) प्रान्तीय सरकारों को स्वायत्तता तथा केन्द्रीय स्तर पर भारत को स्थानीय मामलों में पूरा स्वशासन दे दिया जाना चाहिए।

TOUCH 'n PASS

5. 1915 तथा 1916 में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थान पर हुए। 1916 में लखनऊ अधिवेशन में दोनों संगठनों ने अलग-अलग एक ही योजना स्वीकार की, जिसे कांग्रेस-लीग योजना अथवा लखनऊ समझौता कहते हैं। इस समझौते के दो भाग थे। एक मुसलमानों के अधिकारों और दूसरा उन सामान्य सुधारों के सम्बन्ध में था जो भारतीय प्रशासन में किए जाने थे। मुसलमानों के अधिकारों के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली तथा उनके प्रतिनिधित्व की माँग भी कांग्रेस द्वारा स्वीकार कर ली गई। विभिन्न प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित भारतीय सदस्यों की संख्या का निश्चित भाग मुसलमानों के लिए आरक्षित कर दिया गया। पंजाब में 50 प्रतिशत, बंगाल में 40 प्रतिशत, यू०पी० में 30 प्रतिशत, मध्य प्रान्त में 15 प्रतिशत, बिहार में 25 प्रतिशत और मद्रास में 15 प्रतिशत। केन्द्रीय विधान परिषद् में निर्वाचित सदस्यों की संख्या को 1/3 मुसलमानों के लिए सुरक्षित कर दिया गया और यह समस्त निर्वाचन साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा होंगे। यदि किसी सभा में एक सम्प्रदाय के 3/4 सदस्य किसी प्रस्ताव का यह कहकर विरोध करें कि वह उसके सम्प्रदाय के हितों के विरुद्ध था तो उस प्रस्ताव को पारित नहीं किया जाएगा।
6. दूसरे भाग की योजना के प्रमुख उपबन्ध थे—प्रशासन और वित्त के क्षेत्र में प्रान्तों को केन्द्र के नियन्त्रण में अधिकतम स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान परिषद् के 80 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित हों; केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यकारिणी के कम-से-कम आधे सदस्य विधान परिषद् द्वारा निर्वाचित होने चाहिए; सैनिक और विदेशी विभागों को छोड़कर शेष समस्त विषयों पर परिषद् को नियंत्रण प्राप्त हो; भारत सचिव के भारत सरकार के साथ वही सम्बन्ध होने चाहिए जो औपनिवेशिक सचिव के डोमीनियनों की सरकारों के साथ होते हैं।
7. इस समझौते को कांग्रेसी नेताओं ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया। उस समय इस समझौते की खुशी में इसके दूरगामी परिणामों को राष्ट्रवादियों ने ठीक प्रकार से नहीं समझा। मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि मानकर कांग्रेस को सदा के लिए दुर्बल कर लिया। कांग्रेसी नेताओं ने तात्कालिक मुस्लिम असंतोष से लाभ उठाकर इन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, उन्होंने कांग्रेस के मौलिक आधार को समाप्त कर मुस्लिम लीग के दोनों सिद्धान्तों—साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली और अधिप्रतिनिधित्व को मान्यता प्रदान कर दी। इस समझौते से भारतीय राष्ट्रीयता क कल्पना को भारी आघात पहुँचा। लीग इसे एक राजनीतिक सफलता मानती रही, कांग्रेस नेता इसे स्थायी समझते रहे। वस्तुत: यह एक गम्भीर भूल थी।

होमरूल आन्दोलन (Home Rule Movement)

होमरूल आन्दोलन के आधार पर माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919 को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. यह आन्दोलन 1916 में ऐनीबेसेन्ट और तिलक द्वारा प्रारम्भ किया गया था। वस्तुत: यह एक संवैधानिक संघर्ष था और इसका लक्ष्य था ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतीयों के लिए स्वशासन प्राप्त करना। आन्दोलन शीघ्र ही सारे देश में फैल गया। सरकार ने इसे कुचल डालने के लिए दमन-चक्र चलाया, किन्तु जून, 1917 में ऐनीबेसेन्ट की गिरफ्तारी से आन्दोलन और भड़क उठा। सरकार शीघ्र ही बेसेन्ट को रिहा करने पर मजबूर हो गई। भारत सरकार तथा विभिन्न प्रान्तीय अधिकारी इस आन्दोलन के प्रभाव से भयभीत हुए। भारत सचिव पर इस बात के लिए गवर्नर जनरल ने दबाव डाला कि वह भारतीय सरकार की नीति तथा उद्देश्य स्पष्ट करे। विवश होकर 20 अगस्त, 1917 को भारत सचिव माण्टेग्यू ने घोषणा की, जिसमें अंग्रेजी सरकार की नीति का लक्ष्य स्वायत्त शासन की स्थापना करना बताया।
2. **20 अगस्त, 1917 की उद्घोषणा**—भारत में अंग्रेजी नीति से व्यापक असंतोष, युद्ध संचालन में अधिक भारतीय सहयोग की आवश्यकता, होमरूल आन्दोलन से राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन, रूस में मार्च, 1917 की उदारवादी क्रान्ति, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन का युद्ध में सम्मिलित होना और मेसोपोटामिया जाँच आयोग द्वारा भारत सरकार की तीव्र आलोचना आदि से प्रभावित होकर यह आवश्यक हुआ कि अंग्रेज प्रशासन में भारतीयों को अधिक सक्रिय योगदान देने का अवसर प्रदान किया जाए। 20 अगस्त, 1917 को तत्कालीन भारत सचिव, माण्टेग्यू ने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में लागू किए जाने वाले प्रस्तावित सुधारों की घोषणा की, जिसमें चार बातों का उल्लेख था—
   (i) ब्रिटिश शासन का लक्ष्य भारत में स्वशासन को विकसित करना है।
   (ii) स्वशासन एकदम न दिया जाकर विभिन्न चरणों में दिया जाएगा।
   (iii) विभिन्न चरणों का निर्धारण भारतीयों द्वारा स्वशासन की दिशा में की गई प्रगति पर निर्भर करेगा।
   (iv) प्रगति के विषय में निर्धारण ब्रिटिश संसद तथा ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा किया जाना था।

3. 1917 के 'अगस्त प्रस्ताव' का भारतीय सांविधानिक इतिहास में उल्लेखनीय महत्त्व है। यह प्रथम शासकीय घोषणा थी जिसके द्वारा भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्य डोमीनियन्स की तरह स्वतन्त्र डोमीनियन्स की प्रास्थिति प्रदान करना प्रस्तावित था। फलतः आगे चलकर भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना सम्भव हुआ।
4. इस प्रस्ताव से आशान्वित होकर भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस को आगामी वर्षों में 'स्वराज्य' प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करने का प्रोत्साहन मिला।
5. इस प्रस्ताव के कुछ दोष भी थे। प्रथम, इसके अन्तर्गत स्वायत्त शासन की कोई निश्चित समयावधि नहीं दी गई थी। प्रगति का निर्णय ब्रिटिश सरकार द्वारा ही किया जाना था, जो स्वतन्त्रता की नीति के विपरीत था। इस प्रस्ताव से सबसे बड़ी हानि यह हुई कि इसके कारण उग्रवादी, नरमदल तथा मुस्लिम लीग की एकता को पुनः आघात पहुँचा; क्योंकि नरमदल के कांग्रेस नेताओं ने इसे बड़ी उपलब्धि माना, जबकि उग्रवादियों ने इन सुधारों को नगण्य समझा।

प्र.3. 1919 के अधिनियम द्वारा किए गए प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
Mention the main provisions of the Act of 1919.

उत्तर

1919 के अधिनियम के प्रावधान
(Provisions of the Act 1919)

हाउस ऑफ कॉमन्स में माण्टेग्यू सुधार योजना पर आधारित एक विधेयक 28 मई, 1919 को प्रस्तुत किया गया। 23 दिसम्बर, 1919 को विधेयक पर सम्राट की स्वीकृति प्राप्त हो गई और उसके बाद यही विधेयक 1919 का भारतीय शासन अधिनियम बन गया।

अधिनियम की प्रस्तावना में भी स्पष्ट किया गया कि—

(i) प्रशासन में भारतीयों का सम्पर्क बढ़ाया जाएगा।
(ii) भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहेगा।
(iii) स्वशासन की संस्थाओं का विकास किया जाएगा।
(iv) भारत में ब्रिटिश नीति का लक्ष्य उत्तरदायी शासन की स्थापना होगा।
(v) उत्तरदायी शासन और स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना का काम धीरे-धीरे और क्रमिक ढंग से होगा, तथा
(vi) कब कितनी प्रगति हो इसका अन्तिम निर्णय ब्रिटिश संसद के ही हाथों में रहेगा।

इन बातों के अतिरिक्त, प्रस्तावना में कहा गया था कि प्रान्तों में स्वशासन की संस्थाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ आंशिक उत्तरदायित्व की भी स्थापना की जाएगी और यथासम्भव प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय नियन्त्रण से मुक्त रखने का भी प्रयास किया जाएगा। 1919 के अधिनियम द्वारा किए गए प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार हैं—

गृहशासन सम्बन्धी प्रावधान (Home Rule Provisions)

भारत सचिव पर संसद का नियन्त्रण बढ़ा दिया गया, अब तक भारत सचिव तथा उसके विभाग पर होने वाला खर्च भारत के राजस्व में से वसूल किया जाता था, लेकिन अब यह सारा खर्च ब्रिटिश संसद द्वारा स्वीकृति धनराशि में से किया जाने लगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भारत सचिव के वेतन पर मतदान के समय उसकी नीति को चुनौती दी जा सकती थी। भारत परिषद् के सदस्यों की संख्या न्यूनतम 8 व अधिकतम 12 कर दी गई। इसमें से आधे सदस्य वे होंगे, जो दीर्घकाल से भारत में रहते आए हों। इन सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया। प्रान्तीय प्रशासन सम्बन्धी कुछ मामलों में भी भारत सचिव की शक्ति में कमी हो गई। इसका कारण था कि प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना। हस्तान्तरित विषयों में भारत सचिव केवल कुछ अवस्थाओं में जैसे कि ब्रिटिश साम्राज्य के हितों, केन्द्रीय विषयों के प्रशासन तथा अपने विशिष्ट अधिकारों की रक्षा के लिए ही हस्तक्षेप कर सकता था। भारत सचिव के कार्यभार को कम करने के लिए अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि सम्राट परिषद् सहित आदेश द्वारा इंग्लैण्ड में भारत के लिए एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति कर सकता है। संविदाएँ करने के सम्बन्ध में परिषद् सहित भारत-सचिव पहले जिन शक्तियों का प्रयोग करता था, उनमें से कोई भी शक्तियाँ हाई कमिश्नर को दी जा सकती थीं। आदेश में उन शर्तों का भी निरूपण किया जा सकता था, जिनके अन्तर्गत हाई कमिश्नर परिषद् सहित गवर्नर जनरल अथवा किसी प्रान्तीय सरकार की ओर से काम करे।

TOUCH 'n PASS

भारत सरकार (Government of India)

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमण्डलों में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। केन्द्रीय स्तर पर भारतीय विधान परिषद् के स्थान पर अब पहली बार एक द्विसदनात्मक विधान मण्डल की स्थापना की गई। इसकी विधायी शक्तियाँ भारतीय विधान परिषद् के समान ही थीं। केन्द्रीय विधान मण्डल के दो सदन थे, राज्य परिषद् (कौंसिल ऑफ स्टेट) और विधानसभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली)। राज्य परिषद् में 60 सदस्य होंगे, जिसमें 27 मनोनीत और 33 निर्वाचित होते थे। इनमें से अधिक-से-अधिक एक-तिहाई सदस्य सरकारी सदस्य हो सकते थे।

केन्द्रीय विधानमण्डल (Central Legislature)

वित्त सम्बन्धी मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में केन्द्रीय विधानमण्डल के दोनों सदनों को बराबर शक्तियाँ प्राप्त थीं। केन्द्रीय सूची में उल्लिखित सभी विषयों पर ब्रिटिश भारत की जनता के लिए कानून बनाने की शक्ति विधानमण्डल को प्राप्त थी। कुछ मामलो में कानून बनाने के पूर्व गवर्नर जनरल की अनुमति प्राप्त की जानी अनिवार्य की गई। केन्द्रीय विधानमण्डल के सदस्य केन्द्रीय सरकार से प्रश्न एवं पूरक प्रश्न भी पूछ सकते थे तथा उनकी आलोचना कर सकते थे। वित्तीय मामलों में विधानसभा की शक्तियाँ केन्द्रीय राज्य परिषद् में विस्तृत थी; क्योंकि वित्त विधेयक पारित कराने के लिए राज्य परिषद् के मत की आवश्यकता नहीं थी। बजट का अधिकांश भाग बिना वादविवाद के ही पास किया हुआ मान लिया जाता था। शेष भाग के बजट में केन्द्रीय सभा कमी कर सकती थी। केन्द्रीय विधानमण्डल के दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न होने की दशा में गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता था, जहाँ बहुमत से अन्तिम निर्णय किया जाता था। गवर्नर जनरल किसी भी विधेयक पर विचार-विमर्श रोक सकता था अथवा किसी भी विधेयक को पास किया हुआ घोषित कर सकता था। संकटकाल में अध्यादेश प्रसारित करने का अधिकार भी गवर्नर जनरल को था। वह किसी भी पास किए हुए विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था। इस तरह केन्द्रीय विधानमण्डल के अधिकार बहुत सीमित थे।

प्रान्तीय शासन (Provincial Administration)

प्रान्तीय शासन को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. प्रान्तीय क्षेत्र में द्वैध प्रणाली की स्थापना इस अधिनियम की मुख्य विशेषता थी। सर्वप्रथम सभी प्रान्तों को एक समान स्तर प्रदान किया गया। अब तक ब्रिटिश भारत में तीन प्रकार के प्रान्त थे—गर्वनर के प्रान्त, चीफ कमीश्नर के प्रान्त तथा लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के प्रान्त। प्रत्येक प्रमुख या गवर्नर के प्रान्त में विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) नाम का एक सदनात्मक विधानमण्डल होना था। प्रान्तीय विधानमण्डलों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कुल संख्या की 70% होनी चाहिए थी तथा मनोनीत सदस्य संख्या 20% से अधिक नहीं हो सकती थी। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय विधानमण्डलों में कुछ गैर सरकारी मनोनीत सदस्य भी होने थे। गवर्नर की कार्यकारिणी के सभी सदस्य प्रान्तीय विधानमण्डल के पदेन सदस्य थे। विभिन्न प्रान्तों के विधानमण्डलों की सदस्य संख्या का उल्लेख किया गया है।
2. प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अपनाई गई और प्रान्तों को अनेक चुनाव क्षेत्रों में बाँट दिया गया, जिसमें साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण की व्यवस्था भी थी। विधान परिषदों के चुनाव में मत देने का अधिकार सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता पर आधारित था, जिसके कारण बहुत कम लोगों को मत देने का अधिकार प्राप्त था। उम्मीदवारों के लिए मताधिकार की योग्यता के लिए कुछ अतिरिक्त योग्यताएँ भी निर्धारित की गई थी। प्रारम्भ में महिलाओं को मताधिकार नहीं दिया गया था, लेकिन बाद में प्राय: सभी प्रान्तों में यह निर्योग्यता हटा दी, अवयस्क तथा विकृत मस्तिष्क व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त नहीं था। इसी प्रकार अब्रिटिश प्रजा को भी मत देने का अधिकार नहीं था। प्रान्तीय विधानमण्डल की अवधि तीन वर्ष की थी, परन्तु प्रान्त का गवर्नर इस अवधि के पूर्व भी इसे भंग कर सकता था। विधानमण्डल भंग किए जाने की स्थिति में प्रान्त के गवर्नर के लिए यह अपेक्षित था कि वह नए विधानमण्डल का छह माह के अन्दर पुनर्गठन करे। विधानमण्डल को अपने सदस्यों में से भी अध्यक्ष निर्वाचित करने का अधिकार था।
3. प्रान्तीय विधानमण्डलों को अपने क्षेत्र में शांति एवं सुशासन बनाये रखने के लिए कानून बनाने की शक्ति दी गई। कुछ विशेष मामलों को छोड़कर शेष मामलों पर कानून बनाने के लिए गवर्नर की पूर्वानुमति आवश्यक नहीं थी। सदस्यों को प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार था। जनता की समस्याओं को सदस्यों द्वारा विधानमण्डल में प्रस्ताव रखकर ध्यान आकर्षित कराया जा सकता था। वित्तीय विषयों में विधानमण्डल की शक्ति अत्यधिक सीमित थी, फिर भी लगभग

TOUCH 'n' PASS

तीस प्रतिशत बजट पर प्रांतीय विधानमण्डल अपना मत दे सकती थी। निम्नलिखित वित्तीय शीर्षकों पर विधान परिषद् को अधिकार प्राप्त नहीं थे—

(i) स्थानीय शासनों द्वारा केन्द्रीय शासन को देय अंशदान,
(ii) ऋणों पर ब्याज तथा निक्षेप-निधि का व्यय,
(iii) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और महाधिवक्ताओं को वेतन, तथा
(iv) सम्राट या भारत सचिव की अनुशंसा से नियुक्त किए गए अधिकारियों के वेतन या भत्ते।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का विभाजन (Division of Federal and Provincial Subjects)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 1919 के अधिनियम की सबसे प्रमुख विशेषता प्रांतीय सरकारों के अधिकार-क्षेत्र का परिसीमन था, जो भारत में संघात्मक व्यवस्था के निर्माण की दिशा में प्रथम चरण था।
2. केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के बीच प्रशासन के समस्त विषयों को 'केन्द्रीय' तथा 'प्रांतीय' दो वर्गों में विभक्त किया गया। विषयों के विभाजन का आधार यह था कि जिन विषयों में एक से अधिक प्रांतों के हितों की प्रधानता थी उन्हें केन्द्रीय विषय माना गया। जिन विषयों से किसी विशेष प्रांत के हित ही निहित थे, उन्हें प्रांतीय विषय माना गया। यातायात, डाकतार, सुरक्षा और वैदेशिक मामले जैसे विषय केन्द्रीय सरकार को दिए गए तथा कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय प्रशासन आदि प्रान्तीय सरकारों को। हस्तान्तरण नियमों (डिवोल्यूशन रूल्स) में प्रांतों के लिए एक सुनिश्चित विधायी क्षेत्र की व्यवस्था की गई और साथ ही राजस्व स्रोतों का भी निर्धारण कर दिया गया।

द्वैध प्रशासन (Dyarchy)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. प्रांतीय शासन के क्षेत्र में 1919 के अधिनियम के द्वारा द्वैध शासन प्रणाली (Dyarchy अर्थात् दो शासकों द्वारा शासन) का प्रवर्तन किया गया। इस योजना के अनुसार 'प्रान्तीय विषयों' को दो उपवर्गों में विभाजित कर दिया गया था—'आरक्षित विषय' और 'हस्तांतरित विषय।' शिक्षा, स्वास्थ्य आदि हस्तांतरित विषय थे, जिनका प्रशासन प्रान्तीय विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों के हाथों में दे दिया गया तथा पुलिस, जेल, न्याय, वित्त राजस्व आदि विषय आरक्षित श्रेणी में रखे गये। कार्यकारी परिषद् के सदस्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। इस प्रकार प्रान्तीय कार्यपालिका को दो भागों में विभक्त कर दिया गया। एक भाग में थे गवर्नर और उसकी कार्यकारी परिषद् के सदस्य तथा दूसरे में विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिगण। आरक्षित विषयों का प्रशासन तो परिषद् सहित गवर्नर को करना था, लेकिन हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में जब तक कोई विशेष कारण न हो, गवर्नर को 'अपने मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार' कार्य करना था। केन्द्र में विधान-मंडल की शक्तियों पर कुछ प्रतिबन्ध तो पहले ही लगे हुए थे। अब कुछ प्रतिबन्ध और जुड़ गये। प्रांतीय विषयों से संबद्ध विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति आवश्यक हो गई।
2. गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को निषेधाधिकार की वर्तमान शक्ति तो पहले ही प्राप्त थी। इस अधिनियम के अधीन उन्हें विधि-निर्माण के क्षेत्र में अधिभाव शक्ति प्राप्त हो गई। यदि गवर्नर जनरल केन्द्रीय विधानमण्डल से किसी विधेयक को पास करने की सिफारिश करता और विधानमण्डल विधेयक को उस रूप में पास न करता जिस रूप में उसके पास करने की सिफारिश की गई थी, तो गवर्नर-जनरल केवल यह प्रमाणित करके ही कि विधेयक 'ब्रिटिश भार या उसके भाग की सुरक्षा, शांति या हितों के लिए आवश्यक है' विधेयक को पास करा सकता था। प्रान्त का गवर्नर 'आरक्षित' विषयों से संबद्ध विधेयकों के संदर्भ में इसी प्रकार की कार्यवाही कर सकता था।
3. वित्त व्यवस्था के ऊपर विधानमण्डल के नियन्त्रण की प्रथा भी इस अधिनियम ने प्रारम्भ की। अब विधानमण्डलों को संभरण की मदों पर मतदान की शक्ति प्राप्त हो गई। अधिनियम में वह व्यवस्था की गई थी कि प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार के राजस्व तथा धन के वार्षिक विनियोगों के प्रस्ताव जिनमें मत-निरपेक्ष व्यय सम्मिलित नहीं होगा, अनुदान माँगों के रूप में मतदान के लिए क्रमशः विधानपरिषद् तथा विधानसभा के सम्मुख प्रस्तुत किए जाएँगे। लेकिन परिषद् सहित गवर्नर जनरल किसी अस्वीकृत अथवा कम की गई माँग को यह प्रमाणित करके बहाल कर सकता था कि वह उसके उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए आवश्यक है। प्रांतीय क्षेत्र में यदि माँग किसी 'आरक्षित' विषय से संबद्ध हो, तो गवर्नर भी उसे उपर्युक्त आधार बहाल कर सकता था। आपात-स्थिति में गवर्नर जनरल अथवा गवर्नर 'ब्रिटिश भारत अथवा प्रांत विशेष की सुरक्षा या शान्ति' की खातिर किसी भी व्यय को प्राधिकृत कर सकते थे। गवर्नर को किसी भी 'विभाग का संचालन करने के लिए' व्यय प्राधिकृत करने का अधिकार था।

प्र.4. 1935 के अधिनियम व इसके प्रावधानों की विवेचना विस्तार से कीजिए।
Explain the Act of 1935 and its provisions in detail.

उत्तर

1935 का अधिनियम
(Act of 1935)

1935 के अधिनियम की विवेचना को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. **परिस्थितियाँ**—अधिनियम 1919 द्वारा प्रस्तावित मांटफोर्ड सुधारों को राष्ट्रवादियों ने 'असन्तोषजनक, अपर्याप्त और निराशाजनक' घोषित किया। 1921 में असहयोग आन्दोलन की शुरुआत हुई, जिसमें केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधानमण्डलों का बहिष्कार शामिल था। फरवरी, 1922 में असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया और गाँधीजी को सरकार के विरुद्ध असन्तोष फैलाने के आरोप में गिरफ्तार कर 6 वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया। इस दौर में सरकार के विरोध का जिम्मा स्वराज दल ने उठाया। 1935 के अधिनियम की पृष्ठभूमि को विविध पक्षों के विश्लेषण से समझ सकते हैं।
2. **स्वराजदल की भूमिका**—कहा गया है कि स्वराजदल के गठन का एकमात्र उद्देश्य मांटफोर्ड सुधारों के विरोध से जुड़ा हुआ था। चितरंजनदास और मोतीलाल नेहरू जैसे राष्ट्रवादियों का उद्देश्य था, कि विधानमण्डलों में प्रवेश कर इन सुधारों से सम्बद्ध किसी भी संवैधानिक प्रक्रिया में रोड़े खड़े किए जाएँ। सरकारी विरोध की शुरुआत स्वराज दल ने 1923 में की, जब चुनावों में इस दल को प्रचण्ड सफलता मिली, इसके साथ ही विधेयक और सरकारी कार्यों को अवरुद्ध करना शुरू किया गया। फरवरी, 1924 में केन्द्रीय विधानसभा में स्वराजियों ने एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने की माँग रखी थी, जिसमें उत्तरदायी सरकार लाने के उद्देश्य से विचार-विमर्श किया जा सके। स्वराजदल के कारण सरकार की कई मुद्दें पर हार हुई। द्वैध शासन को असफल बनाने में भी इस दल की महती भूमिका रही। दूसरे शब्दों में, स्वराजदल ने 1919 के अधिनियम में आवश्यक बदलाव की पृष्ठभूमि तैयार की।
3. **साइमन कमीशन का रवैया**—1919 के अधिनियम में उल्लेखित प्रावधानों के तहत दस वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही 8 नवम्बर, 1927 को रॉयल कमीशन की नियुक्ति को गई, जिसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। आयोग के अध्यक्ष सर जॉन साइमन ने भारत भ्रमण कर 1919 के एक्ट द्वारा प्रस्तावित सुधारों की जाँच-पड़ताल की और जून, 1930 को अपनी रपट प्रस्तुत कर दी। प्रस्तुत रपट में भारत के लिए डेमिनियम स्टेट्स (अधिराज्य) का उल्लेखन नहीं था और न ही उत्तरदायी हाथों में शक्ति हस्तांतरण जिक्र ही, जबकि 1928 में इंग्लैण्ड की रैम्जे मैक्डोनाल्ड सरकार ने घोषणा की थी कि उनका लक्ष्य भारत को अधिराज्य (डेमिनियम स्टेट्स) का दर्जा देना है। साइमन रपट के अनुसार सारे अधिकार अनुत्तरदायी केन्द्रीय सरकार के हाथों में ही रहने थे। राष्ट्रवादियों द्वारा इन सबका विरोध अग्रगामी नीति का अंग बना।
4. **नेहरू समिति की रिपोर्ट**—मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित समिति की रपट के आधारभूत सिद्धान्तों की मुसलमानों ने अपनी भिन्न माँगों द्वारा अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि नेहरू रपट सर्वदलीय विचार-विमर्श का नतीजा था तथापि मोहम्मद अली जिन्ना ने 1 जनवरी, 1929 को मुसलमानों के अखिल भारतीय अधिवेशन द्वारा अपनी चौदह सूत्री माँगें रखीं। जिसमें भारत के लिए संघात्मक सरकार, पृथक् चुनाव क्षेत्र, मुसलमानों के लिए केन्द्रीय विधानसभा में 1/3 प्रतिनिधित्व जैसी शर्तें शामिल थी। नेहरू रपट की असफलता के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने अनुभव किया कि भारतीयों की संवैधानिक माँगों को अधिक समय तक नहीं टाला जा सकता।
5. **वामपंथी लहर**—देश में इस समय वामपंथी दल प्रभावशाली ढंग से उभर रहे थे, जिनका नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रवादियों के हाथों में था वे वामपंथी जनांदोलन को निरन्तर चलाते रहने के समर्थक थे। इस दल से जुड़े लोगों का मानना था, कि विश्वव्यापी आर्थिक संकट का यह दौर क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए उपयुक्त है और जनता संघर्ष को तत्पर है। नेहरू जी का विचार था कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन आज इस अवस्था में पहुँच गया है, जहाँ हमें औपनिवेशिक सत्ता से तब तक लगातार संघर्ष करते रहना होगा, जब तक कि हम उसे उखाड़ फेंकने में कामयाब नहीं हो जाएँ। अत: उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस लेने के तमाम कदमों का विरोध और उसकी खुलकर आलोचना की।
6. **औपनिवेशक नीति**—चर्चिल ने 1930 में कहा था। भारतीयों के जीवन और उनकी प्रगति पर से अपना अचूक नियन्त्रण समाप्त करने का ब्रिटेन को कोई इरादा नहीं है। कहा जा सकता है कि संवैधानिक सुधारों, अन्य प्रकार की राहत और सांत्वना द्वारा अंग्रेज भारतीयों को भुलावे में रखने की कोशिश में थे और 1935 का अधिनियम इसी नीति का अंग था।

TOUCH 'n' PASS

7. **गोलमेज सम्मेलनों की विफलता**—साइमन कमीशन की रपट प्रस्तुत किए जाने से पहले ही इंग्लैण्ड में लेबरपार्टी की सरकार बन गई। लॉर्ड इर्विन ने अक्टूबर, 1929 की घोषणा में कहा था कि लन्दन में गोलमेज सम्मेलन द्वारा भारतीय राजनीतिक मत के विभिन्न दृष्टिकोणों की जानकारी प्राप्त कर लेबर सरकार नया संविधान बनाएगी। 1930, 1931 और 1932 में क्रमश: तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किए गए लेकिन इन सम्मेलनों का कोई परिणाम नहीं निकला। वस्तुत: 26 अगस्त, 1931 को मैक्डोनाल्ड के लेबर मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया था और उसके स्थान पर सर्वदलीय मंत्रिमण्डल बना, जिसमें अनुदारवादियों का बहुमत था। नवीन परिस्थितियाँ भारत के लिए कठोर दृष्टिकोण लेकर आईं। दूसरे अधिवेशन में संघीय ढाँचे, अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के मामले उलझे रहे। भारतीय नरेशों ने अखिल भारतीय संगठन का समर्थन नहीं किया था और दूसरा अधिवेशन पूरी तरह असफल रहा। दूसरे अधिवेशन की असफलता ने आखिरी सम्मेलन की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। यद्यपि 17 नवम्बर से 24 दिसम्बर, 1932 को तीसरा अधिवेशन हुआ, जिसमें केवल 46 प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया। जिसका सरकार पर पूरा भरोसा था और साम्प्रदायिक तत्त्व आमन्त्रित थे। इसमें कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं था गोलमेज सम्मेलन में हुए वाद-विवाद के आधार पर 1 मार्च, 1933 को ब्रिटिश सरकार ने श्वेतपत्र प्रकाशित किया, जिसका नाम 'भारतीय संविधान सुधारों के बारे में सुझाव' रखा गया। ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति जिसका सभापतित्व लॉर्ड लिनलिथगो कर रहे थे ने भारत के भविष्य के बारे में विचार किया और अक्टूबर, 1934 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। उक्त रपट एवं श्वेतपत्र ही भारत सरकार अधिनियम, 1935 के आधार बने।

अधिनियम 1935 के प्रावधान (Provisions of Act 1935)

अधिनियम 1935 के प्रावधान निम्न प्रकार हैं—

1. साम्राज्यवादी सरकार द्वारा बनाया गया अन्तिम और संवैधानिक सुधारों की शृंखला में तीसरा संविधान था। इसके विषय में किन्तु भारत के सभी राजनीतिक दलों ने इसे अस्वीकार किया; क्योंकि इसमें पूर्ण स्वतंत्रता को नकारा गया था।
2. 1953 कर भारत शासन अधिनियम ब्रिटिश संसद के इतिहास में सबसे बड़ा और सबसे जटिल प्रलेख था। इसमें 14 भाग, 321 धाराएँ तथा 10 अनुसूचियाँ थी। इसमें अखिल भारतीय संघ की स्थापना का प्रस्ताव था, जिसके द्वारा केन्द्र में द्वैध शासन व्यवस्था स्थापित की जानी थी एवं प्रान्तों के लिए स्वायत शासन के प्रावधान भी।
3. अखिल भारतीय संघ: यह संघ 11 ब्रिटिश प्रान्तों 6 चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों एवं देशी रियासतों से मिलकर बनना था। समस्त ब्रिटिश प्रान्तों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था; परन्तु देशी रियासतों के लिए यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता था। प्रस्तावित योजना की विशेषता थी उसमें सुझायी गई संघीय व्यवस्था का स्वरूप। संघ का निर्माण तभी होता, जबकि देशी रियासतों की कुल जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे शासक जिन्हें संघीय विधान मण्डल के उच्च सदन में देशी रियासतों के लिए निर्धारित कुछ स्थानों में से कम-से-कम आधे स्थानों का अधिकार हो, संघ में शामिल हो सकते थे। उस समय देशी राज्यों को संख्या लगभग 600 थी और संघ के निर्माण के लिए कम-से-कम आधे राज्यों का अधिमिलन आवश्यक था। इस दृष्टि से भारत संघ अद्वितीय होता। क्योंकि किसी भी दूसरे संघ में सदस्यों की इतनी भारी संख्या नहीं थी। संघ के दोनों सदनों में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया गया था। संघीय असेम्बली में 375 सदस्यों में से 125 अर्थात् 33 प्रतिशत और दूसरे सदन कासिंल ऑफ स्टेट के 260 में से 104 सदस्य अर्थात् 40 प्रतिशत देशी रियासतों से लिए जाने थे। इन राजाओं को दोनों सदनों में महज प्रतिनिधित्व ही नहीं करना था; बल्कि जरूरत से ज्यादा प्रतिनिधित्व करना था। और इस काम में यह नहीं देखा जाना था कि अमुक राजा अपनी रियासत के आकार और जनसंख्या के आधार पर ही प्रतिनिधित्व करे। कौंसिल ऑफ स्टेट का 2/5 हिस्सा राजाओं के लिए निर्धारित था, जबकि समूचे भारत की आबादी की 24 प्रतिशत या एक-चौथाई से भी कम भाग इन देशी रियासतों में रहता था।
4. संघ में शामिल होना देशी रियासतों की निर्धारित संख्या ने स्वीकार नहीं किया। अत: अधिनियम द्वारा प्रस्तावित भारतीय संघ योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। संघीय क्षेत्राधिकार सामान्य रूप से संघीय विधान सूची तथा समवर्ती विधान सूची के सभी विषयों पर लागू होना था। लेकिन देशी रियासतों के मामलों में संघीय सरकार की विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ केवल उन विषयों तक सीमित थीं। और उन सीमाओं से सम्बद्ध थी, जिनका प्रत्येक राज्य के विलय पत्र (इन्स्ट्रमेंट ऑफ एक्सेशन) में उल्लेख होता। सामान्यत: संघ की इकाइयों में समानता होती है; परन्तु अधिनियम के अनुसार भारत में ऐसी

TOUCH 'n' PASS

स्थिति नहीं थी। ब्रिटिश प्रान्त, चीफ कमिश्नर प्रान्त और देशी रियासतों के क्षेत्रफल, महत्त्व, शासन पद्धति आबादी आदि में बहुत अधिक असमानता थी। देशी रियासतों में निरंकुश शासन था, जिसमें प्रजा को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन राज्यों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा नामांकित होते थे। संघ के विशेष रूप से उच्च सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। सामान्यत: संघात्मक राज्यों में उच्च सदन का अप्रत्यक्ष एवं निम्न सदन का प्रत्यक्ष चुनाव होता था। किन्तु प्रस्तावित भारतीय संघ में संघीय विधान मण्डल (निम्न सदन) का चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया। यह व्यवस्था लोकतंत्रात्मक सदन को कमजोर बनाने के लिए की गई थी। भारत में 1935 के अधिनियम द्वारा एक्ट में संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद में निहित था। देशी रियासतों को क्राउन से सीधा सम्बन्ध बनाए रखने का अधिकार भी अनुचित था।

5. विषयों के विभाजन के लिए तीन सूचियाँ बनाई गई; संघीय सूची, प्रान्तीय सूची तथा समवर्ती सूची। संघीय सूची में 59 विषय, प्रान्तीय सूची में 54 विषय तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए। संघीय या केन्द्रीय सूची को दो भागें में विभक्त किया गया—आरक्षित एवं हस्तांतरित। प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले, धार्मिक मामले (ईसाई धर्म सम्बन्धी) तथा कबायली क्षेत्र आरक्षित थे। मुद्रा, डाक-तार, रेल, रेडियो, वायरलैस आदि हस्तांतरित विषय थे।
6. गवर्नर जनरल ही भारत के सम्पूर्ण प्रशासन के लिए अन्तिम रूप से उत्तरदायी था। मंत्री गवर्नर जनरल की इच्छानुसार ही पद पर रह सकते थे एवं मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता का अधिकार भी उसे ही प्राप्त था। आरक्षित हस्तान्तरित विषयों के संचालन का अधिकार भी गवर्नर जनरल को प्राप्त था। स्वविवेक से प्रयोग किए जाने वाले, उसे उल्लेखनीय अधिकार प्राप्त थे। वह मंत्रियों को चुनने, विधेयकों को स्वीकृत या अस्वीकृत करने या उसे सम्राट् की स्वीकृति के लिए रखने को अधिकृत था। इन अधिकारों के प्रयोग के सम्बन्ध में वह मंत्रियों से परामर्श करने को बाध्य नहीं था—
विधायन के क्षेत्र में गवर्नर जनरल को निषेध (वीटो) का अधिकार प्राप्त था, जिसके कारण वह विधान मण्डल द्वारा पारित विधेयकों को कानून बनाने से रोक सकता था। अधिनियम में कुछ विशेष उत्तरदायित्वों का उल्लेख है इसका निर्णय करने का अधिकार भी स्वयं उसी को था। कुछ विशेष उत्तरदायित्वों में थे—
   (i) भारत या उसके किसी भाग में शांति तथा सुरक्षा व्यवस्था
   (ii) संघ की आर्थिक स्थिरता एवं साख की रक्षा
   (iii) लोक सभाओं के अधिकारियों के वैधानिक व अन्य अधिकारों का संरक्षण
   (iv) अल्पसंख्यकों के उचित हितों का संरक्षण
   (v) देशी रियासतों के अधिकारों तथा उनके शासकों के अधिकारों व मर्यादा की रक्षा आदि।
इन विशेष उत्तरदायित्वों का वर्णन इतनी व्यापक व अस्पष्ट भाषा में किया गया कि गवर्नर जनरल द्वारा इसके आधार पर हस्तान्तरित क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किया जा सकता था।
7. गवर्नर जनरल को प्रशासनिक क्षेत्र में मंत्रियों, रिजर्व बैंक के गवर्नर, संघीय न्यायाधीशों, भारतीय हाई कमिश्नर आदि की नियुक्ति व पदच्युति का अधिकार था। साथ ही दण्डित अभियुक्तों को क्षमा करने व उपाधियाँ देने के लिए भी वह अधिकृत था। उसे राज्य परिषद् (कौंसिल ऑफ स्टेट्स) के सदस्यों को नामांकित करने तथा विधानमण्डल में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के लिए निश्चित संख्या की पूर्ति करने के सम्बन्ध में कुछ अधिकार थे। गाँधी जी ने 23 फरवरी, 1938 को वर्धा से प्रसारित अपने एक वक्तव्य में कहा कि, "गवर्नर जनरल अब और भी सर्वाधिक सम्पन्न और स्वेच्छाचारी शक्तिधारी है।"
8. अधिनियम में गवर्नर जनरल की तीन असाधारण शक्तियों का उल्लेख आया है—पहला, अध्यादेश जारी करने, दूसरा गवर्नर जनरल के नियम बनाने व लागू करने एवं अन्तिम, आपातकाल की घोषणा कर गवर्नर जनरल 6 माह के लिए केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यों को सीधे अपने नियन्त्रण में लेने के लिए अधिकृत था।
9. संघीय क्षेत्र की भाँति प्रान्तीय क्षेत्र में उसे अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त थीं, जिनका प्रयोग करके गवर्नर जनरल प्रान्तीय स्वायत्तता का अन्त कर सकता था। भारत या उसके किसी भाग में शान्ति बनाए रखने, गवर्नरों को अपने स्वविवेकीय अधिकारों तथा संघीय नियमों को व्यवहार में लाने के लिए निर्देशित करने, प्रान्तीय सरकार की अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करने, प्रान्तीय व्यवस्थापिका के कुछ विधेयकों पर पूर्व स्वीकृति देने के अधिकार उसमें निहित थे। दिल्ली, अजमेर, मारवाड़, कुर्ग, अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह तथा पंथपिपलौदा नामक क्षेत्रों का प्रशासन गवर्नर द्वारा नियुक्त चीफ कमिश्नर करते थे, लेकिन इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए अन्तिम रूप से गवर्नर जनरल ही उत्तरदायी होता था।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VIII

भारत में साम्प्रदायिकता का उदय और विकास
Rise and Development of Communalism in India

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में साम्प्रदायिकता के कारण बताइए।

Write the reasons for communalism in India.

उत्तर भारत में साम्प्रदायिकता के कारण (Reasons for Communalism in India) यद्यपि साम्प्रदायिकता का संबंध धार्मिक आधार पर अलगाववाद और कट्टरता से है, किन्तु भारत में साम्प्रदायिक चेतना का जन्म औपनिवेशिक नीतियों (Colonial Policies) तथा उसके विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ।

प्र.2. साम्प्रदायिकता के क्या कारक हैं?

What are the factors of communalism?

उत्तर विभाजन, घृणा, अविश्वास, तनाव, संघर्ष आदि से आपसी सहयोग की भावना का ह्रास होता है। इससे अन्ततः सम्पूर्ण देश का राष्ट्रीय चरित्र नहीं बन पाया। साम्प्रदायिकता ने समय-समय पर राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दिया है। लोगों ने अपनी ही सरकार के प्रति अविश्वास प्रकट किया है।

प्र.3. साम्प्रदायिकता के अंतर्गत कौन-सी भावनाएँ व क्रियाकलाप आते हैं?

Which feelings and activities come under communalism?

उत्तर साम्प्रदायिकता के अंतर्गत वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें धर्म एवं भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाए। उन हितों को राष्ट्रीय हितों से भी अधिक प्राथमिकता दी जाए तथा उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाए या उसको प्रोत्साहित किया जाए।

प्र.4. साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम क्या हैं?

What are the ill effects of communalism?

उत्तर साम्प्रदायिकता के आधार पर राष्ट्रों में विभाजन तथा युद्ध तक हो जाते हैं। साम्प्रदायिकता का अन्य स्वाभाविक दोष सामाजिक विघटन है, क्योंकि साम्प्रदायिकता से अन्य अनेक समस्याओं, जैसे-अपराध, डकैती, दंगे, आपसी झगड़े, आगजनी, लूटमार आदि को प्रोत्साहन मिलता है और सामान्य सामाजिक व्यवस्था ठप हो जाती है।

प्र.5. साम्प्रदायिकता का क्या अर्थ होता है?

What is the meaning of communalism?

उत्तर साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृत्ति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्त्व देती है।

प्र.6. आर्थिक क्षेत्रीय असमानता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write a brief note on regional inequality.

उत्तर औपनिवेशिक शासन काल के दौरान एक प्रमुख समस्या राज्यों और क्षेत्रों के बीच आर्थिक असमानता की समस्या रही है। यद्यपि पूरा देश आर्थिक रूप से पिछड़ा रहा था तथा औपनिवेशिक शासन में भयावह शोषण का शिकार हुआ था। परंतु कुछ क्षेत्र और राज्य आजादी मिलने के समय अन्य से कहीं ज्यादा पिछड़े हुए थे। कलकत्ता, बंबई, मद्रास के आसपास के क्षेत्र औद्योगिक

TOUCH 'n' PASS

विकास से युक्त थे। 1948 में बंबई और पश्चिम बंगाल को देश की संपूर्ण औद्योगिक पूँजी का 59% प्राप्त था। और ये राष्ट्रीय औद्योगिक उत्पादन का 64% से अधिक पैदा करते थे। इतना ही नहीं प्रति व्यक्ति आय में भी क्षेत्रीय असमानता व्याप्त थी जहाँ पश्चिम बंगाल, पंजाब और बंबई की प्रति व्यक्ति आय क्रमशः 353, 331, 272 रुपये थी वहीं बिहार, उड़ीसा और राजस्थान की प्रतिव्यक्ति आय क्रमशः 70 और 188 और 173 थी।

प्र.7. राजस्थान का एकीकरण कितने चरणों में हुआ?

In how many stages was Rajasthan unified?

उत्तर राजस्थान का एकीकरण कुल सात चरणों में 17/18 मार्च, 1948 से प्रारम्भ होकर 1 नवम्बर, 1956 को सम्पन्न हुआ, इसमें 8 वर्ष, 7 माह एवं 14 दिन का समय लगा।

प्र.8. रियासतों के एकीकरण में पटेल की क्या भूमिका थी?

What was Patel's role in the unification of princely states?

उत्तर पटेल ने लगभग हर रियासत को भारत में शामिल होने के लिए राजी किया। नए स्वतंत्र देश में राष्ट्रीय एकता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता संपूर्ण और अडिग थी, जिससे उन्हें "भारत का लौह पुरुष" कहा जाता था।

प्र.9. सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कितनी रियासतों का एकीकरण किया था?

How many princely states were unified by Sardar Patel?

उत्तर सरदार पटेल की महानतम देन थी 562 छोटी-बड़ी रियासतों का भारतीय संघ में विलीनीकरण करके भारतीय एकता का निर्माण करना। विश्व के इतिहास में एक भी व्यक्ति ऐसा न हुआ जिसने इतनी बड़ी संख्या में राज्यों का एकीकरण करने का साहस किया हो। 5 जुलाई, 1947 को एक रियासत विभाग की स्थापना की गई थी।

प्र.10. सरदार पटेल ने हैदराबाद का भारत में विलय कैसे किया?

How did Sardar Patal merge Hyderabad into India?

उत्तर सरदार पटेल ने हैदराबाद को भारत में एक करने के लिए ऑपरेशन पोलो (Operation Polo) चलाया। इस ऑपरेशन के तहत हैदराबाद के नवाब सरदार पटेल के आगे झुकने के लिए मजबूर हो गए। इसके बाद 1948 में हैदराबाद का विलय भारत में हो गया।

प्र.11. रियासतों का एकीकरण क्या है?

What is the unification of princely states?

उत्तर 1947 और 1949 के बीच की गई इस प्रक्रिया में पहला कदम उन छोटे राज्यों का विलय करना था जिन्हें भारत सरकार ने पड़ोसी प्रांतों में या अन्य रियासतों के साथ एक "रियासत संघ" बनाने के लिए व्यवहार्य प्रशासनिक इकाइयों के रूप में नहीं देखा था।

प्र.12. भारत का एकीकरण कैसे हुआ?

How was India unified?

उत्तर माउण्टबेटन ने 15 अगस्त, 1947 को भारत की आजादी के लिए तय किया था। किन्तु भोपाल के लोगों को भारत संघ का हिस्सा बनने के लिए बाद में दो साल और इंतजार करना पड़ा था। तब सरदार पटेल ने लगभग 562 देशी रियासतों को भारत में मिलाकर भारत को एक सूत्र में बांधा और भारत को मौजूदा स्वरूप दिया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साम्प्रदायिकता के अर्थ एवं इसके मूल तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

Mention the meaning and the basic elements of communalism.

उत्तर

अर्थ एवं मूल तत्त्व
(Meaning and Basic Elements)

राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण था साम्प्रदायिकता का उदय तथा विकास, जिसके कारण स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत का विभाजन भी हुआ। राष्ट्रवाद की तरह साम्प्रदायिकता भी आधुनिक घटना थी तथा देश की आर्थिक,

TOUCH n PASS

राजनीतिक तथा प्रशासनिक एकता के विकास की प्रक्रिया का परिणाम थी। जहाँ राष्ट्रवाद इस वस्तुपरक परिस्थिति का सकारात्मक प्रतिबिम्ब था, अर्थात् ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतवासियों के सामान्य हितों के एकीकरण का प्रतीक, वहाँ साम्प्रदायिकता इसकी विकृत अभिव्यक्ति थी जो भारत के उन क्षेत्रों तथा समाज के उन वर्गों एवं समुदायों में पनपी जो राष्ट्रीय चेतना के प्रति जागृत होने में असफल रहे। यह पिछले 100 सालों की ऐतिहासिक प्रक्रिया की झूठी चेतना (False consciousness) का प्रतीक था। जैसा नेहरू ने लिखा 'किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि साम्प्रदायिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारी आँखों के सामने विकसित हुई है।'

इसके मूल तत्त्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता हैं—

1. बिपिन चन्द्र के अनुसार, साम्प्रदायिकता के तीन मूल तत्त्व होते हैं—(i) यह धारणा कि समान धर्म वाले लोगों के गैर-धार्मिक हित (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि) भी सांझे होते हैं। (ii) भारत जैसे बहु-धार्मिक समाज में किसी एक धर्म विशेष के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित दूसरे धर्म के अनुयायिओं से पृथक् एवं भिन्न है, तथा (iii) साम्प्रदायिकता अपनी चरम सीमा पर तब पहुँचती है जब विभिन्न धर्मों के हितों को परस्पर विरोधी, विद्वेषी, शत्रुतापूर्ण तथा प्रतिकूल माना जाता है।
2. साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म तब होता है जब कुछ व्यक्ति अथवा समुदाय इस धारणा में विश्वास रखते हैं कि समान धर्म के लोगों के सामाजिक, आर्थिक हित भी समान है। इसमें धर्म पर आधारित सामाजिक-राजनीतिक समूहों का जन्म होता है।
3. इसका दूसरा चरण तब शुरू होता है जब कोई व्यक्ति अथवा समुदाय साम्प्रदायिक राजनीति में विश्वास करना आरंभ कर देता है, एक ऐसी धारणा में विश्वास के विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने विशिष्ट हित होते हैं परन्तु इन हितों में सामंजस्य लाया जा सकता है।
4. तीसरी अवस्था तब आती है जब इन धार्मिक मतभेदों को धर्मनिरपेक्ष सांसारिक मतभेदों में बदल दिया जाता है तथा इन परस्पर हितों में कोई तालमेल नहीं देखा जाता। अपने राजनीतिक विरोधियों को ये दुश्मन मानती है तथा उनके विरुद्ध युद्ध की भाषा का प्रयोग करती है। इस चरण में एक विशिष्ट राष्ट्र अथवा दो-राष्ट्र जैसे सिद्धांतों का प्रचार किया जाता है।
5. भारत के संदर्भ में 1930 तक साम्प्रदायिक विचारधारा अपने दूसरे चरण में थी जब यह धारणा सामान्य थी कि साम्प्रदायिक हितों में सामंजस्य लाया जा सकता है परन्तु 1940 के बाद 'एक पृथक् राष्ट्र' के नारे के रूप में यह अपने उग्रवादी चरण में पहुँच गई जिसकी चरम सीमा हमें विभाजन के रूप में देखने को मिली।

प्र.2. साम्प्रदायिकता के उदय के कारणों का उल्लेख कीजिए।
Mention the causes for the rise of communalism.

उत्तर

साम्प्रदायिकता के उदय के कारण
(Causes for the Rise of Communalism)

साम्प्रदायिकता के उदय के कारणों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

I. औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था (Colonial Economy)

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के आधार पर साम्प्रदायिकता का उदय निम्न प्रकार है—

1. साम्प्रदायिकता के मूल में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था तथा इसके परिणामस्वरूप भारत का पिछड़ापन था। आर्थिक ठहराव ने भारत के मध्य-वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, जिसने समाज में विभाजन तथा विरोधाभासी परिस्थितियाँ पैदा करने में सहायता की। यह समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में मध्य-वर्ग के हितों एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति थी जहाँ उनके विकास के अवसर अत्याधिक अपर्याप्त थे। साम्प्रदायिकता का मुद्दा मूलतः मध्यवर्गीय मुद्दा था। इसका सामाजिक आधार तथा इसकी अपील भी मध्य वर्गीय थी। यह दो उच्च वर्गों में शक्ति, विशेषाधिकार तथा आर्थिक लाभों के लिए संघर्ष की अभिव्यक्ति थी। यह उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले भौतिक हितों के लिए संघर्ष का प्रसार था, जिसने धार्मिक शत्रुता को राजनीतिक शत्रुता में बदल दिया।
2. समग्र रूप में, साम्प्रदायिकता कुछ संचित कारकों (Cumulative causation) का परिणाम थी अर्थात् कुछ प्रारंभिक कारणों से मुस्लिम समुदाय आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में पिछड़ गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में देश के व्यापारिक क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। हालाँकि उत्पादन में खास वृद्धि नहीं हुई परन्तु विनिमय काफी बढ़ गया।

TOUCH 'n PASS

वाणिज्यिक एवं व्यापारिक परंपराओं तथा दृष्टिकोण के अभाव के कारण मुस्लिम उच्च वर्ग इस आर्थिक गतिशीलता का लाभ नहीं उठा पाया। सामन्तवाद के प्रति लगाव तथा कुलीनतंत्रीय जीवन शैली उनके पतन का कारण बनने लगी।

3. दूसरी तरफ व्यापार तथा वाणिज्य में निपुण हिन्दू जातियों को इस नई अर्थव्यवस्था से काफी लाभ हुआ। व्यापारियों, महाजनों तथा वित्तीय पूँजी निवेशकों का एक नया वर्ग पैदा हो गया। दूसरे शब्दों में, इस उभरती अर्थव्यवस्था पर हिन्दुओं ने पूरा कब्जा जमा लिया। धीरे-धीरे इस नई अर्थव्यवस्था का संचित परिणाम यह हुआ कि अचल संपत्ति मुस्लिम हाथों से निकलर गैर-मुस्लिम महाजनों के हाथ में जाने लगी। हिन्दू और मुसलमानों में तीव्र विरोध और स्पष्ट हो गया।

II. ब्रिटिश शिक्षा नीति (British Education Policy)

इसी तरह शिक्षा में भी स्थिति प्राय: समान थी। मुसलमानों के धार्मिक नेता, मुल्लाओं ने मुसलमानों को अंग्रेजी भाषा लिखने पर प्रतिबंध लगा दिया। जहाँ हिन्दुओं ने बड़ी संख्या में सरकारी तथा ईसाई मिशनरी स्कूलों में प्रवेश लेकर अंग्रेजी तथा पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करने में उत्साह दिखाया वहाँ मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा नकारते रहे। परिणामस्वरूप ब्रिटिश प्रशासन के निचले स्तरों पर भी हिन्दू मध्यवर्ग हावी होने लगा। इस प्रक्रिया ने हिन्दू तथा मुसलमानों में सांस्कृतिक विभाजन को और बढ़ा दिया। हिन्दुओं के साथ-साथ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त न कर सकने के कारण मुस्लिम वर्ग राजनीति-निर्वासन में जी रहा था और फिर सवाल केवल सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास की कमी का नहीं था, यह मनोवैज्ञानिक भी था। वास्तव में, आर्थिक तथा भौतिक क्षेत्रों में मुस्लिम समुदाय की निराशा तथा असफलता इसकी साम्प्रदायिकता चेतना में आकस्मात वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कारण बनीं।

III. प्रतिक्रियावादी सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों की उपस्थिति (Presence of Reactionary Social and Political Forces)

आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रतिक्रियावादी सामाजिक वर्गों एवं राजनीतिक शक्तियों (जैसे अर्ध-सामन्तवादी जमींदार, सेवानिवृत्त सरकारी पदाधिकारी, व्यापारी, सूदखोर, उपनिवेशी राज्य) ने साम्प्रदायिकता को एक राजनीतिक यंत्र के रूप में प्रयुक्त किया। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्वार्थी हितों ने साम्प्रदायिकता को जानबूझकर प्रोत्साहित किया अथवा अपनाया ताकि वे राष्ट्रीय तथा जन संघर्षों से जनता का ध्यान हटा सकें, जन साधारण को उनकी सामाजिक परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों को समझने में बाधा डाल सके तथा राष्ट्रीय अथवा वर्गीय स्तर पर एकता संभव न हो सके। मुस्लिम विशिष्ट वर्ग द्वारा 'इस्लाम खतरे में है' का नारा या मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की माँग को इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। इस माँग को धीरे-धीरे मुस्लिम समुदाय के अन्य वर्गों से भी सहानुभूति मिलने लगी, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक लामबन्दी के लिए धर्म को कितनी सहजशीलता के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है। ब्रिटिश शासन का निम्न वर्गीय मुस्लिम समुदाय पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। एक अलग राज्य की माँग ने मुस्लिम समुदाय के एक बहुत बड़े भाग की आंकाक्षाओं, डर, अनिश्चिताओं तथा इच्छाओं को अभिव्यक्ति दी जो हिन्दू प्रभुत्व को अपनी उन्नति में सबसे बड़ा बाधक मान रहे थे।

IV. मुस्लिम समुदाय का अपेक्षाकृत पिछड़ा होना (Comparative Backwardness of Muslim Community)

मुस्लिम समुदाय में आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग, आधुनिक शिक्षित वर्ग, मध्य वर्ग तथा बुर्जुआ का विकास हिन्दू समुदाय की अपेक्षा काफी देर से हुआ। जब तक उन्हें इस कमी का एहसास हुआ, सरकारी नौकरियों, व्यापार, उद्योग तथा वित्त के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों पर हिन्दू समुदाय अपने पैर मजबूती से जमा चुका था। नौकरियों तथा व्यापारिक हितों के लिए हिन्दुओं के साथ संघर्ष में उन्हें अपने समुदाय के व्यापक समर्थन की आवश्यकता थी। अत: उन्होंने समान वर्गों के विभिन्न समूहों के संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष में बदल दिया अर्थात् हिन्दू समुदाय तथा मुस्लिम समुदाय के बीच संघर्ष। इसी तरह आर०पी०दत्त० लिखते हैं, 'साम्प्रदायिक विरोधाभास की पृष्ठभूमि के पीछे सामाजिक और आर्थिक मुद्दे होते हैं। नौकरियों तथा पदों की होड़ में लगे मध्य वर्गीय साम्प्रदायवादियों के संदर्भ में यह सुस्पष्ट है।'

प्र.3. साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने में ब्रिटिश सरकार की भूमिका को समझाइए।

Explain the role of British Government in Encouraging Communalism.

उत्तर

साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने में ब्रिटिश सरकार की भूमिका (Role of British Government in Encouraging Communalism)

हिन्दू तथा मुसलमान धार्मिक स्तर पर विभाजित दो पृथक् समुदाय हैं, इस विचार का जन्म ब्रिटिश शासन की सक्रिय सहायता से हुआ। राष्ट्रीय शक्तियों को कमजोर करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिकता को एक प्रभावशाली यंत्र के रूप में प्रयुक्त

किया। लॉर्ड डफरिन ने कांग्रेस के दावे को चुनौती देते हुए कहा कि यह सारे भारतवासियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। लॉर्ड कर्जन के विचार भी कुछ इसी तरह के थे। बंग-भंग के विभिन्न कारणों में से एक महत्त्वपूर्ण कारण हिन्दू तथा मुसलमानों में दरार पैदा करके मुसलमानों का समर्थन एवं निष्ठा प्राप्त करना था। व्यापक स्तर पर मुस्लिम समुदाय भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्यधारा के प्रति उदासीन रहा। ढाका के नवाब सलीमुल्ला की अध्यक्षता में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों ने बंगाल विभाजन का स्वागत किया। संवैधानिक सुधारों के संदर्भ में मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की माँग के लिए अगस्त, 1906 में आगा खान ने एक मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व किया। 1906 में ही स्थापित अखिल भारतीय मुस्लिम लीग जैसे अलग मुस्लिम राजनीतिक संगठन का उद्देश्य भी राष्ट्र के अंदर राष्ट्र (Nation Within the Nation) के विचार को मान्यता दिलाना था। 1909 के संवैधानिक सुधारों ने साम्प्रदायिकता पर मोहर लगा दी। संक्षेप में, ब्रिटिश शासन ने जिन आधारों पर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया उनमें प्रमुख थे—

1. हिन्दू, मुसलमानों तथा सिक्खों को पृथक् समुदाय तथा अलग राजनीतिक-सामाजिक इकाईयाँ मानना जिनमें कुछ भी सांझा नहीं है।
2. साम्प्रदायिक नेताओं को सरकारी मान्यता देना।
3. साम्प्रदायिक समाचार पत्रों के साथ विशेष पक्षपात करना।
4. साम्प्रदायिक माँगों को तत्परता से मान लेना।
5. साम्प्रदायिक नेताओं को अपने समुदाय के वक्ता के रूप में स्वीकार करना जबकि राष्ट्रीय नेताओं पर यह आरोप लगाना कि वे केवल 'सूक्ष्म अल्पमत' (Microscopic minority) का प्रतिनिधित्व करते हैं।
6. मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की माँग को स्वीकार करना।
7. समाचार पत्रों, साहित्य, आम सभाओं अथवा अफवाहों के माध्यम से साम्प्रदायिक घृणा तथा जहर फैलाने वाले लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करना।

प्र.4. जिन्ना के 14 सूत्रीय कार्यक्रम की मूल विशेषताएँ लिखिए।
Write the basic features of Jinnah's 14 Points.

उत्तर

जिन्ना का 14 सूत्रीय कार्यक्रम
(Jinnah's 14 Points Programme)

जिन्ना के 14 सूत्रीय प्रपत्र की मूल विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

1. भारत के लिए बनने वाला कोई भी संविधान संघीय होना चाहिए जिसमें अवशेष शक्तियाँ प्रान्तों के पास हों।
2. केन्द्रीय विधानमण्डल में 1/3 सीटें मुसलमानों के लिए सुरक्षित होनी चाहिए।
3. प्रत्येक प्रान्त के पास एक जैसी स्वायत्तता का अधिकार होना चाहिए।
4. सभी विधानसभाओं तथा स्थानीय संस्थाओं में अल्पसंख्यकों को उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।
5. सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर होना चाहिए। यदि कोई समुदाय चाहे तो वह अपने पृथक् निर्वाचन क्षेत्र को संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में बदल सकता है।
6. किसी भी तरह का क्षेत्रीय परिवर्तन पंजाब, बंगाल तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में मुस्लिम बहुमत को प्रतिकूल प्रभावित नहीं करेगा।
7. प्रत्येक व्यक्ति को सम्पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार हो।
8. यदि किसी समुदाय विशेष के 3/4 सदस्य किसी बिल का इस आधार पर विरोध करें कि यह उनके समुदाय के लिए हानिकारक है तो विधानमण्डल उसे पारित नहीं करेगा।
9. सिंध को बम्बई से अलग करके स्वतंत्र प्रान्त बना दिया जाए।
10. सुधारों के मामलों में उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्र तथा ब्लूचिस्तान के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।
11. मुस्लिम संस्कृति, भाषा, शिक्षा, कानून तथा धार्मिक संस्थाओं की सुरक्षा के लिए समुचित उपाय किये जाने चाहिए।
12. प्रशासन की कार्यकुशलता को ध्यान में रखते हुए मुसलमानों को सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
13. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मंत्री-परिषदों में 1/3 मंत्री मुस्लिम समुदाय से लिए जाने चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

14. भारतीय संघ की इकाइयों की सहमति के बिना केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा संविधान में कोई परिवर्तन न किया जाए।

(i) संक्षेप में, हिन्दू, मुस्लिम तथा सिक्ख साम्प्रदायिक नेताओं में समझौते के माध्यम से साम्प्रदायिकता की समस्या हल करने की राजनीति पूर्णतया असफल रही। जहाँ एक तरफ कांग्रेस के लिए मुसलमानों को दी जाने वाली रियासतों को हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं के गले से उतारना मुश्किल था वहाँ दूसरी तरफ मुस्लिम साम्प्रदायिक नेताओं के तुष्ट न होने से उसकी शक्ति में वृद्धि होती गई। मुसलमानों को किसी प्रकार की रियासत से हिन्दुओं के भड़कने का डर था।

(ii) तथापि इन सभी घटनाओं के बावजूद 1930 तक साम्प्रदायिकता सारे भारत में पूरी तरह व्याप्त नहीं थी। साम्प्रदायिक झगड़े शहरों तक सीमित थे तथा हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं को कोई व्यापक जनसमर्थन भी प्राप्त नहीं था। उभरते किसान तथा मजदूर आन्दोलन पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष थे। साम्प्रदायिकता में कट्टरपंथी चरण केवल 1937 के बाद आरम्भ हुआ।

(iii) पृथक्कतावाद ने अपनी जड़ें काफी फैला ली थी। मुस्लिम लीग के अड़ियल रवैये की वजह से गोलमेज कान्फ्रेंस में भी किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका। 5 अक्टूबर को गाँधी ने घोषणा की कि वे जिन्ना की सभी माँगे मानने को तैयार हैं बशर्ते कि वह कांग्रेस की स्वराज्य की माँग का समर्थन करें। गाँधी के इस प्रस्ताव को लीग के प्रतिनिधियों ने स्पष्ट शब्दों में ठुकरा दिया। बाद में गाँधी की इस दरियादिली की हिन्दू महासभा ने तीव्र आलोचना की। यहाँ तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी लीग के दबाव में आकर दो नये मुस्लिम लीग के बहुसंख्यक प्रान्तों के निर्माण की घोषणा कर दी।

(iv) 1932 के कम्यूनल एवार्ड ने मुस्लिम लीग की लगभग सभी माँगे मान ली। यह केवल समय की विडम्बना थी कि 1930 के दशक में जहाँ कांग्रेस एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी शक्ति के रूप में उभर चुकी थी, वहाँ साम्प्रदायिकता ने भी एक अलग राष्ट्र तथा अलग राज्य की माँग के रूप में विकराल रूप धारण कर लिया था।

प्र.5. हिन्दू साम्प्रदायिकता पर टिप्पणी कीजिए।

Comment on Hindu Communalism.

उत्तर

हिन्दू साम्प्रदायिकता
(Hindu Communalism)

हिन्दू साम्प्रदायिकता को निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

1. इसी बीच हिन्दू साम्प्रदायिकता भी कट्टरपंथी रूप लेने लगी। मूलत: हिन्दू महासभा की स्थापना एक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक संस्था के रूप में हुई थी न कि राजनीतिक संस्था के रूप में। 1925 में महासभा के अधिवेशन में मोहम्मद अली तथा अबुल कलाम आजाद के अतिरिक्त कांग्रेस के कई नेता सम्मिलित हुए थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में मदन मोहन मालवीय ने तर्क दिया कि यह सोचना गलत होगा कि महासभा एक साम्प्रदायिक संस्था है जिसके हित राष्ट्रवादी कांग्रेस के हितों के साथ टकरायेंगे। मालवीय स्वयं हिन्दू महासभा तथा कांग्रेस दोनों के सदस्य थे। उसने घोषणा की कि 'किसी भी हिन्दू के लिए कांग्रेस का विरोध करना शर्मनाक बात होगी। बल्कि महासभा कांग्रेस के कार्यों को और आगे बढ़ायेगी। कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था है और यह सामाजिक एवं गैर-राजनीतिक मामलों (जैसे छूआछूत, अन्तर्जातीय ईर्ष्या, बाल-विवाह आदि) की तरफ अधिक ध्यान नहीं दे सकती। महासभा इन मामलों की तरफ ध्यान देगी तथा हिन्दुओं के हितों की सुरक्षा करेगी।
2. परन्तु मालवीय द्वारा रेखांकित की गई यह सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका शीघ्र ही राजनीतिक भूमिका में बदल गई। 1926 में हिन्दू महासभा ने चुनावों में भाग लेने का फैसला लिया और एक राजनीतिक संस्था बन गई। यह हिन्दुओं के लिए एक साम्प्रदायिक राजनीतिक दल बन गया जैसे कि मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए थी।
3. 1920 के दशक में यह लाजपत राय तथा मदन मोहन मालवीय के प्रभुत्व में रही। परन्तु 1928 में लाजपत राय की मृत्यु हो गई तथा 1934 में मालवीय ने राजनीति से सन्यास ले लिया। 1930 के दशक में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकराल रूप धारण करने के परिणामस्वरूप हिन्दू महासभा भी वी०डी० सावरकर जैसे गरमपंथी नेताओं के हाथ में आ गई।
4. जहाँ सावरकर ने कांग्रेस का बहिष्कार करने की इच्छा जाहिर की। वहाँ उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि 'इसके नेता धूर्त नहीं हैं, वे केवल गलती कर रहे हैं।' सावरकर जिन्ना के इस विचार से सहमत थे कि कांग्रेस अपनी स्थापना से लेकर

TOUCH 'n PASS

आज तक एक हिन्दू संगठन रहा है जिसके पीछे हिन्दू दिमाग है, हिन्दू पैसा है तथा हिन्दू बलिदान है। हालांकि कांग्रेस ने कुछ मुस्लिम नेताओं को कभी-कभी अपनी नीतियों पर हावी होने का अवसर दिया है परन्तु वास्तव में वे अस्तित्वहीन है और एक संयुक्त भारत राष्ट्र के तुच्छ तमाशे को चलाने के लिए मुखौटे के रूप में रखा गया है।

5. सावरकर ने जिन्ना से बहुत पहले द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का निर्माण कर दिया था। 1937 में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में सावरकर ने कहा कि 'भारत की एकात्मकवादी तथा समरूप राष्ट्र के रूप में कल्पना नहीं की जा सकती। यह वास्तव में दो राष्ट्र है, एक हिन्दू संगठन रहा है तथा दूसरा मुस्लिम राष्ट्र। भारत में यह दो परस्पर विरोधी राष्ट्र साथ रह रहे हैं। यह भाग्य की विडम्बना थी कि 1940 के दशक में जिन्होंने मुसलमानों के लिए अलग राज्य की माँग की उन्होंने वही तर्क दिया जो सावरकर ने हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थन में दिया था कि हिन्दू तथा मुसलमान इकट्ठे नहीं रह सकते। अत: मुसलमानों को अपना अलग राष्ट्र बना लेना चाहिए।
6. इसी तरह आर्य समाजी नेता भाई परमानन्द का भी यह विचार था कि कांग्रेस ने बहुसंख्यक समुदाय की अवहेलना की है तथा सावरकर की तरह सभी हिन्दुओं को एक हिन्दू दल के झण्डे तले संगठित होने की अपील की। उसके अनुसार जहाँ मुस्लिम मंत्रिमंडल कांग्रेस तथा हिन्दुओं की परवाह किये बिना अपने समुदाय के हितों का ध्यान रखने के लिए स्वतंत्र हैं, वहाँ कांग्रेस मंत्रिमंडल मुस्लिम मुखी कार्यक्रमों के साथ बंधे हुए हैं और यह मुस्लिम समुदाय की अमिट साम्प्रदायिक भूख को मिटाने के लिए जरूरत से ज्यादा सचेत रहते हैं।
7. जब हिन्दू महासभा एक राजनीतिक दल बन गई तो 1925 में एक अन्य अर्ध सैनिक हिन्दू संस्था भारतीय स्वयंसेवक संघ अस्तित्व में आ गया। हैडगवार द्वारा नागपुर में स्थापित यह संस्था हिन्दू संस्कृति की पुनरावृति तथा शुद्धता में विश्वास रखती थी। हैडगवार के उत्तराधिकारी गोलवरकर ने भी कहा कि, गैर हिन्दू लोगों को हिन्दू संस्कृति तथा भाषा अपनानी चाहिए, हिन्दू धर्म की इज्जत करनी चाहिए, इसके प्रति श्रद्धाभाव रखना चाहिए तथा हिन्दू नस्ल तथा सांस्कृति के उत्थान के सिवाय और कुछ नहीं सोचना चाहिए।
8. संघ ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों की आलोचना की। गोलवरकर ने राष्ट्रवादियों की इसलिए आलोचना की कि वे हमारे सबसे बड़े दुश्मन मुसलमानों को गले लगा रहे हैं और हमारे अस्तित्व को खतरे में डाल रहे हैं। मुस्लिम लीग की तरह संघ भी 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से अलग रहा।

प्र.6. भारतीय रियासतों के एकीकरण का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief description of the unification of princely states of India.

उत्तर

भारतीय रियासतों का एकीकरण
(Unification of Princely States of India)

राष्ट्र के रूप में भारत के गठन की प्रक्रिया स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद आरम्भ हो गई थी। देशी रियासतों के विलय की समस्या सबसे प्रमुख थी। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितों को साधने के लिए देशी रियासतों का अस्तित्व बनाये रखा था। यह सर्वविदित तथ्य है कि बड़ी राजनीतिक शक्तियों का सफाया कर छोटी-छोटी रियासतों को अंग्रेजों ने अपना सहयोगी बनाया। वे अंग्रेजों के वफादार सहयोगी बन गये थे। यूँ तो छोटी बड़ी रियासतों की संख्या अनगिनत थी, किन्तु इन रियासतों में 563 बड़ी रियासतें थीं। इनका क्षेत्रफल लगभग 7 लाख, 12 हजार वर्ग मील था। इसके अंतर्गत सम्पूर्ण भारत का लगभग 2/5 क्षेत्रफल तथा 1/4 जनसंख्या थी।

1. स्वतंत्र भारत में भी इनका अस्तित्व बना रहा जो राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। इनके भारत में विलय के बिना राष्ट्रीय एकता का स्वप्न अधूरा ही था। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से ये रियासतें भारत का अभिन्न अंग थी, किन्तु राजनीतिक व प्रशासनिक दृष्टि से ये तथाकथित स्वतंत्र इकाइयाँ थी। जैसा कि अक्सर कहा जाता है, अंग्रेजों ने भारत को क्रमश: दो भागों अंग्रेजी भारत व देशी रियासतों के मध्य बाँट रखा था। अर्थात् एक साथ दो भारत निवास करते थे, जिन्हें क्रमश: ब्रिटिश भारत व रियासती भारत के नाम से जाना जाता था।
2. ब्रिटिश भारत में लागू होने वाले कानून व अन्य व्यवस्थाएँ देशी रियासतों में लागू नहीं होती थीं। ब्रिटिश भारत में संवैधानिक व प्रशासनिक व्यवस्था के विकास के साथ-साथ स्थानीय निकायों, विधायिकाओं एवं प्रजातांत्रिक संस्थाओं का जन्म हो चुका था। वहाँ निर्वाचन प्रणाली भी अस्तित्व में आ चुकी थी। ब्रिटिश भारत के निवासी सामाजिक,

TOUCH 'n' PASS

राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक संगठन व संस्थाएँ स्थापित कर सकते थे। देशी रियासतों में वहाँ के नागरिकों को किसी भी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। इससे ब्रिटिश भारत की तुलना में देशी रियासतों में पिछड़ापन व्याप्त था। कांग्रेस अपनी स्थापना के प्रारंभ से ही ब्रिटिश भारत की संस्था थी एवं देशी रियासतों में इसकी सीधी गतिविधियाँ लगभग नगण्य थीं। अप्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस के कार्यक्रमों से प्रेरणा प्राप्त कर रियासतों में जनचेतना जाग्रत होने लगी थी, किन्तु ब्रिटिश भारत की तुलना में यह जनचेतना बहुत पीछे थी।

3. 1920 के असहयोग आंदोलन के समानान्तर देशी रियासतों में भी जन-संघर्षों का जन्म हुआ। 1927 में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके नेतृत्व में देशी रियासतों में जन आंदोलन छेड़े गए। देशी रियासतों के बढ़ते हुए जनसंघर्ष को 1938 में कांग्रेस का खुला समर्थन मिला, जब इसी वर्ष कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में देशी रियासतों के जन आंदोलनों को कांग्रेस का अंग मान लिया गया। इसी वर्ष अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् का पुनर्गठन हुआ। कांग्रेस ने रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्ताओं को अपने-अपने राज्य में प्रजामण्डल अथवा प्रजापरिषद् संगठन बनाकर वहाँ के शासक की छत्र-छाया में जिम्मेदार शासन की स्थापना हेतु संघर्ष की सलाह दी।
4. 1938 के पश्चात् देशी रियासतों के जन आंदोलन कांग्रेस के आंदोलन का अंग तो बन गए थे, किन्तु लड़ाई के मुद्दे अलग ही रहे। देशी रियासतों में स्वतंत्रता प्राप्ति की माँग के स्थान पर देशी शासकों की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन अर्थात् जनप्रतिनिधित्व शासन की स्थापना की माँग थी। देशी रियासतों के निरंकुश शासक जिन्हें गौरांगप्रभु अंग्रेजों की कृपा प्राप्त थी। वे अपनी निरंकुशता छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। अत: अधिकांश राज्यों में प्रजामंडल संगठनों को अपनी मान्यता के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस रियासतों को ब्रिटिश पैरामाउन्टसी (सर्वोच्चता) के अंतर्गत स्वायत्तता प्राप्त थी। 15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतंत्रता के साथ ही देशी रियासतें भी स्वतंत्र हो गयी अर्थात् देशी रियासतें ब्रिटिश पैरामउन्टसी (पर्मोच्चा सत्ता) से मुक्त हो गयी।
5. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अनुसार यह देशी रियासतों के शासकों की इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वे भारतीय संघ में सम्मिलित हों अथवा पाकिस्तान में, किन्तु देशी रियासतों के शासकों ने दावा किया कि 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश शासन के समाप्त होने के बाद वे स्वतंत्र हो जायेंगे। मुहम्मद अली जिन्ना ने 18 जून, 1947 को घोषित किया कि ब्रिटिश सर्वोच्चता की समाप्ति के पश्चात सभी रियासतें स्वतंत्र सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य होंगे और यदि वे चाहें तो स्वतंत्र रहने का चुनाव कर सकते हैं। यह देशी रियासतों को भड़काने वाला वक्तव्य था, किन्तु देशी रियासतों में विकसित जन-आंदोलनों का जनाधार एवं लोकप्रियता के समक्ष ये सामन्ती शासक अधिक समय तक नहीं टिक सके।
6. 1947 से 1949 के दौरान सभी देशी रियासतों के विलय का कार्य पूर्ण हो गया जिससे भारत की एकता व अखण्डता स्थापित हुई, जो भू-भाग भारत के बंटवारे के कारण हाथ से निकल गये थे। उनकी पूर्ति काफी सीमा तक देशी रियासतों के विलय से हो गयी। अभी भी भारत के प्रांतों के पुनर्गठन का कार्य बाकी था। अत: 1949-1956 के दौरान राज्यों के पुनर्गठन का कार्य पूर्ण हुआ। विभाजन के परिणामस्वरूप लाखों लोग विस्थापित हो गए थे। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद इन विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या सबसे विकट थी। इनके पुनर्वास का कार्य भी लगभग आजादी के एक दशक के दौरान पूरा कर लिया गया।

प्र.7. पाकिस्तान के विचारों के उदय एवं देशी रियासतों के विलय के परिणामों का उल्लेख कीजिए।
Mention the consequences of the origin of ideas of Pakistan and the merger of native states.

उत्तर

पाकिस्तान के विचारों का उदय
(Origin of the Ideas of Pakistan)

पाकिस्तान के विचारों के उदय के परिणामों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 1930 के बाद मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग का एक गुट भारत में एक स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की स्थापना की कल्पना करने लगा। इसके लिए वैचारिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि अलीगढ़ आन्दोलन, मुस्लिम लीग की स्थापना तथा मिन्टो-मोर्ले सुधारों में मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों जैसी गतिविधियों ने पहले ही तैयार कर दी थी। 1930 में प्रसिद्ध उर्दू

TOUCH 'n PASS

शायर तथा दार्शनिक मोहम्मद इकबाल ने मुस्लिम लीग के इलाहाबाद, अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए कहा, मेरी इच्छा है कि पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध तथा ब्लूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाये। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अथवा इसके बिना, उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का निर्माण ही इनकी नियति है। इकबाल ने भारत के अन्दर एक मुस्लिम राज्य (A Muslim State within India) की माँग उठाई।

2. अलग मुस्लिम राज्य का विचार गोलमेज कान्फ्रेंस के समय रहमत अली के नेतृत्व में इंग्लैण्ड में कुछ मुस्लिम विद्यार्थियों ने भी दिया था। रहमत अली ने कान्फ्रेंस में मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल के सामने पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त या अफगान प्रान्त, कश्मीर, सिंधु तथा ब्लूचिस्तान को मिलाकर मुसलमानों के लिए पृथक् स्वदेश (Sepearate Homeland) की योजना पेश की। इस नये मुस्लिम राज्य को उसने पाकिस्तान उपरोक्त चार प्रान्तों के पहले अक्षर तथा आखिरी प्रान्त के आखिरी तीन अक्षर का नाम दिया। उसके प्रस्ताव को मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल ने खास महत्त्व नहीं दिया।
3. रहमत अली ने अपनी योजना के प्रचार के लिए 1933 में पाकिस्तान नेशनल मूवमैन्ट की स्थापना की परन्तु धीरे-धीरे पाकिस्तान का विचार तूल पकड़ने लगा। 1932 में ब्रिटिश सरकार की शह पर चौधरी मुहम्मद अली ने ब्रिटेन में बैठकर पाकिस्तान का नक्शा बनाया तथा इसे भारत भेजा।
4. 1935 के बाद जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग एक बार फिर सुसंगठित तथा सुदृढ़ हो गई। जिन्ना ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मुस्लिम वर्ग को लीग झंडे के नीचे इक्ट्ठा किया तथा इस मृतप्राय संस्था में एक बार फिर जान फूंक दी। उसने मुस्लिम समुदाय को एक नया मूल मंत्र दिया—इस्लाम की अखण्डता की रक्षा, राजनीतिक शक्ति के बंटवारे में हिन्दुओं के साथ समानता तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता। 1936 में दिल्ली उलेमा कान्फ्रेंस में उसने घोषणा की कि समस्या धार्मिक न होकर राजनीतिक है। किसी भी नये संविधान में मुसलमान अपने अधिकारों की रक्षा चाहते हैं क्योंकि शक्ति तथा सत्ता किसी को भी अंधा बना सकती है।

देशी रियासतों के विलय का परिणाम (Consequences of the Merger of Motive States)

भारत में देशी रियासतों का विलय विश्व इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना कही जा सकती है, जो किसी क्रांति से कम नहीं थी। रियासतों के विरुद्ध जन संघर्षों का मुख्य मुद्दा वहाँ जन-प्रतिनिधि निर्वाचित उत्तरदायी शासन की स्थापना था। इस हेतु भारी जनसंघर्ष हुए एवं यहाँ के जन आंदोलनों में स्वतंत्रता सेनानियों की कुर्बानी उल्लेखनीय रही। जितने अत्याचार देशी रियासतों के स्वतंत्रता सेनानियों को सहने पड़े, उतने ब्रिटिश भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने नहीं सहे। इस पर विस्तारपूर्वक लिखा जा सकता है, किन्तु यहाँ इसका उल्लेख इतना ही पर्याप्त है। भारी कुर्बानी देकर और अत्याचार सहकर भी रियासती स्वतंत्रता सेनानियों का संघर्ष गाँधीजी के अहिंसा व सत्याग्रह के सिद्धांत पर ही आधारित रहा। ऐसे अवसर भी आये जब स्वतंत्रता सेनानियों ने अनेक राज्यों में अपने शासक की तुलना रूस के जार से की एवं उसे जार की तरह सजा देने की धमकी भी दी गई। 1947 से 1949 के मध्य जिस प्रकार देशी रियासतों का विलय भारत में हुआ, उसे एक अहिंसात्मक क्रांति के रूप में देखा जाना प्रासंगिक है। देशी रियासतों के विलय के परिणामों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत समझना उपयुक्त रहेगा—

(i) देशी रियासतों के विलय से भारत की प्रादेशिक अखण्डता स्थापित हुई।
(ii) रियासती शासक जिनकी राष्ट्रवादी भावना संदेहजनक थी, वे राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ गये।
(iii) देशी नरेशों की निरंकुशता और फिजूलखर्ची का अंत हो गया।
(iv) देशी रियासतों की जनता को प्रजातांत्रिक एवं नागरिक अधिकार प्राप्त हो गए।
(v) रजवाड़ों के शासन के अन्तर्गत रियासतों के पिछड़ेपन का अंत हुआ एवं नवोदित राष्ट्र के साथ संयुक्त हो जाने के कारण इन क्षेत्रों में विकास को गति प्राप्त हो गयी।
(vi) रियासतों में उत्पन्न जन आंदोलनों की सफलता ने इन क्षेत्रों में प्रजातांत्रिक नेतृत्व कायम किया।
(vii) अंग्रेजों की कुत्सित नीतियों का अंत हो गया। उनके द्वारा कश्मीर और हैदराबाद रियासतों के विलय में उत्पन्न किए गए अवरोध सफल नहीं हो सके। इस प्रकार स्वतंत्र भारत की राष्ट्रवादी व प्रजातांत्रिक विचारों की विजय हुई।
(viii) भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरकर सामने आया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. क्षेत्रवाद से आप क्या समझते हैं? क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के प्रयासों को लिखिए।
What do you understand by regionalism? Write about the efforts to remove regional disparity.

उत्तर

क्षेत्रवाद
(Regionalism)

क्षेत्रवाद को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जन्मभूमि से प्रेम अथवा किसी जगह, क्षेत्र, राज्य उसकी भाषा संस्कृति के प्रति लगाव क्षेत्रवाद नहीं होता, और न ही राष्ट्र के लिए वह खतरनाक होता है। वह राष्ट्र भक्ति और राष्ट्रप्रेम के साथ जुड़ा हुआ होता है। अपने राज्य व क्षेत्र के प्रति गौरव महसूस करना भी क्षेत्रवाद नहीं है। अपने क्षेत्र के लगाव के प्रति गाँधी ने 1909 में कहा कि भारतीय के रूप में मेरे गौरव के आधार स्वरूप मुझे अपने गुजराती होने पर भी उतना ही गर्व होना चाहिए, नहीं तो हम लोग बिना किसी जड़ के रह जाएँगे।
2. गाँधी ने कहा कि व्यक्ति को परिवार के लिए मरना पड़ता है, परिवार को गाँव के लिए, गाँव को जिले के लिए, जिले को राज्य के लिए और राज्य को देश के लिए मरना पड़ता है। गाँधी यही नहीं रूके इससे आगे बढ़ गये और कहा कि एक देश यदि आवश्यकता पड़े तो दुनिया के फायदे के लिए मर सकता है।
3. संविधान की संघीय विशिष्टताओं को सुरक्षित रखने के प्रयास को भी क्षेत्रवाद के रूप में नहीं देखा जा सकता। भारत संघ के अंदर तक अलग राज्य की माँग अथवा मौजूदा राज्य के अंदर स्वायत्त क्षेत्र की माँग अथवा शक्ति का विकेन्द्रीकरण आदि का विरोध कई व्यवहारिक समस्याओं के आधार पर किया जा सकता हैं। परन्तु इसे तब तक क्षेत्रीयतावादी नहीं माना जा सकता जब तक कि इसे राज्य की शेष जनता के विरुद्ध शत्रुताभाव से सामने नहीं रखा जाता।
अर्थात् क्षेत्रवाद तब हमारे सामने आता है जब एक राज्य या अथवा क्षेत्र के हितों को पूरे देश या दूसरे क्षेत्रों अथवा राज्यों के विरुद्ध पेश करने की कोशिश की जाती है और इसे तथाकथित हितों के आधार पर संघर्ष को प्रोत्साहित करने की कोशिश की जाती है।
4. क्षेत्रवाद भारत में तभी फल फूल सकता था जब किसी क्षेत्र अथवा राज्य को यह महसूस होता कि उसके ऊपर सांस्कृतिक वर्चस्व या भेदभाव आरोपित करने की कोशिश की जा रही हैं किन्तु भारत के विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों को अपनी पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता रही है। भारत का भाषायी पुनर्गठन और राजभाषा विवाद के समुचित समाधान ने इस मामले में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके सांस्कृतिक ह्रास या सांस्कृतिक वर्चस्व की भावना को समाप्त कर अंतरक्षेत्रीय संघर्षों के एक बहुत बड़े कारण का उन्मूलन कर दिया।

क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के प्रयास (Efforts to do Away with Regional Disparity)

स्वतंत्रता के समय से भारत का नेतृत्व इन क्षेत्रीय असमानताओं की समस्या से वाकिफ था। फलत: भारत के सभी भागों के समान और संतुलित विकास को सुनिश्चित करने पर बल दिया गया। इस संदर्भ में भारत की आर्थिक-प्रशासनिक नीति ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **वित्त आयोग की भूमिका**—वित्त आयोग उन सिद्धांतों को तय करता है जिनके आधार पर केन्द्रीय करो तथा अन्य वित्तीय संसाधनों को राज्यों के बीच बाँटा जाता है। यह आयोग न केवल राज्यों के बीच न्याय करने की कोशिश करते हैं बल्कि अंतर्राज्यीय असमानताओं को दूर करने के लिए गरीब राज्यों के हित में पक्षपात भी करते हैं।
2. **नियोजन**—नियोजन एक ऐसा शक्तिशाली हथियार था जिसके माध्यम से क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया गया। तीसरी योजना में स्पष्ट रूप से कहा गया कि देश के विभिन्न हिस्सों का संतुलित विकास करना और आर्थिक प्रगति का लाभ सभी तक पहुँचाना नियोजित विकास का प्रमुख लक्ष्य है।
3. **बैंकों का राष्ट्रीयकरण**—बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद उनकी शाखाओं के विस्तार का उपयोग भी पिछड़े क्षेत्रों के पक्ष में किया गया। वित्तीय संस्थाओं को इन क्षेत्रों में पूँजी निवेश को प्रोत्साहित किया गया तथा वित्त मंत्रालय ने भी कुछ विशेष योजनाएँ चलाई जैसे काम के बदले अनाज कार्यक्रम, जनवितरण प्रणाली आदि।
4. **अप्रवासन**—इसके माध्यम से आबादी की आर्थिक गतिशीलता विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों से अकुशल श्रमिकों की आवाजाही ने भी क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने में योगदान दिया है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साम्प्रदायिकता के विकास का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Mention the evolution of communalism in detail.

उत्तर

साम्प्रदायिकता का विकास
(Evolution of Communalism)

I. प्रारंभिक चरण-कांग्रेस की स्थापना से पूर्व
(Preliminary Stage before the Establishment of Congress)

अखिल भारतीय स्तर पर साम्प्रदायिकता पहली बार 1880 तथा 1890 के दशकों में देखने को मिली, जहाँ हिन्दू बुद्धिजीवी वर्ग में राष्ट्रवाद की भावना तेजी से पनप रही थी, वहाँ मुस्लिम समुदाय इससे अलग-थलग ही रहा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुस्लिम संगठन भी गिने-चुने थे। परन्तु मुस्लिम दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा जा सकता था। नवाब अब्दुल लतीफ ने 1863 में एक मोहम्मदीन लिटरेटरी एंड साईन्टिफिक सोसाईटी ऑफ कलकत्ता की स्थापना की जिसका उद्देश्य सभी न्यायोचित तथा संवैधानिक तरीकों से भारतीय मुसलमानों के कल्याण को प्रोत्साहन देना था। इसने अंग्रेजी शिक्षा की प्रशंसा की तथा अंग्रेजी शासन के प्रति निष्ठा व्यक्त की। अमीर अली ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के कांग्रेस में शामिल होने के न्यौते को ठुकरा दिया क्योंकि उसका विचार था कि मुस्लमानों के लिए अलग राजनीतिक संगठन की आवश्यकता है।

इसे निम्न प्रकार भी समझा जा सकता है—

1. सर सैयद अहमद खान से एक नये युग का सूत्रपात हुआ। सैयद को मुस्लिम पुनजार्गरण का जनक भी कहा जाता है। उसने अपना जीवन बिना किसी साम्प्रदायिक पक्षपात के एक उदारवादी बुद्धिजीवी के रूप में आरंभ किया। उसके द्वारा शुरू किये गये वैज्ञानिक, संगठनों में हिन्दू एवं मुसलमान दोनों शामिल थे। मुस्लिम समुदाय में आधुनिक शिक्षा के प्रति पक्षपात समाप्त करने के उद्देश्य से स्थापित किये गये अलीगढ़ कॉलेज को हिन्दू समुदाय से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई। उसने मुसलमानों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त न करने के खतरों को भली-भाँति भांप लिया।
2. **कांग्रेस की स्थापना के बाद**—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले सैयद अहमद खान हिन्दू-मुसलमानों में सांझेपन पर काफी बल देते रहे। परन्तु धीरे-धीरे उसमें यह विचार पनपने लगा कि शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में हिन्दू मुसलमानों से काफी आगे हैं। अत: यह मुसलमानों के हित में होगा कि वे इस नये राष्ट्रवाद से दूर रहें। उसने कांग्रेस के इस विचार से असहमति प्रकट की कि उच्च प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश ऊँची जाति वालों तक सीमित नहीं रहना चाहिए और इनका चयन मुक्त प्रतियोगिता के आधार पर होना चाहिए। इसी तरह उसने कांग्रेस की प्रतिनिधि सरकार की माँग का भी विरोध किया।
3. सैयद का विचार था कि प्रजातंत्र का अर्थ है बहुमत का शासन तथा बहुमत का अर्थ है हिन्दू शासन। ऐसी सरकार नाम की अंग्रेज होगी परन्तु वास्तव में शक्ति हिन्दुओं के पास होगी। अत: उन्होंने यह तर्क पेश किया कि देश अभी प्रतिनिधि सरकार के लिए तैयार नहीं है। उसने मुस्लिम समुदाय से अनुरोध किया कि वे ब्रिटिश सरकार के साथ पूरा सहयोग करें।
4. कांग्रेस तथा इसके कार्यक्रमों के विपरीत सैयद अहमद खान ने 1888 में 'यूनाइटेड पेट्रिआटिक एसोसिएशन' की स्थापना की। दो साल पहले उन्होंने वार्षिक मुस्लिम शैक्षणिक सम्मेलन का गठन किया जिसका उद्देश्य मुस्लिम राजनीतिक विचारों का प्रसार करना था।
5. वास्तव में सैयद तथा उसके सहयोगियों ने साम्प्रदायिक विचारधारा के सभी मौलिक तत्त्व जुटा दिये। इसका मूल विचार यह था कि एक ऐसे देश में जहाँ के लोग एक समान न हो प्रतिनिधि सरकार की शुरुआत करने से कई तरह की बुराईयाँ उत्पन्न होंगी क्योंकि आम जनता अपना वोट राजनीतिक आधार पर नहीं बल्कि धार्मिक भिन्नता के आधार पर देगी। प्रतिनिधि सरकार के नाम पर कांग्रेस का प्रशासन पर पूरा नियंत्रण हो जायेगा। अत: इसका अर्थ होगा कि 'केवल शांतिपूर्ण तरीके से ही विभिन्न राजनीतिक गुटों एवं समुदायों के सापेक्षिक महत्त्व में एक ऐसा महान परिवर्तन हो जायेगा जो प्राय: गृह युद्ध के माध्यम से संपन्न होता है।
6. संक्षेप में, कांग्रेस को एक ऐसा हिन्दू संगठन घोषित कर दिया गया जिसके उद्देश्य मुस्लिम हितों के विरुद्ध थे तथा अल्पसंख्यक हितों की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासन आवश्यक था। मुसलमानों को चाहिए कि वे सरकार के प्रति वफादार

TOUCH 'n' PASS

रहें तथा कांग्रेस का विरोध करें। साथ ही सैयद अहमद खान ने सरकारी नौकरियाँ, विधानसभाओं, जिला बोर्डों में मुस्लिम हितों की सुरक्षा की माँग की तथा मुसलमानों की ऐतिहासिक भूमिका एवं राजनीतिक महत्त्व को मान्यता देने का अनुरोध किया। उपनिवेशी शासकों ने साम्प्रदायिकता तथा अल्पसंख्यकों को सरकारी सुरक्षा देने के महत्त्व को तुरन्त भांप लिया। अपने प्रारंभिक जीवन में सैयद ने हिन्दू-मुसलमानों को भारत की दो आँखों की संज्ञा दी थी परन्तु बाद की रचनाओं में उन्हें दो राष्ट्रों का नाम दिया गया।

7. मुसलमानों के इस नये दृष्टिकोण तथा नीति का केन्द्र था अलीगढ़ कॉलेज, जिसके कारण यह अलीगढ़ आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस नये विचार का एक सक्रिय समर्थक था इस कॉलेज का 1883-99 तक रहा प्रधानाचार्य थियोडोर बैक। बैक को मुस्लिम अलगाववाद का निर्माता माना जाता है। उसने भी यह तर्क पेश किया कि भारत जैसे देश में संसदीय सरकार, व्यवस्था अर्थहीन है जहाँ दो राष्ट्रों का अस्तित्व हो तथा अल्पसंख्यक राष्ट्र का दमन किया जा रहा हो। इसने प्रतियोगिता पर आधारित परीक्षाओं का विरोध किया क्योंकि इससे केवल बंगालियों को ही फायदा होगा। अलीगढ़ आंदोलन अधिकतर मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख करने में काफी सफल रहा। इस तरह इसने भारत में दो राष्ट्र के सिद्धांत के बीज बोये।

II. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का जन्म (Birth of All India Muslim League)

पृष्ठभूमि (Background)—मुस्लिम सम्प्रदाय के पृथक्कतावादी नेता एक अलग स्वतंत्र संगठन की आवश्यकता महसूस करने लगे। वे ब्रिटिश सरकार से 'राष्ट्र के अन्दर राष्ट्र' के रूप में स्वतंत्र राजनीतिक मान्यता प्राप्त करना चाहते थे। उच्च स्तरीय मुस्लिम समुदाय तथा इसके व्यवसायिक वर्ग का एक अनन्य मुस्लिम राजनीतिक संगठन की माँग को पूरा करने के लिए 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। इस संदर्भ में आगा खान की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधिमण्डल लॉर्ड मिण्टो से मिला। हालाँकि मुस्लिम राजनीतिक संगठन की स्थापना की पहल ढाका के नवाब सलीमुल्ला ने की थी परन्तु संगठन पर शीघ्र ही अलीगढ़ स्थित मुस्लिम विशिष्ट वर्ग का कब्जा हो गया। यहाँ भी साम्प्रदायिक पृथक्कतावाद को प्रोत्साहन देने के लिए ब्रिटिश उत्तरदायित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। सैयद अहमद खान के राजनीतिक वारिस मोहसिन-उल-मुल्क ने 4 अगस्त, 1906 को अलीगढ़ कॉलेज के प्रधानाचार्य आर्कबोल्ट को सूचित किया कि मुस्लिम समुदाय में कांग्रेस प्रभाव को शक्तिहीन करने के लिए एक सक्रिय राजनीतिक नीति की नितान्त आवश्यकता है।

उद्देश्य (Aims)—अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का निर्माण जमींदारों, सेवानिवृत्त सरकारी पदाधिकारियों तथा उच्च वर्गीय मुसलमानों के एक समूह ने किया। स्थापना के समय लीग के मुख्य उद्देश्य थे—

1. भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा की भावना पैदा करना।
2. भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना तथा उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को संयमित भाषा में सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
3. उपरोक्त उद्देश्यों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना तथा जहाँ तक संभव हो सके, मुस्लिम समुदाय तथा भारत के अन्य समुदायों में मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना।

कार्य (Work)—लीग ने पृथक्कतावाद के सिद्धांत में दृढ़ विश्वास प्रकट किया। बंगाल विभाजन का समर्थन किया, कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध किया तथा स्वदेशी आंदोलन की आलोचना की। इसने मुसलमानों के पृथक् हित, प्रथक निर्वाचन क्षेत्र तथा सरकारी नौकरियों में पृथक् संरक्षण की माँग उठाई। इसका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों को कांग्रेस से विमुख करना था। इसकी सारी गतिविधियाँ कांग्रेस के विरुद्ध थी न कि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध।

मुस्लिम पृथक्कतावाद की प्रगति : स्वदेशी आंदोलन (Progress of Muslim Separatism : Swadeshi Movement)—बंगाल विभाजन के विरुद्ध चलाये गये स्वदेशी आंदोलन के दौरान मुस्लिम पृथक्कतावाद में काफी प्रगति हुई। साम्प्रदायिक सद्भावना की अपील तथा विश्वसनीय आंदोलनकारी गुट (जिसमें गजनवी, रसूल, दीन मोहम्मद, दीदार बक्श, अब्दुल हुसैन जैसे नेता शामिल थे) की उपस्थिति के बावजूद उच्च वर्गीय मुस्लिम समुदाय इस आंदोलन से अलग रहा। ब्रिटिश सरकार के इस प्रचार कि विभाजन के बाद नये प्रांत में मुसलमानों को नौकरियों के अधिक अवसर प्राप्त होंगे, ने काफी संख्या में मध्य तथा उच्च वर्गीय मुसलमानों को स्वदेशी आंदोलन से विमुख कर दिया।

पृथक् निर्वाचन मंडल एवं मुस्लिम पृथक्कतावाद (Separate Electorate and Muslim Separatism)—औपनिवेशिक सरकार तथा मुस्लिम पृथक्कतावादी विशिष्ट वर्ग ने मिलकर 1909 में पृथक् निर्वाचन क्षेत्र के रूप में एक

TOUCH 'n PASS

शक्तिशाली साम्प्रदायिक यंत्र की रचना की। मिण्टो-मोर्ले सुधारों ने भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र तथा प्रतिनिधि व्यवस्था का प्रावधान किया। इसने कुछ पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की रचना की जिसमें केवल मुस्लिम उम्मीदवार ही चुनाव लड़ेंगे और केवल मुसलमान ही वोट देंगे। इस तरह भारत के संवैधानिक तंत्र में ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक सिद्धांत का समावेश किया। बाद में इस सिद्धांत को अन्य समुदायों पर भी लागू किया गया जैसे सिक्ख, दलित वर्ग तथा अल्पसंख्यक समूह। चुनाव के समय साम्प्रदायिकता के नाम पर वोट माँगे जाने लगे तथा सामाजिक-आर्थिक प्रगति को साम्प्रदायिकता के साथ जोड़कर देखा जाने लगा।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता के सम्मुख हिन्दू साम्प्रदायिकता का उदय (Rise of Hindu Communalism in the face of Muslim Communism)—मुस्लिम साम्प्रदायिकता के सम्मुख हिन्दू साम्प्रदायिकता का उदय निम्न प्रकार है—

1. इसी बीच मुस्लिम साम्प्रदायिकता को देखते हुए हिन्दू साम्प्रदायिकता भी पनपनी आरंभ हो गई। 1870 के बाद हिन्दू जमींदारों, सूदखोरों तथा मध्य वर्गीय व्यवसायियों के एक समूह ने मुस्लिम विरोधी भावनाओं को उकसाना आरंभ कर दिया। वे मध्य युग के तानाशाही मुस्लिम शासन तथा दमन से हिन्दुओं को बचाने के लिए ब्रिटिश शासन की प्रशंसा करने लगे। संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में उन्होंने हिन्दी भाषा का मुद्दा उठाया तथा इसे एक साम्प्रदायिक रूप दे दिया कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है और हिन्दी हिन्दुओं की। 1890 के दशक में गौ-हत्या विरोधी प्रदर्शन भी हुए जो साम्प्रदायिक दंगों में बदल गये।
2. 1907 में पंजाब में हिन्दू महासभा का गठन किया गया। इसने भारत को 'एक राष्ट्र के सूत्र में बांधने की तथा मुसलमानों को तुष्ट करने के लिए हिन्दू हितों के बलिदान' के कांग्रेस के प्रयत्नों की आलोचना की।
3. बीसवीं शताब्दी के आरंभ में राष्ट्रवादी आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व इसे हिन्दू रंग देना था। कई उग्रवादी नेता मध्ययुगीन संस्कृति की अवज्ञा करके पुरानी हिन्दू संस्कृति पर अत्याधिक बल देने लगे। तिलक ने गणेश पूजा जैसे त्यौहारों को राष्ट्रवाद के प्रचार के लिए प्रयुक्त किया। कई बंगाली, हिन्दी तथा उर्दू लेखकों ने अपने उपन्यासों, कहानियों तथा एकांकी नाटकों में मुसलमानों को विदेशी करार दिया।
4. मुस्लिम समुदाय में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई और वे उभरते राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख हो गये। परन्तु समग्र रूप में, राष्ट्रीय आंदोलन धर्मनिरपेक्ष तथा राष्ट्रवादी रहा। जिन्ना तथा आजाद जैसे मुसलमानों को इसे स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं हुई।
5. बिपिन चन्द्र ने लिखा कि हिन्दू साम्प्रदायिकता जन्म से ही एक 'बीमार बच्चा' थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि जहाँ हिन्दुओं तथा पारसियों में विज्ञान, प्रजातंत्र तथा राष्ट्रवाद पर बल देने वाले आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग ने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया, वहाँ मुसलमानों में संकीर्णवादी जमींदार तथा मुल्ला प्रधान भूमिका निभाते रहे। इसके अलावा ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू साम्प्रदायिक तत्त्वों को न कोई रियासत दी और न ही कोई समर्थन। वह केवल मुस्लिम साम्प्रदायिकता का पक्ष लेती रही।

III. लखनऊ पैक्ट-हिन्दू-मुस्लिम एकता का काल
(Lucknow Pact: Era of Hindu-Muslim Unity)

इसको निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन ने गति पकड़ी, मुस्लिम नेतृत्व पीछे रह गया। यह पृथक्कतावाद तथा आरक्षण की राजनीति में पड़ा रहा। परन्तु 1912 के बाद मुस्लिम समुदाय में भी राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होना शुरू हो गया। यहाँ तक कि यह उग्रवादी रूप लेने लगा। मुस्लिम एंग्लो-ओरियन्टल कॉलेज की स्थापना के कुछ सालों बाद ही अहरार लीग की स्थापना ने इस प्रवृत्ति की ओर संकेत दिया।
2. प्रथम विश्व युद्ध से पहले नये मुस्लिम मध्यवर्ग में भी राजनीतिक परिपक्वता आ गई थी। शिक्षित तथा मुखर नये मध्य वर्ग ने साम्राज्यवादी व्यवस्था पर अपनी निर्भरता त्याग दी तथा इससे अपनी असन्तुष्टि प्रकट करने लगे। डॉ० अन्सारी, अब्दुल कलाम आजाद, मौलाना मोहम्मद अली, हकीम अजमल खाँ बड़े प्रखर मुस्लिम नेता थे जो सैयद अहमद खान के विचारों एवं उद्देश्यों तथा अलीगढ़ आन्दोलन की प्रशंसा करते हुए भी इस बात में विश्वास रखते थे कि मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार का पिट्ठू नहीं बनना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लें और इसके लिए उन्हें कांग्रेस के साथ समझौता करना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

3. कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में सकारात्मक वातावरण से दोनों समूहों में 1916 में लखनऊ पैक्ट के माध्यम से राजनीतिक एकता लाई गई। इस पैक्ट में पृथक् निर्वाचन क्षेत्र तथा विधानमण्डल में अल्पसंख्यकों के महत्त्व के अनुसार सीटों के आरक्षण को स्वीकार कर लिया गया। हालांकि यह समझौता मजबूरी में किया गया फिर भी यह एक प्रतिगामी कदम था क्योंकि पृथक् निर्वाचन क्षेत्र के सिद्धान्त को स्वीकार करके कांग्रेस ने वास्तव में साम्प्रदायिकता की राजनीति को स्वीकार कर लिया। इससे और अधिक साम्प्रदायिकता का रास्ता खुल गया।
4. असहयोग आन्दोलन तथा खिलाफत के दौरान हिन्दू-मुस्लिम एकता अपनी चरम सीमा पर थी। गाँधी तथा कांग्रेस ने खिलाफत कान्फ्रेंस तथा लीग की पवित्र धार्मिक स्थलों की सुरक्षा की माँग को पूरे उत्साह के साथ समर्थन दिया। उधर मुस्लिम धार्मिक संस्थाओं ने भी भारतीय मुसलमानों को असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। मोहम्मद अली, शौकत अली तथा कई अन्य मुस्लिम नेता इस आन्दोलन के दौरान जेल गये। सरकार द्वारा अपने संगठन पर लगाये गये प्रतिबन्ध तोड़ने के जुर्म में कई मुस्लिम कार्यकर्ता भी जेल गये। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि असहयोग आन्दोलन की चरम सीमा पर भी मुस्लिम लीग ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस तथा खिलाफत अलग-अलग संस्थाएँ बनी रहीं, वे अपने नेताओं द्वारा किये गये मैत्रीपूर्ण समझौते के कारण इकट्ठे हुए परन्तु यदि नेतृत्व में मत विभिन्नता हो जाए तो दोनों तत्काल अलग हो सकते थे। खिलाफत आंदोलन ने रूढ़िवादी मुसलमानों को राजनीति में प्रवेश करने का मौका दिया जो स्वतंत्र भारत को धार्मिक समुदायों के एक संघ से ऊपर नहीं देखते थे। खिलाफत आंदोलन ने मुस्लिम मध्यवर्ग की राष्ट्रीय तथा साम्राज्यवाद विरोधी भावना को अवश्य जगाया परन्तु राष्ट्रीय नेतृत्व उनकी धार्मिक राजनीतिक चेतना को उच्चतर धरातल पर ले जाकर उसके धर्मनिरपेक्ष राजनीति चेतना में परिवर्तित करने में असफल रहा। संक्षेप में, साम्प्रदायिकता को पनपने का मौका दिया गया।

IV. साम्प्रदायिक दंगे (Communal Riots)

इसके आधार पर साम्प्रदायिकता के विकास को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कांग्रेस तथा लीग की मैत्री समझौता काफी अल्पकालीन तथा अस्थाई सिद्ध हुआ। 1916 में हुआ यह समझौता गाँधी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लेने के बाद टूट गया। पिछले कुछ सालों में स्थापित हिन्दू-मुस्लिम एकता एक बार फिर दुश्मनी और विभाजन में बदल गई।
2. 1924 में खिलाफत आन्दोलन धाराशायी हो गया जब टर्की के नये शासनाध्यक्ष ने खलीफा का पद ही समाप्त कर दिया। इस खालीपन में मुस्लिम समुदाय एक बार फिर लीग की तरफ आकर्षित होने लगा। मुस्लिम लीग जो 1918 से सुषुप्तावस्था में पड़ी थी, एक बार फिर सक्रिय हो गई। इसने सभी राष्ट्रवादी तथा उग्रवादी तत्त्वों को दल से निकाल दिया। साम्प्रदायिकता तथा निष्ठा इसके मूल आधार बनाये गये। अन्य संगठनों के साथ राजनीतिक गठबन्धन साम्प्रदायिक आधारों पर किये जाने लगे। मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठनों द्वारा तंजीम और तबलीग आन्दोलन शुरू किये गये।
3. साथ ही साथ, हिन्दू साम्प्रदायिकता भी सिर उठाने लगी। हिन्दू महासभा को 1922-23 में फिर से जागृत किया गया। लाजपत राय, एन०सी० केलकर जैसे राष्ट्रवादी नेता हिन्दू महासभा के सदस्य बन गये तथा हिन्दू एकता का प्रचार करने लगे। मुसलमानों की 'तन्जीम' तथा तबलीग का जवाब आर्य समाजियों ने 'शुद्धि' तथा 'संगठन' से दिया। इस दौर में साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति कई दंगों के माध्यम से हुई।
4. साम्प्रदायिक दंगे हिन्दू-मुसलमानों के विभाजन का बाहरी रूप था। असली मुद्दा राजनीतिक था। अपने समुदाय के भविष्य, आकांक्षाओं तथा आर्थिक सुरक्षा को लेकर पैदा होने वाली शंकाओं से दोनों समाज चिन्तित थे। जहाँ हिन्दू समुदाय मुसलमानों की इतर-प्रदेशिक निष्ठा (extra-territorial loyalty) तथा सर्व-इस्लामिक आकांक्षाओं (Pan-Islamic ambitions) को लेकर चिन्तित था, वहाँ मुसलमानों ने पहले पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की माँग उठाई और धीरे-धीरे वे मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में वृद्धि की माँग करने लगे जैसे सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, पंजाब, बंगाल, आसाम आदि। ये यह भी चाहते थे कि केन्द्र सरकार अपनी शक्तियों को सीमित करे तथा सभी अवशेष शक्तियाँ प्रान्तों को दे दी जाएँ।

TOUCH 'n' PASS

V. नेहरू रिपोर्ट तथा जिन्ना का 'रास्ते अलग-अलग' की घोषणा
(Nehru Report & Jinnah's Parting of Ways)

इसके आधार पर साम्प्रदायिकता के विकास को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. जब विभिन्न राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया तथा एक सर्वदलीय संविधान बनाने के लिए तैयार हो गये तो एक बार फिर हिन्दू-मुस्लिम एकता के आसार नजर आने लगे। जिन्ना ने एक समझौता प्रस्ताव लाया। उसका विचार था कि 'पृथक् निर्वाचन क्षेत्र' की मुस्लिम माँगों को अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों वाले संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में बदला जा सकता है यदि केन्द्रीय विधानसभा में 1/3 मुस्लिम प्रतिनिधित्व, पंजाब तथा बंगाल में जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व तथा तीन नये मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों (सिन्ध, बलूचिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त) को मान्यता दे दी जाए। यह पेशकश 1927 के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में भी दोहराई गई। कांग्रेस जिन्ना की काफी माँगे मानने को तैयार थी परन्तु पंजाब तथा महाराष्ट्र से हिन्दू साम्प्रदायिक दबाव बहुत अधिक होने के कारण इसे पीछे हटना पड़ा।
2. फरवरी, 1928 में दिल्ली में होने वाली ऑल पार्टी कान्फ्रेंस में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व एक टेढ़ी खीर बना रहा। इसी बीच हिन्दू महासभा ने अपने जबलपुर अधिवेशन में सभी गैर-हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन की माँग की तथा हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं ने नये मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों के निर्माण एवं पंजाब और बंगाल में मुस्लिम सीटों के आरक्षण का जमकर विरोध किया।
3. नेहरू रिपोर्ट में हिन्दू महासभा के विचारों को काफी रियासत दी गई। इसमें यह प्रस्तावित किया गया कि सभी क्षेत्रों में केवल संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र होंगे, सीटों का आरक्षण केवल केन्द्रीय विधानमण्डल तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में होगा, सिंध को बम्बई से पृथक् करने का निर्णय भारत को डोमिनियन स्टेटस मिलने तथा हिन्दू अल्पसंख्यकों का अनुपातिक प्रतिनिधित्व निश्चित करने के बाद किया जाएगा। देश का राजनीतिक ढाँचा एकात्मक होगा तथा अवशेष शक्तियाँ केन्द्र के पास रहेंगी।
4. एकता बनाये रखने के अन्तिम प्रयास में जिन्ना ने अपील की कि सिन्ध को अलग प्रान्त देने का दर्जा, अवशेष शक्तियाँ प्रान्तों के पास, केन्द्रीय विधानमण्डल में 1/3 मुस्लिम प्रतिनिधित्व तथा पंजाब/बंगाल में आरक्षित सीटों की माँगों को मान लिया जाए। परन्तु ऑल पार्टी कान्फ्रेंस ने जिन्ना के इस अनुरोध को ठुकरा दिया। जिन्ना ने इसे 'रास्ते अलग-अलग होना' (Parting of ways) का नाम दिया। परिणामस्वरूप सभी मुस्लिम साम्प्रदायिक गुट इकट्ठे हो गये तथा उन्होंने एक प्रपत्र तैयार किया जिसे जिन्ना का 14 सूत्रीय कार्यक्रम का नाम दिया गया। यह प्रपत्र भविष्य में होने वाले सभी समझौतों का आधार बन गया।

प्र.2. प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल तथा लीग के दृष्टिकोण में कड़ेपन की व्याख्या कीजिए तथा पाकिस्तान प्रस्ताव तथा द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

Explain the congress ministeries in the provinces and the Hardening of league's stance. Also, discuss the Pakistan resolution and Two Nation Theory.

उत्तर

प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल तथा लीग के दृष्टिकोण का कड़ापन
(Congress Ministeries in the Provinces and Hardening of League's Stance)

इसे निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है—

1. 1937 के प्रान्तीय चुनाव के बाद उभरे राजनीतिक वातावरण में साम्प्रदायिकता ने विकराल रूप धारण करना शुरू कर दिया। इन चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। यह 1585 में से 717 स्थानों पर विजयी रही, पाँच प्रान्तों में इसे स्पष्ट बहुमत मिल गया तथा बम्बई में यह बहुमत के आसपास थी।
2. दूसरी तरफ, मुस्लिम लीग 483 पृथक् निर्वाचन क्षेत्र में से केवल 109 पर विजयी रही। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में से एक भी सीट नहीं मिली, पंजाब की 84 आरक्षित सीटों में से यह केवल 2 सीटें तथा सिंध में 33 आरक्षित सीटों में से 3 सीटें प्राप्त कर सकी। बंगाल में फजलुल हक तथा पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी सफल रही।

Touch 'n' PASS

3. संयुक्त प्रान्त में मुस्लिम लीग का कांग्रेस के साथ गठबन्धन बनाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया (कांग्रेस चाहती थी कि मुस्लिम लीग का कांग्रेस में विलय हो जाए)। कांग्रेस का विचार था कि गठबन्धन सरकार के चलते उनके सामाजिक-आर्थिक सुधारों के कार्यक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा कांग्रेस को संयुक्त प्रान्त के देवबंद के उलेमा गुट तथा उत्तरी भारत में अहरार पार्टी का समर्थन प्राप्त था।
4. 27 महीनों के कांग्रेस के प्रान्तों में शासन के दौरान लीग कांग्रेस में विरुद्ध प्रचार करती रही। 1937 में मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन में जिन्ना ने कांग्रेस पर आरोप लगाया कि शुद्धतः हिन्दुवादी नीतियों का अनुसरण करके कांग्रेस मुसलमानों को अलग-थलग कर रही है। जब से कांग्रेस ने प्रान्तों में सरकारें बनाई है उसने अपने शब्दों, कर्मों तथा कार्यक्रमों से सिद्ध कर दिया है कि मुसलमानों को इसके हाथों कोई न्याय नहीं मिल सकता। साथ ही, सभी प्रान्तों में रहने वाले मुसलमानों को जिन्न ने विश्वास दिलाया कि जनकल्याण तथा राजनीतिक सुधारों के लिए वे लीग के सहयोग पर भरोसा कर सकते हैं। इसके अलावा उसने मुस्लिम समुदाय को यह भी विश्वास दिलाया कि उनका भविष्य लीग के हाथों में ही सुरक्षित है तथा एक सुदृढ़ मजबूत एवं संगठित शक्ति किसी भी खतरे का मुकाबला कर सकती है।
5. सरकार ने लीग का समर्थन किया तथा इसे मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर लिया। लीग को यह आश्वासन भी दिया गया कि संविधान में कोई भी सुधार मुसलमानों की सहमति के बिना नहीं किया जाएगा।
6. अक्टूबर, 1938 में जिन्ना ने कांग्रेस पर आरोप लगाया कि जब से इसे 6 प्रान्तों में बहुमत प्राप्त हुआ है इसने लीग के प्रति निर्दयी, क्रूर तथा शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाना शुरू कर दिया है तथा यह साम्प्रदायिक दंगे रोकने में असफल रही, बकरीद तथा गौ-हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, सार्वजनिक स्थलों पर वन्देमातरम् गाना तथा उर्दू की कीमत पर देवनागरी लिपि में हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।
7. यहाँ तक कि जिन्ना ने सरकार पर भी आरोप लगाया कि यह मुसलमानों के अधिकारों की अवहेलना करने में कांग्रेस के साथ मिली है।
8. कांग्रेस के विरुद्ध मुस्लिम शिकायतों की जाँच के लिए लीग ने एक समिति का गठन किया। दिसम्बर, 1939 में प्रकाशित एकपक्षीय रिपोर्ट ने कांग्रेस तथा हिन्दुओं की कई मामलों में निन्दा की जैसे सरकार में मुसलमानों की भागीदारी न बनाना, शिक्षा के क्षेत्र में वर्धा योजना लागू करना, मुसलमानों को कांग्रेस के झण्डे का आदर करने के लिए मजबूर किया तथा हिन्दी के प्रयोग का विस्तार करना। इनमें से अधिकतर आरोप अतिश्योक्त थे तथा कांग्रेस ने इन सभी आरोपों को एक निष्पक्ष सत्ता द्वारा जाँच करवाने की पेशकश की परन्तु जिन्ना ने इसे अस्वीकार कर दिया। यहाँ तक कि सरकार ने भी कांग्रेस को पूर्णतया दोषमुक्त करार दिया।
9. वस्तुतः तथ्य यह था कि 27 महीनों के कांग्रेसी शासन में लीग स्वयं को अकेला महसूस कर रही थी। इसके पास कोई नया कार्यक्रम भी नहीं था क्योंकि इसकी सभी पुरानी माँगे (जैसे पृथक् निर्वाचन क्षेत्र, प्रान्तीय स्वयत्ता, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा सिन्ध के लिए स्वायत्त प्रान्त, बंगाल तथा पंजाब में मुस्लिम प्रभुत्व) कांग्रेस तथा सरकार दोनों स्वीकार कर चुके थे।
10. 1938 में सुभाष चन्द्र बोस के साथ बातचीत में जिन्ना ने इस बात पर जोर दिया कि कांग्रेस लीग को मुसलमानों के एकल प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करे। यह एक ऐसी माँग थी जो तत्कालीन वातावरण में पूर्णतया अनुचित थी। धीरे-धीरे जिन्ना के दिमाग में यह विचार घर करता जा रहा था कि भारत में बहुमत के शासन का अर्थ होगा कांग्रेस का शासन तथा कांग्रेस के शासन का अर्थ होगा हिन्दू शासन। अतः मुसलमानों के लिए अलग राज्य का विचार जिसका 1930 के बाद इकबाल तथा रहमत अली प्रचार कर रहे थे जिन्ना को भी रास आने लगा।
11. संक्षेप में, 1937 के बाद साम्प्रदायिकता ने विकराल रूप धारण करना आरम्भ कर दिया। सिद्धांत यह था कि भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने-अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हितों के बावजूद वे एक राष्ट्र बनकर रह सकते हैं और यह उद्देश्य एक ही देश में पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों, सामुदायिक अधिकरों, आरक्षण आदि द्वारा सम्भव हो सकता है। अब एक ही राष्ट्र के अन्दर इकट्ठे रहने का विचार परस्पर समुदायों से घृणा, डर, शत्रुता तथा पृथक्कतावाद में परिवर्तित होने लगा। हिन्दुओं और मुसलमानों के हित परस्पर विरोधी तथा स्थायी रूप से विवादास्पद घोषित कर दिये गये। ऐसे वातावरण में पाकिस्तान के विचार को मूर्त रूप देना अनिवार्य लगने लगा क्योंकि साम्प्रदायिकता के चरणों में केवल पृथक्कता का चरण ही पूरा होना रह गया था।

पाकिस्तान प्रस्ताव तथा 'द्वि-राष्ट्र' सिद्धान्त (Pakistan Resolution and Two-Nation Theory)

द्वितीय विश्व युद्ध होने के बाद कांग्रेस ने सभी प्रान्तीय विधानसभाओं के मंत्रिमंडलों से त्याग पत्र दे दिया। कांग्रेस की माँग थी कि ब्रिटिश सरकार यह घोषणा करे कि युद्ध के बाद भारत को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाएगी तथा देश का प्रशासन चलाने की प्रभावी शक्ति तुरन्त भारतीयों को हस्तांतरित कर दी जाए। कांग्रेस की इस रणनीति को मात देने के लिए सरकार ने तुरन्त लीग को 'मुसलमानों का एकमात्र प्रवक्ता' की मान्यता दे दी। दूसरे शब्दों में, लीग को किसी भी राजनीतिक समझौते के वीटो करने की शक्ति मिल गई 17 अक्टूबर की सरकारी घोषणा में विभिन्न समुदायों के साथ सलाह मशवरा करने की आवश्यकता पर बल दिया गया जबकि अगस्त, 1940 में यह स्पष्टीकरण दिया गया कि ब्रिटेन किसी भी ऐसी सरकारी व्यवस्था को सत्ता हस्तांतरित नहीं करेगा जिसे भारतीय राष्ट्रीय जीवन का एक बहुत बड़ा एवं शक्तिशाली गुट स्वीकार न करता हो।

परोक्ष रूप से जिन्ना की मूल माँग को स्वीकार कर लिया गया कि लीग भारत के मुसलमानों की एकमात्र प्रवक्ता है तथा किसी भी प्रकार के भावी संवैधानिक परिवर्तनों में उसे वीटो शक्ति का अधिकार मिलना चाहिए।

1. 26 मार्च, 1940 को लाहौर में मुस्लिम लीग का अधिवेशन भारत के मुसलमानों तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण दिन था। इस दिन मुस्लिम लीग ने अपना प्रसिद्ध पाकिस्तान प्रस्ताव (Pakistan Resolution) पारित किया। सिकन्दर हयात द्वारा तैयार किये गये, फजलुल हक द्वारा अधिवेशन में पेश किये गये तथा खलिकउज्मा द्वारा अनुमोदित किये गये इस प्रस्ताव में यह घोषणा की गई की कोई भी संवैधानिक योजना उतनी देर तक मुसलमानों को स्वीकार्य नहीं होगी जब तक उसे इस मूल सिद्धान्त पर आधारित न किया जाए।
2. भौगोलिक दृष्टिकोण से निरन्तर इकाईयों को मिलाकर और भूमि के आवश्यक आदान-प्रदान से ऐसा क्षेत्र निर्मित किया जाए कि उन क्षेत्रों, जहाँ मुस्लिम बहुमत में है जैसे भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र तथा पूर्वी हिस्से, को मिलाकर स्वतंत्र राज्य बना दिया जाए जिसके घटक स्वायत्त तथा सार्वभौम हों।
3. अपने अध्यक्षीय भाषण में जिन्ना ने 'द्वि-राष्ट्र' सिद्धान्त की व्याख्या की। उसने घोषणा की कि ऐसा सोचना गलत है कि मुसलमान एक अल्पसंख्यक समुदाय है, वे कभी भी अल्पसंख्यक नहीं थे। वे शुरू से एक 'राष्ट्र' थे। हिन्दुत्व तथा इस्लाम दो सामान्य धर्म नहीं बल्कि भिन्न और विशिष्ट सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं तथा ऐसी आशा करना बेकार है कि भारत एक सांझी राष्ट्रीयता का विकास करने में सफल हो जाएगा। हिन्दू तथा मुसलमान दो भिन्न धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति रिवाज, साहित्य एवं संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं। वे न तो आपस में शादी ब्याह करते हैं, न मिलकर खाते-पीते हैं। वस्तुत: ये दो सर्वथा भिन्न तथा परस्पर विरोधी विचारों एवं धारणाओं वाली सभ्यताओं से सम्बन्धित है। यह भी स्पष्ट है कि हिन्दू तथा मुसलमान इतिहास के विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा लेते हैं। इनके महाकाव्य, नायक, किस्से-कहानियाँ अलग-अलग हैं। कई कहानियों में एक के नायक दूसरे के खलनायक हैं और एक की हार दूसरे की जीत है। अत: ऐसी दो राष्ट्रीयताओं (जिसमें एक संख्यात्मक दृष्टिकोण से बहुमत में होगा तथा दूसरा अल्पमत में) को एक राज्य में जबरदस्ती बाँध देने का अर्थ होगा निरन्तर असन्तोष को बढ़ावा देना तथा सामाजिक ढाँचे का सर्वनाश।
4. जिन्ना के लिए अब समस्या साम्प्रदायिक न होकर अन्तर्राष्ट्रीय थी। इसका एकमात्र हल था भारत को स्वायत्त राष्ट्र राज्यों में विभाजित करके प्रमुख राष्ट्रीयताओं को अपना अलग-अलग राज्य बनाने की आज्ञा देना।
5. सिकन्दर हयात ने स्पष्ट कर दिया कि यदि पाकिस्तान का अर्थ है 'इस तरफ मुस्लिम राज तथा उस तरफ हिन्दू राज' तो उसे इससे कुछ नहीं लेना देना। जहाँ तक सिंध का सवाल था, 1937 के चुनावों में लीग का कोई भी नेता वहाँ से विजयी नहीं हुआ था। सिंध के मुख्यमंत्री ने जिन्ना के द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को नहीं माना। उसका मानना था कि 'कोई एक अलग-थलग क्षेत्र अथवा प्रदेश नहीं बल्कि सारा भारत मुसलमानों का घर है और किसी हिन्दू, मुसलमान अथवा किसी और को इन्हें इस घर से निकालने का कोई अधिकार नहीं था। इसी तरह उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में भी अधिकतर मुसलमानों का लीग से कोई वास्ता नहीं था। बंगाल में हालांकि फजलुल हक सार्वजनिक तौर पर पाकिस्तान के विचार से सम्बद्ध था, फिर भी उसने दिल से इसे स्वीकार नहीं किया था।
6. प्रान्तों के अतिरिक्त कई मुस्लिम संगठन (जैसे अहरार, जमाते उल्लेमा, शिया पोलिटिकल कान्फ्रेंस आदि) भी पाकिस्तान के विचार के विरुद्ध थे। यहाँ तक कि जिन्ना के लिए भी यह सौदेबाजी का यन्त्र (Bargain counter) के रूप में शुरू हुआ। गाँधी ने देश के विभाजन को जीवच्छेन (Vivisection) का नाम दिया।
7. परन्तु जैसे-जैसे समय गुजरता गया, परिस्थितियों में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ। 1943 तक आते-आते पाकिस्तान प्रत्येक मुसलमान के लिए जिन्दगी और मौत का प्रश्न बन चुका था। इस आकस्मात परिवर्तन के कई कारण थे। पहला,

उच्चवर्गीय मुसलमानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन। महत्वाकांक्षी मुस्लिम राजनेताओं को विधायकों तथा प्रशासकों के रूप में शक्ति के अवसरों का व्यापक विस्तार दिखा। दूसरा नागरिक तथा सैनिक दोनों विभागों के निचले स्तर के कर्मचारियों को जल्दी तरक्की के आसार दिखाई दिये। तीसरे, व्यवसायी वर्ग जैसे डॉक्टर, वकील, अध्यापक, उद्योगपति आदि को भी अपनी गतिवधियों के प्रसार के नये आयाम दिखे। ये वर्ग हिन्दू प्रतिद्वन्दता को समाप्त करने के लिए आतुर थे। पंजाब और बंगाल के किसानों के सामने पाकिस्तान को हिन्दू जमींदार तथा बनिये के शोषण के अन्त के रूप में पेश किया गया।

8. जिन्ना के नेतृत्व के लीग को मजबूत करने में ब्रिटिश सरकार ने जानबूझकर सहायता की। इसने यह आश्वासन दिया कि किसी भी संवैधानिक अथवा प्रशासनिक प्रस्ताव पर लीग की सहायता के बिना न तो विचार किया जाएगा और न ही लागू किया जाएगा। यहाँ तक कि वॉयसराय की कौंसिल में भी किसी मुस्लिम सदस्य की नियुक्ति लीग की सहमति के बिना नहीं की जाएगी। ऐसे कदमों से ब्रिटिश सरकार युद्ध के दौरान कांग्रेस की स्वतंत्रता की माँग को विफल करने, मुसलमानों को चुप कराने तथा अन्ततः युद्धोपरान्त अपने साम्राज्यवादी हितों को सुरक्षित रखने में कामयाब रही।
9. आम जनता जिन्ना की दिवानी थी, शिक्षित वर्ग विशेषकर विद्यार्थी वर्ग उसकी पूजा करता था, सम्पत्तिशाली वर्ग उसका समर्थन करता था तथा सत्ता के पदाधिकारी उससे डरते थे। इसके अलावा हालाँकि क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को लीग तथा कांग्रेस दोनों ने अस्वीकार कर दिया था। फिर भी मिशन ने जिन्ना के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि कोई भी प्रान्त जो नये संविधान को स्वीकार नहीं करता उसे अपना संविधान खुद बनाने का अधिकार होगा। मिशन ने मुसलमानों पर जिन्ना के प्रभाव को बढ़ाने तथा सरकार की नजरों में इसे कांग्रेस के प्रतिभार के रूप में पेश करने में सहायता की।

प्र.3. देशी रियासतों के स्वतंत्र भारतीय संघ में विलय के कारणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

Discuss the reasons for the merger of native states in Independent Indian Federation in detail.

उत्तर

देशी रियासतों के विलय के कारण
(Reasons for the Merger of Native States)

देशी रियासतों के स्वतंत्र भारतीय संघ में विलय के कारण क्या थे? यह प्रश्न उठना एक स्वाभाविक बात है। अधिकांश देशी रियासतें प्राचीन काल से चली आ रही थीं। उनके वंशानुगत शासकों को वैधता प्राप्त थी। जनता में उनका बहुत आदर था। उन्हें जनता ईश्वर के अवतार के रूप में मानती थी। भारत में प्राचीन काल से अंग्रेजों के आगमन तक अनेक केन्द्रीय सत्ताएँ रहीं, जिन्होंने पुराने राज्यों को समाप्त न कर उन्हें अपना अधीनस्थ राज्य बनाया। केन्द्रीय शक्तियों ने न तो इन पर कोई दया की एवं न ही इनकी वंशानुगत राजनीतिक वैधता को मान्यता प्रदान की, बल्कि अपने राजनीतिक लाभ को ध्यान में रखते हुए इनका अस्तित्व स्वीकार किया। अब स्वाभाविक तौर पर यह प्रश्न उठता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् इनका विलय अथवा भारतीय संघ में एकीकरण क्यों आवश्यक हो गया? इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत दिया जा सकता है।

1. **प्रादेशिक अखण्डता में बाधक**—देशी रियासतें सम्पूर्ण भारत में फैली हुई थी। इनका बने रहना भारत की प्रादेशिक अखण्डता के हित में नहीं था। यदि अंग्रेजी काल की व्यवस्था को देखें तो यह पाते हैं कि एक साथ दो भारत निवास करते थे। प्रादेशिक एकता और अखण्डता स्थापित करना अंग्रेजों का ध्येय नहीं था। भारत को आजादी एक लम्बे संघर्ष के बाद मिली थी, जो राष्ट्रवाद व राष्ट्रीयता के विकास का परिणाम था। अतः राष्ट्रवादियों का उद्देश्य भारत की भौगोलिक एकता स्थापित करना था। यह तभी संभव था जब देशी रियासतों के अस्तित्व को समाप्त कर स्वतंत्र भारत के सम्पूर्ण प्रदेशों पर एक लोकतांत्रिक सर्वोच्च सत्ता स्थापित हो।
2. **रियासती शासकों की संदिग्ध राष्ट्रीयता**—रियासतों के शासक सदियों से केन्द्रीय सत्ता के मातहत चले आए थे, किन्तु सैंकड़ों वर्षों तक ब्रिटिश दासता के अंतर्गत इन शासकों की राष्ट्रीयता संदिग्ध बन गयी थी। जब ब्रिटिश भारत में राष्ट्रव्यापी आंदोलन पनप रहा था तो इन शासकों ने अपने राज्यों में राष्ट्रवाद के उदय को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया। अतः प्रारम्भ से ही राष्ट्रवाद के विरोधी शासकों की स्वतंत्र भारत के प्रति राष्ट्र भक्ति पर सहसा भरोसा नहीं किया जा सकता था। राष्ट्रीय भावना के विकास के प्रति इनका रुख नकारात्मक रहा। वे ब्रिटिश हुकूमत के पक्के हिमायती थे। 1921 में देशी रियासतों के शासकों ने अंग्रेजों के दबाव एवं परामर्श से नरेन्द्र मण्डल (इंडियन चैम्बर ऑफ प्रिंसेज) की स्थापना की थी। यह संगठन तभी पैदा हुआ था, जब राष्ट्रीय आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तावित भारतीय संघ (फेडरल स्कीम) के गठन को देशी रियासतों के शासकों ने अस्वीकार कर

TOUCH 'n' PASS

दिया था। प्रजातांत्रिक आधारों पर गठित होने वाला भारतीय संघ रजवाड़ों को एकदम स्वीकार्य नहीं था, जबकि राष्ट्रवादी नेतृत्व भारतीय संघ के गठन का कट्टर समर्थक था। अत: स्वतंत्र भारत के प्रति इन रजवाड़ों की राष्ट्रीयता संदिग्ध थी, इसलिए इनका विलय आजादी के तुरंत बाद आवश्यक हो गया था।

3. **देशी रियासतों की निरंकुशता**—राजतंत्रात्मक शासन पद्धति अपने आप में निरंकुश होती है, किन्तु राज्य और समाज के मध्य एक अलिखित समझौता व संतुलन होता है, जिसमें निरंकुशता एक सीमा तक संस्था का रूप धारण कर लेती है। अर्थात् जनता की ओर से निरंकुशता को मान्यता दी जा सकती है, किन्तु अंग्रेजी सर्वोच्च सत्ता के अधीन रहकर देशी रियासतें अपनी प्रजा के स्थान पर अंग्रेजों के प्रति जिम्मेदार हो गयी थीं। प्रसिद्ध इतिहासकार रजनी पाम दत्त ने लिखा है कि 'असल में इनको (देशी रियासतों) राज्य के नाम से पुकारना बेमानी बात है। ये पुराने राज्यों के प्रेत हैं, जिन्हें अंग्रेजी राज्य के अपने फायदे के लिए पाल रखा है। इन्हें इस बात से छूट दे दी गई है कि वे अपनी प्रजा पर मनमाना अत्याचार करें। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उत्पन्न राष्ट्रवादी मूल्यों जैसे लोकतंत्र, अहिंसा, सामाजिक समानता, नागरिक अधिकार इत्यादि का मेल निरंकुश राजतंत्रतात्मक शासकों के साथ संभव नहीं था। अत: इन राज्यों का विलय एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गई थीं।
4. **रजवाड़ों की फिजूलखर्ची**—जनता की गाढ़ी कमाई से प्राप्त राजस्व का अधिकांश हिस्सा रजवाड़ों की फिजूलखर्ची एवं ऐशों आराम में खर्च कर दिया जाता था। दरबारों की अप्रासंगिक शान-शौकत पर व्यर्थ धन व्यय होता था। 1926 में कोचीन में देशी रियासतों के संबंध में भाषण देते हुए श्रीनिवास शास्त्री ने कहा था, 'अधिकतर देशी नरेश अपने महलों में नहीं मिलेंगे। वे ऐसी जगह मिलेंगे जहाँ गरीब प्रजा के धन से अययाशी खरीदी जा सके। आप लंदन जाएँ या पेरिस अथवा किसी भी अन्य फैशनेबल शहर में, तो आपको कोई-न-कोई भारतीय राजा या अन्य रईस यूरोप के लोगों की आँखों को अपनी शान-शौकत से चौंधियाता एवं अपने समीप आने वाले लोगों को गिरावट के मार्ग पर घसीटता हुआ मिलेगा।' यदि ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों की भू-राजस्व दरों का तुलनात्मक विवरण तैयार किया जाए तो पाएँगे कि रियासतों में भू-राजस्व की दरें 5 से 10 गुनी थीं। यहाँ राजस्व वसूली के कोई विकसित नियम नहीं थे। मनमाना वसूल किए गए राजस्व को राजा और सामंत अंग्रेजों को खुश रखने अथवा अपनी फिजूलखर्ची में बरबाद कर देते थे। प्रसिद्ध विचारक कॉर्ल मार्क्स ने भारत की रियासतों के संबंध में 1853 में लिखा कि 'जिस समय कम्पनी स्वयं देशी रियासतों की संरक्षक बनी, उस समय ही उनका अस्तित्व लुप्त हो गया। जिस हालत में उनकी स्वतंत्रता सत्ता का दिखावा किया जाता है, वह बिल्कुल पतन की हालत है। इस स्थिति के रहते हुए सुधार की कोई भी गुंजाइश नहीं है। इनकी जिंदगी दूसरों की मर्जी के भरोसे है। इस तरह के राज्य कभी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते। इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि देशी रियासतों को बना रहने दिया जाए या नहीं बल्कि प्रश्न यह है कि देशी राजाओं और उनके दरबारों को कायम रखा जाए या नहीं।' स्वतंत्र भारत में फिजूलखर्ची वाले अप्रासंगिक देशी रियासतों का कोई स्थान नहीं रह गया था, इसलिए इनका विलय एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गयी थी।
5. **रियासतों का पिछड़ापन**—ब्रिटिश भारतीय भू-भागों के तुलना में रियासतों में भारी सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन व्याप्त था। यदि स्वतंत्रता के पश्चात् भी इन रियासतों को बनाये रखा जाता तो भारत में भारी क्षेत्रीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता। अत: इन रियासतों के निवासी इन राज्यों की उपस्थिति को अपनी सामाजिक व आर्थिक प्रगति में बाधक मानने लगे थे। इनमें उद्योगों का पूर्ण अभाव था एवं कृषि भारी पिछड़ेपन की स्थिति में थी। कृषि के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण यहाँ के किसानों को भू-स्वामित्व के अधिकार प्राप्त न होना था। साथ ही भू-राजस्व के भारी दबाव के कारण किसानों का गाढ़ा शोषण प्रचलित था। राजस्व के नाम पर कृषि के अधिशेष का उपहरण राजा और सामन्तों के द्वारा कर लिया जाता था। शिक्षा और स्वास्थ्य की राज्य की ओर से उचित व्यवस्था नहीं थी। इस संदर्भ में नेहरू जी का कथन काफी सटीक था, जो उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है, 'वहाँ का वातावरण दम घोटने वाला है और उसमें सांस लेना मुश्किल हो जाता है। स्थिर और मंद जल प्रवाह के नीचे जुड़ता और गंदगी भरी पड़ी है। वहाँ पर आदमी ऐसा महसूस करने लगता है, मानों वह चारों ओर कांटों की बाढ़ से घिरा हुआ है और उसका शरीर व मन जकड़ दिया गया है, उसे वहाँ के राजमहल की चमक-दमक और शान-शौकत के सर्वथा विपरीत जनता अत्यंत पिछड़ी हुई और कष्टपूर्ण अवस्था में दिखाई देती है। राज्य का कितना सारा धन उस महल के राजा की अपनी व्यक्तिगत जरूरतों और अय्याशी में पानी की तरह बहाया जाता है। इन रियासतों पर रहस्य का एक पर्दा पड़ता रहता है। अखबारों को वहाँ पनपने नहीं दिया जाता है। ट्रावनकोर, कोचीन आदि दक्षिण की कुछ रियासतों को छोड़कर जहाँ साक्षरता ब्रिटिश भारत से भी कहीं ज्यादा है, दूसरी जगह साक्षरता बहुत ही कम है। रियासतों से जो खास खबरे आती हैं, वे या तो वॉयसराय के दौरे के बारे में होती है, जिनमें

TOUCH 'n PASS

धूम-धड़ाके, रस्म-रिवाज की पूर्ति और एक दूसरे की तारीफ में दिए गए व्याख्यानों का जिक्र होता है या अत्यधिक खर्च से किए गए राजा के विवाह अथवा वर्षगांठ समारोह की या किसानों के विद्रोह संबंधी। ब्रिटिश भारत के खास कानून राज्यों को आलोचनाओं से बचाते हैं रियासतों के भीतर तो नरम से नरम टीका टिप्पणी भी सख्ती से दबा दी जाती है। सार्वजनिक सभाओं को तो वहाँ कोई जानता तक नहीं और अक्सर सामाजिक बातों के लिए किये जाने वाली सभाएँ भी रोक दी जाती है।' इन परिस्थितियों में रियासतों के अंदर और बाहर इनके विरुद्ध वातावरण बन चुका था। इनके विलीनीकरण के बिना जन आकांक्षाएँ पूरी नहीं हो सकती थी।

6. **रियासतों में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अभाव**—निरंकुश राजतंत्रात्मक शासन पद्धति के अंतर्गत भारत की देशी रियासतों में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का जन्म नहीं हो सका। इससे यहाँ भारी राजनीतिक पिछड़ापन व्याप्त था। प्रशासन के सभी स्तरों पर जन प्रतिनिधित्व को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। कार्यपालिका व न्यायपालिका जैसी संस्थाएँ विकसित अवस्था में नहीं। राजा और सामान्तों को न्यायिक अधिकार प्राप्त थे और वे अपनी इच्छानुसार न्याय के साथ खिलवाड़ करते थे। कुल मिलाकर शासन में जनता की भागीदारी नगण्य थी। इस प्रकार रियासतों का शासन जनभावनाओं के अनुकूल नहीं था। वहाँ के निवासियों को किसी भी प्रकार के नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व का राजनीतिक परिदृश्य तीव्रता से बदल रहा था। प्रजातांत्रिक आंदोलन युगधर्म बन गये थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एवं पश्चात् विश्व के अधिकांश देशों में प्रजातांत्रिक व्यवस्थाएँ कायम हो चुकी थीं। यदि इन संदर्भों में भारत की देशी रियासतों की स्थिति का अवलोकन करें तो पाते हैं कि यहाँ प्रजातंत्र का कोई स्थान ही नहीं था। बढ़ती हुई जनचेतना व जनता की प्रजातांत्रिक महत्वाकांक्षा के समक्ष इन रियासतों का टिकना संभव नहीं रह गया था।
7. **रियासतों के जन आंदोलन**—जैसा के पूर्व के बिन्दुओं में बताया गया है कि रियासती जनता को किसी प्रकार के नागरिक व प्रजातांत्रिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इसके उपरान्त भी देशी रियासतों व जागीरों में स्वस्फूर्त किसान और आदिवासी विद्रोहों के रूप में जन आंदोलन की शुरुआत हुई। 1922 के पश्चात् असहयोग आंदोलन के बाद 1931 के दौरान ब्रिटिश भारत में कोई विशेष जन-आंदोलन नहीं हुआ, किन्तु कांग्रेस के असहयोग आंदोलन से प्रेरित देशी रियासतों में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद विरोधी जन आंदोलन शक्तिशाली रूप में उभरे थे। इस दौरान भारत की कोई रियासत शेष नहीं बची थी, जहाँ जन-आंदोलन नहीं हुए हों। 1927 में अखिल भारतीय प्रजापरिषद की स्थापना ने एक अखिल भारतीय संयोजक संगठन को जन्म दिया, जिसके नेतृत्व में जन आंदोलन, देशी रियासतों के शासकों के विरुद्ध निर्बाध रूप से आगे बढ़े। इस संस्था ने देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के आंदोलन के मध्य एकता स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।
8. देशी रियासतों के जन संघर्ष, सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान और तीव्र होकर कांग्रेस आंदोलन का हिस्सा बन गए थे। 1929 के लाहौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर कांग्रेस ने राजाओं से अनुरोध किया था कि वे अपनी प्रजा को आवागमन, भाषण, सम्मेलन आदि तथा व्यक्ति और सम्पत्ति के नागरिक अधिकार प्रदान करने में देर न करें। गाँधीजी ने रियासतों के शासकों को इंगित करते हुए कहा, 'मैं चाहता हूँ कि देशी राज्य अपनी प्रजा को स्वाधीन शासन का अधिकार दे दें। मेरी यह भी इच्छा है, कि राजा लोग न केवल अपने को अपनी प्रजा के ट्रस्टी समझें, बल्कि ट्रस्टी बन जाएँ और राजकोष से अपने निर्वाह के लिए थोड़ी सी निश्चित राशि लिया करें। कांग्रेस सदा देशी राज्यों को मित्रभाव से देखती रही है और उनके आंतरिक मामलों में दखल नहीं देती रही है, आशा रखनी चाहिए कि देशी राज्य उनके विश्वास को ठेस नहीं पहुँचाएँगे।' लाहौर अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में रियासतों के संदर्भ में कहा कि 'भारतीय रियासतें शेष भारत से कटकर नहीं रह सकतीं। इन रियासतों का भविष्य निर्धारित करने का अधिकार इन रियासतों के अधिकारियों को ही है।' 1936 में अखिल भारतीय देशीराज प्रजा परिषद् के पाँचवें वार्षिक-अधिवेशन का कराँची में उद्घाटन करते हुए उन्होंने देशी रियासतों के कार्यकर्ताओं को अपना आंदोलन तीव्र करने की सलाह दी। कांग्रेस द्वारा आत्मनिर्धारित सीमाओं को तोड़ते हुए नेहरू ने स्पष्ट घोषणा की कि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष में व्यक्त थी, जिसका फल निकट भविष्य में मिलने वाला है। ऐसी स्थिति में राजा लोग राज्य की प्रजा के जनप्रतिनिधित्व व उत्तरदायी शासन की माँग का मुकाबला नहीं कर पाएँगे।'
9. 1938 में रियासतों के जन आंदोलन का नया दौर आरंभ हुआ। इस वर्ष कांग्रेस ने देशी रियासतों के जन-आंदोलन को अपने आंदोलन का अभिन्न अंग मान लिया। 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया था कि, 'कांग्रेस की राय में देशी राज्यों में वही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वाधीनता होनी चाहिए जो बाकी भारत में होगी। कांग्रेस का मत है कि देशी रियासत भारत की अभिन्न अंग हैं एवं उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य चाहती है और उसे सम्पूर्ण भारत के लिए चाहती है जिसमें देशी रियासतें भी शामिल हैं। इसलिए कांग्रेस चाहती है

कि रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित हो और प्रजा के नागरिक अधिकार सुरक्षित रहे।' 1938 में एवं इसके पश्चात् देशी रियासतों में स्थापित प्रजामण्डलों को अपनी मान्यता के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा जिससे देशी रियासतों के जन आंदोलन में और परिपक्वता आई।

10. 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में प्रजामण्डलों की उग्र भूमिका ने उपनिवेशवाद एवं निरंकुश राजतंत्रात्मक सामंतवाद को खुली चुनौती दी। इसके पश्चात् देशी रियासतों में सांकेतिक व आंशिक रूप से राजनैतिक सुधारों की प्रक्रिया आरंभ हुई, जो जन-आंदोलन की भारी विजय थी। जनवरी, 1946 में अखिल भारतीय राज्य प्रजा परिषद् के अधिवेश में सभापति पद से कहा, 'यह आवश्यक है कि आर्थिक दृष्टि से जो रियासतें जीवन क्षमता नहीं रखती वे पड़ोसी इलाकों में मिला दी जाएँ। इस तरह की रियासतों के राजाओं को पेंशन दी जा सकती है और वे अगर कोई दूसरा काम करने के काबिल हों, तो उसे करने के लिए उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।' इसके पश्चात् रियासती आंदोलन और तीव्र हो गये। ये इतने शक्तिशाली थे कि इनके समक्ष राजा-महाराजा उत्साहहीन हो गए थे। अत: देशी रियासतों के भारत में विलय के अलावा कोई रास्ता शेष नहीं बचा था।
11. **अंग्रेजों की दोहरी नीति**—अंग्रेजों ने भारत को आजादी स्वेच्छा से प्रदान नहीं की। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के दबाव एवं भारत के स्वतंत्रता आंदोलन से मजबूर होकर भारतीय उपनिवेश का परित्याग किया था। अपनी प्रसिद्ध 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पालन करते हुए देशी रियासतों के शासकों को राष्ट्रीय व स्वतंत्रता आंदोलन के विरोधियों के रूप में खड़ा कर दिया था। अत: स्वतंत्रता आंदोलन व रजवाड़ों के मध्य शत्रुतापूर्ण अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया। ऐसी स्थिति में चाहे क्रांतिकारी तरीके से एक झटके में अथवा सुधारवादी तरीकों से किस्तों में, इन रियासतों का अस्तित्व मिटाया जाना स्वतंत्रता आंदोलन का कार्यक्रम बन गया था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अंतर्गत देशी रियासतों को दो ही विकल्प दिए गए थे, या तो वे पाकिस्तान में सम्मिलित हों अथवा भारत में कुछ बड़े व महत्वाकांक्षी राज्य यह सपना देखने लगे कि वे स्वतंत्र रहकर भारत और पाकिस्तान के साथ कूटनीतिक संबंध रखेंगे। इसके साथ-साथ ब्रिटिश सत्ता के साथ पूर्ण संबंध कायम रहेंगे। किन्तु अंग्रेजी नीति इसके विपरीत थी। इसके अनुसार ब्रिटिश सत्ता ने देशी रियासतों पर स्थापित अपनी पैरामाउन्टसी (सर्वोच्च सत्ता) की समाप्ति का निर्णय लिया, जिससे देशी रियासतों के साथ पहले जैसे संबंध जारी रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। एटली (ब्रिटिश प्रधानमंत्री) ने भारतीय स्वतंत्रता विधेयक में स्पष्ट रूप से खुली घोषणा कर दी थी कि सभी संधियाँ समझौते, जो महामहिम (ब्रिटिश ताज) की सरकार तथा भारतीय रियासतों के शासकों के बीच हैं, वे समाप्त हो जाएँगे। अब अंग्रेज इन रियासतों का भार अपने ऊपर रखने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इनको ढोना उनके लिए घाटे का सौदा चला आ रहा था अर्थात् इन्हें प्राणवायु भारत में अंग्रेजी सत्ता से प्राप्त हो रही थी, जिसके समाप्त होते ही इनका जीवित रहना संभव ही नहीं था। वास्तव में ये रियासतें निष्प्राण हो चुकी थीं। इनके साथ-साथ इनकी जनता भी पिस रही थी। अत: इनका विलीनीकरण अंग्रेजी नीति की स्वाभाविक परिणति थी।
12. **देशी रियासतों का क्षीण मनोबल**—राष्ट्रीय आंदोलन की निरंतर बढ़ती रही लोकप्रियता एवं स्वतंत्रता आंदोलन को मिल रही सफलता से रजवाड़ों का मनोबल क्षीण हो गया था। वे जन संघर्ष के समक्ष घुटने टेकने पर मजबूर हो गए थे। वास्तव में अंग्रेजों के साथ लम्बे सहयोग ने उन्हें परजीवी बना दिया था। वे स्वतंत्र रूप से जीवित रहने की स्थिति में ही नहीं रह गए थे। उनकी वंशानुगत राजनीतिक वैधता तो सुरक्षित थी, किन्तु उनमें राजनीतिक व प्रशासनिक क्षमताओं का पूरी तरह अभाव पैदा हो गया था। अत: स्वतंत्र रूप में उनका अस्तित्वमान होना इनकी प्रकृति में ही निहित नहीं रह गया था। इस प्रकार रजवाड़ों का मनोबल टूटने लगा था। अंग्रेजों द्वारा स्वतंत्र छोड़ने का मतलब इनका अनाथों की स्थिति में आना स्वाभाविक था। जब सरदार पटेल ने रजवाड़ों के समक्ष भारत में विलय का प्रस्ताव रखा तो बिना किसी उल्लेखनीय प्रतिरोध के अधिकांश रियासतों ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। 15 अगस्त, 1947 तक केवल जूनागढ़, जम्मू-कश्मीर एवं हैदराबाद को छोड़कर सभी देशी रियासतों ने विलय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।
13. **सरदार वल्लभभाई पटेल की दृढ़ता**—देशी रियासतों के विलय के मामले में कांग्रेस एकमत थी। 26 जून, 1947 को सरदार पटेल ने गृह मंत्रालय के साथ-साथ नवगठित रियासत विभाग का अतिरिक्त भार संभाल लिया। इस विभाग के सचिव वी०पी० मेनन को बनाया गया। सरदार पटेल रियासतों को विलय के निर्णय पर दृढ़ थे। रियासतों की राजनीतिक दुराग्रहता से उत्पन्न भारतीय एकता के खतरे के प्रति पटेल पूरी तरह जागरूक थे। उन्होंने अपने सचिव मेनन को आगाह करते हुए कहा कि 'इस परिस्थिति में खतरनाक संभावनाएँ भी छुपी हुई हैं और यदि इन्हें शीघ्र ही प्रभावी तरीके से संभाला नहीं गया तो कठिनाई से अर्जित हमारी आजादी इन रजवाड़ों के दरवाजों से निकलकर गायब हो सकती है।' अत: पटेल रजवाड़ों को कोई समय नहीं देना चाहते थे जिससे रियासतें देश की एकता में राजनीतिक बाधाएँ उत्पन्न करें। तुरंत प्रभाव

से इन रियासतों के समक्ष इनके विलय का प्रस्ताव रखा गया। पटेल ने उन राजाओं से, जिनके क्षेत्र भारत के अंदर पड़ते थे, अपील की कि वे तीन विषयों क्रमश: विदेश संबंध, सेना और संचार जिनसे पूरे देश के हित जुड़े हुए हैं, पर भारतीय संघ में विलय की स्वीकृति प्रदान कर दें। साथ ही उन्होंने दबे तौर पर यह धमकी भी इन रियासतों को दे दी थी कि वे रियासतों में बेकाबू हो रही जनता को नियंत्रित करने में समर्थ नहीं हो पाएँगे तथा 15 अगस्त के बाद सरकार की विलय की शर्तें और कठोर हो जाएँगी। अत: पटेल की दृढ़ता को भांपते हुए रियासतों ने भारत में विलय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

प्र.4. देशी रियासतों के विलय पर विस्तृत विवरण दीजिए।

Give a detailed description of the merger of the native states.

उत्तर

देशी रियासतों का विलय
(Merger of Native States)

देशी रियासतों के विलय को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. सरदार पटेल ने देशी रियासतों को भय दिखाकर अथवा लालच देकर उनके भारतीय संघ में विलय का मार्ग प्रशस्त किया। पटेल ने बड़े ही कूटनीतिक तरीकों से राजाओं की भावनाओं को जागृत करते हुए उनके सामूहिक हितों तथा देश की एकता व अखण्डता के लिए उनसे भारतीय संघ में विलीनीकरण हेतु अपील की। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि रियासतों के स्वयं के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए उनका भारतीय संघ में मिल जाना आवश्यक है। अत: पटेल ने देशी रियासतों से अपील में कहा कि वे तीन विषयों जैसे विदेशी संबंध, सेना और संचार व यातायात जिनसे सम्पूर्ण देश के हित जुड़े हैं, के संबंध में भारतीय संघ को स्वीकृति प्रदान करें। इसी क्रम में पटेल ने यह भी स्पष्ट किया कि यदि देशी रियासतें विलय के इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं करती हैं तो वहाँ अनियंत्रित हो रहे जनाक्रोश को दबाने में कोई मद्द नहीं की जा सकेगी। यदि ये रियासतें विलय का प्रस्ताव स्वीकार करने में विलम्ब करेंगी तो 15 अगस्त के पश्चात् विलय की शर्तें और भी कठोर हो जाएँगी। अत: 15 अगस्त, 1947 जिसे भारत की आजादी के दिवस के रूप में निश्चित किया गया था, उसके पूर्व जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर रियासतों को छोड़कर भारतीय भू-भागों में आने वाली सभी रियासतों ने विलय का प्रस्ताव का स्वीकार कर लिया।
2. पटेल के इस कार्य में उनके सचिव वी०पी० मेनन की सक्रिय भूमिका रही। भारत के नरेन्द्र मण्डल (चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज) के तत्कालीन अध्यक्ष महाराजा पटियाला से भी इस कार्य में पूरा सहयोग प्राप्त रहा। तत्कालीन भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्ट बेटन का सहयोग तो रहा, किन्तु उसकी भूमिका संदिग्ध ही रही। वह रजवाड़ों का हितैषी बनकर राजघरानों के आर्थिक हितों को सुरक्षित करवाने में सफल रहा। वह जून, 1948 तक भारत का गवर्नर जनरल रहा। उसकी उपस्थिति में अभी भी रियासतों के भारतीय संघ में पूर्ण विलय में बाधक बनी हुई थी। विलय पर सहमति देने के पश्चात् भी रियासतों के शासकों का सत्ता के प्रति मोह समाप्त नहीं हो रहा था। वे येन-केन प्रकारेण अपनी सत्ता को सुरक्षित करना चाहते थे। अत: इनके विलय की मंजिल आसान नहीं थी। देशी रियासतों को भारतीय संघ में विलय हेतु दो समझौता दस्तावेज तैयार किए गए। इनमें एक था 'इन्स्ट्रूमेन्ट ऑफ एक्सेशन' और दूसरा था 'स्टेंडस्टिल एग्रीमेन्ट' प्रथम दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर कोई भी रियासत भारतीय संघ में इस शर्त पर शामिल हो सकती थी कि वे विदेशी मामले, प्रतिरक्षा और यातायात व संचार के दायित्व संघ को सौंप देंगी। दूसरे दस्तावेज के अनुसार स्वतंत्रता से पूर्व जो अंग्रेजी साम्राज्य की केन्द्रीय स्थिति अर्थात् भारत में अंग्रेजी सरकार की जो स्थिति थी उसके स्थान पर आजादी के पश्चात् भारत की संघीय व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार की स्थिति को मान्यता प्रदान करना सम्मिलित था। इसके अनुसार देशी रियासतों पर कायम ब्रिटिश प्रभुसत्ता (ब्रिटिश पैरामाउन्टेसी) स्वतंत्र भारत की सरकार के हाथों में स्थानान्तरित होना तय था।
3. सैद्धांतिक स्तर पर देशी रियासतों के विलय का निर्णय उक्त दस्तावेजों के द्वारा हो चुका था, किन्तु इसे व्यावहारिक व मूर्त रूप प्रदान करने का कार्य शेष था। यह प्रक्रिया 1947-1949 के काल में पूर्ण हो सकी। रियासतों के साथ निर्धारित की गई शर्तों के अन्तर्गत राजा व नरेशों को उनके राज्य की सम्पदा पर विशेष अधिकार प्रदान किए गए। विलय के पूर्व उनके द्वारा किए गए निर्णयों का कोई हिसाब-किताब नहीं किया जाएगा एवं पूर्व में की गई किसी भी अनियमितता व गलत निर्णय के विरुद्ध शासकों पर कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। नरेशों को उनके राज्य के बदले भारी पेंशन देने का प्रावधान रखा गया। इसके अंतर्गत लगभग ₹ 560 करोड़ वार्षिक स्वीकृत किए गए। उदाहरणार्थ हैदराबाद को ₹ 50 लाख सालाना एवं मैसूर को ₹ 26 लाख सालाना पेंशन स्वीकृत की गई। इनके अतिरिक्त हैसियत के अनुसार प्रत्येक शासक को कुछ विशेष अधिकार दिये गये जिनमें नियंत्रित रूप से दरबारों तक के आयोजन की व्यवस्था सम्मिलित थी। नवगठित राज्यों

TOUCH 'n PASS

(प्रांत) जिनमें अधिकांश रियासतों का विलय हुआ था, वहाँ गवर्नर अथवा राजप्रमुख का पद राज्य में सम्मिलित सबसे बड़े शासक को दिए जाने का प्रावधान रखा गया। इन रियासतों में कार्यरत कर्मचारियों व अधिकारियों को उनकी नौकरी व पेंशन के मामले में गारंटी प्रदान की गई। इन राज्यों द्वारा रखी जाने वाली सेना को या तो समाप्त कर दिया गया अथवा उनके उपयुक्त सैनिक व अधिकारियों को भारत की नियमित सेना का अंग बना दिया गया। इन सबके बदले रियासतों के अंतर्गत भू-भाग भारतीय अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित हो गए।

4. देशी रियासतों के भारतीय संघ में विलय के साथ ही क्षेत्रीय व प्रशासनिक सुधारों व परिवर्तन की प्रक्रिया भी चलती रही। यह पटेल की दूरदर्शिता का परिणाम था। वे रियासतों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं छोड़ना चाहते थे, जिससे भारत की आजादी को चुनौती मिलने की संभावना हो। रियासतों को सामन्ती व्यवस्था को कमजोर करने के अनेक उपाय किए गए। जैसे-जैसे देशी रियासतों का विलय हुआ, वैसे ही उनकी भौगोलिक स्थितियाँ परिवर्तित की गई। यथा कुछ राज्यों को मिलाकर एक प्रशासनिक इकाई बना दी गई अथवा रियासतों को अंग्रेजी काल से चले आ रहे प्रांतों में विलय कर दिया गया। इन भू-भागों का भूमि सर्वेक्षण और बंदोबस्त का कार्य भी आरंभ इनके विलय के साथ ही कर दिया गया। यहाँ रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के समान भू-राजस्व प्रणाली लागू कर दी गई। इससे किसान जो सामन्तों के स्वामित्व में कृषि दास अथवा किरायेदार के रूप में कार्यरत थे वे भूमि के मालिक बन गए। भूमिकर की दरों में भी परिवर्तन किए गए। देशी रियासतों के अंतर्गत भू-भागों में राजस्व की दरें घटाई गईं। अत: भारतीय संघ में रियासतों के विलय से वहाँ के निवासियों को लाभ मिला।
5. प्रशासनिक और भू-राजस्व सुधार का सीधा परिणाम इन रियासतों में नवोदित भारतीय राजव्यवस्था का दृढ़ता से स्थापित होना था। इससे सामन्ती व्यवस्था पतनोन्मुख हुई। विलय को साकार रूप प्रदान करने के लिए बीच का समझौतावादी तरीका अपनाया गया था। इसके अंतर्गत राजा व नरेशों को विशेष अधिकार (प्रीवीपर्स) प्रदान किए गए थे। उन्हें भारी भू-सम्पत्तियाँ, महलों और अन्य प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी रहने दिया गया। उन्हें राजप्रमुख इत्यादि के पद भी प्रदान किए गए, किन्तु विलय की सफलता इस बात में थी कि राजतंत्र व सामन्तवाद की व्यवस्था के रूप में मान्यता समाप्त हो गई एवं प्रजातांत्रिक पद्धति की सर्वमान्य स्वीकार्यता बढ़ी।

   विलय की प्रक्रिया में केवल जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद रियासतों के अतिरिक्त सभी ने समयाकूल सहयोग प्रदान किया। शेष तीन रियासतों के विलय में जनशक्ति व सैनिक शक्ति का उपयोग करना पड़ा। इन रियासतों के विलय का वृत्तान्त निम्न प्रकार है—

I. जूनागढ़ रियासत का विलय (Merger of Junagarh)

जूनागढ़ वर्तमान गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में एक छोटी-सी रियासत थी। यह चारों ओर से भारतीय संघ के भू-भागों से घिरी थी एवं इसका पाकिस्तान के साथ कोई भौगोलिक समीपता अथवा जुड़ाव नहीं था। इसके बावजूद भी वहाँ का शासक (नवाब) जूनागढ़ के पाकिस्तान में विलय का समर्थन कर रहा था। यहाँ का नवाब तो मुसलमान था, किन्तु बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी। अत: वहाँ की अधिसंख्य जनता भारत में विलय का समर्थन करती थी। इस सबके उपरान्त भी जूनागढ़ के नवाब ने 15 अगस्त, 1947 को अपने राज्य का विलय पाकिस्तान के साथ घोषित कर दिया। नवाब के इस निर्णय से जूनागढ़ रियासत में गंभीर असंतोष व अशांति उत्पन्न हो गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू एवं रियासती मामलों के मंत्री सरदार पटेल जनता के साथ थे। जूनागढ़ में पाकिस्तान विलय के विरुद्ध जन आंदोलन भड़क गया। इस जन आंदोलन के समक्ष जूनागढ़ का नवाब टिक नहीं सका एवं वह भागकर पाकिस्तान चला गया। इसके पश्चात् भी जन आंदोलन समाप्त नहीं हुआ एवं वहाँ बिगड़ते हुए हालातों को देखकर रियासत के दीवान शहनवाज भुट्टो (जुल्फीकार अली भुट्टो के पिता) ने भारत सरकार से हस्तक्षेप की माँग की। इसके पश्चात् भारतीय सेनाएँ राज्य में प्रवेश कर गईं। इस प्रकार जूनागढ़ पर भारतीय नियंत्रण स्थापित हो गया, किन्तु नेहरू एवं पटेल इस पर सेना द्वारा नियंत्रण करने के पक्ष में नहीं थे। अत: जूनागढ़ के विलय हेतु जनमत संग्रह करवाने का निर्णय लिया। फरवरी, 1948 में जनमत संग्रह करवाया गया। जनमत संग्रह व्यापक स्तर पर भारत के पक्ष में गया। अत: जनमत संग्रह के पश्चात् जूनागढ़ विलय भारतीय संघ में हो गया।

II. कश्मीर रियासत का विलय (Merger of Kashmir)

इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. कश्मीर रियासत का शासक हिन्दू था, जबकि यहाँ की लगभग 75% जनसंख्या मुसलमान थी। कश्मीर की सीमाएँ भारत व पाकिस्तान दोनों देशों से मिलती थी। वहाँ का महाराजा हरिसिंह भारत अथवा पाकिस्तान किसी भी देश में कश्मीर के

विलय के पक्ष में नहीं था। वह एक ओर भारतीय स्वतंत्रता से उपजे प्रजातंत्र से भयभीत था तो दूसरी ओर पाकिस्तान के सम्प्रदायवाद से। इस समय कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस का नेतृत्व में उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु जनसंघर्ष जारी था। नेशनल कांफ्रेंस का नेतृत्व शेख अब्दुल्ला कर रहे थे, जो कश्मीर के भारत में विलय के पक्षधर थे, किन्तु इस समय शेख अब्दुल्ला जेल में थे। लॉर्ड माउण्टबेटन जो अभी तक भारत के गवर्नर जनरल थे, ने कश्मीर के शासक को इस बात के लिए राजी करने का प्रयास किया कि वह जनमत संग्रह द्वारा यह तय करे कि उसे भारत में मिलना है अथवा पाकिस्तान में। उनको यह आशा थी कि कश्मीर की अधिकांश जनसंख्या मुसलमान है एवं जनमत संग्रह का परिणाम पाकिस्तान के पक्ष में जाएगा। जम्मू कश्मीर में पृथक्कतावादी आंदोलन अधिक लोकप्रिय नहीं था। वहाँ राष्ट्रवादी एवं जनतांत्रिक आंदोलन नेशनल कांफ्रेंस के हाथों में था, जो पाकिस्तान निर्माण की योजना के विरुद्ध थी।

2. कश्मीर के मसले पर अवरोध उत्पन्न हो गया था, जिसका कारण अंग्रेजों एवं कश्मीर के शासक की अस्पष्ट नीतियों को माना जा सकता है। इसी बीच सितम्बर, 1947 में गाँधी जी कश्मीर पहुँचे वहाँ उन्होंने शेख अब्दुल्ला को जेल से मुक्त करवाकर नेशनल कान्फ्रेंस एवं महाराजा के मध्य एक समझौता करवाने में सफलता प्राप्त की, किन्तु अंग्रेजों व पाकिस्तान की चालों ने इस समझौते को मूर्त रूप प्रदान नहीं करने दिया। कश्मीर को लेकर साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने भारत व पाकिस्तान के मध्य सीधा हथियारबंद संघर्ष आरंभ करवाने के प्रयास किए। 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तानी सैनिक अधिकारियों की सहायता से पठान कबाइलियों ने कश्मीर में घुसपैठ का उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रांत की ओर से आक्रमण कर दिया। पठान कबाइलियों की ओट में पाकिस्तानी नियमित सेना भी सक्रिय होकर सैनिक शक्ति के बल पर कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने की योजना पूरी करना चाहती थी। अत: पठानों और पाकिस्तानी सेनाओं ने तीव्र गति से कश्मीर की राजधानी श्रीनगर की ओर बढ़ना आरंभ कर दिया। महाराजा की सेना इनका मुकाबला नहीं कर सकी और 26 अक्टूबर, 1947 को महाराजा श्रीनगर छोड़कर निकल भागा। इन आक्रमणकारियों से शहर की रक्षा करने के लिए नेशनल कांफ्रेंस की लोकप्रिय जनसेना ने मुकाबला किया। इस समय महाराजा ने कश्मीर के भारत में विलय की शर्त स्वीकार कर ली एवं शेख अब्दुल्ला को रियासत के प्रशासन का मुखिया नियुक्त करने को तैयार हो गया। साथ ही भारत सरकार से सैनिक हस्तक्षेप कर कश्मीर की रक्षा के लिए प्रार्थना की। 27 अक्टूबर, 1947 को लगभग 100 हवाई जहाजों में भरकर सैनिक और हथियार श्रीनगर पहुँचाकर पाकिस्तानी आक्रमण का प्रतिकार आरंभ कर दिया। भारतीय सेना ने आक्रमणकारियों को श्रीनगर से खदेड़ दिया। फिर भी कश्मीर रियासत के कुछ हिस्से आक्रमणकारियों के अधिकार में रह गए। पाकिस्तान द्वारा अधिकृत क्षेत्र में आजाद कश्मीर में सरकार गठित कर ली गई। दोनों गुटों के मध्य सशस्त्र मुठभेड़ निरंतर चलती रही। माउण्टबेटन की सलाह पर 31 दिसम्बर, 1947 को कश्मीर समस्या संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के निर्णय हेतु प्रस्तुत की गई। इसमें यह भी आग्रह किया गया कि पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर के भू-भागों को तुरन्त खाली करवाया जाए।

3. कश्मीर मुद्दे पर भारत पाकिस्तान संघर्ष का जन्म रियासत के विलय के दौरान उत्पन्न हो गया था। जिस समय यह संघर्ष आरंभ हुआ, उस समय दोनों ही देशों के सैनिक जनरल एवं कमांडर अंग्रेज ही थे। सबसे अजूबे की बात तो यह थी कि अक्टूबर, 1947 के अन्त तक दोनों का कमांडर-इन-चीफ ओकिनलेक एक अंग्रेज ही था। कश्मीर मुद्दा संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपा जाना भारत सरकार की बहुत बड़ी भूल थी। संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् पर इंग्लैण्ड एवं अमेरिका का वर्चस्व था एवं दोनों ही देश भारत और पाकिस्तान के मध्य मतभेदों को और भी गहरा करना चाहते थे। अब ये विवाद कश्मीर रियासत के विलय का प्रश्न न रहकर भारत-पाकिस्तान विवाद के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय विवाद बन गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कश्मीर मुद्दे पर गठित आयोग की सिफारिश पर 31 दिसम्बर, 1948 को युद्ध विराम हो गया। 1 जनवरी, 1949 को युद्ध समाप्ति के समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। जो कश्मीर का भाग पाकिस्तान के अधिकार में चला गया, वो उसके अधिकार में ही छोड़ दिया। इस प्रकार कश्मीर रियासत का विलय तो भारत में हो गया किन्तु एक बहुत बड़ा क्षेत्र अभी तक पाकिस्तान के अधिकार में है।

III. हैदराबाद का विलय (Merger of Hyderabad)

हैदराबाद के विलय को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. हैदराबाद की देशी रियासत के विलय को लेकर सबसे अधिक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। हैदराबाद का निजाम एक मुसलमान था एवं उसने अंग्रेजों के समर्थन से अपनी रियासत के भारत में विलय को अस्वीकार कर दिया था। उसने समाचार-पत्रों के माध्यम से यह अभियान चलाया कि हैदराबाद का एक विशिष्ट स्थान है। उसने इसे भारत या पाकिस्तान

में मिलाने के स्थान पर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में सुरक्षित रखना तय किया, जिसके इंग्लैण्ड के साथ सीधे संबंध रखने की योजना थी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैदराबाद के निजाम ने अपनी सेना का विस्तार आरंभ कर दिया। उसके स्वतंत्र राज्य के दर्जे की योजना व दावे को पाकिस्तान का समर्थन भी प्राप्त हो गया। अंग्रेज कूटनीतिक भूमिका निभा रहे थे क्योंकि जिस प्रकार भारत व पाकिस्तान दो स्वतंत्र राज्यों को इंग्लैण्ड से मान्यता मिली थी, उसी प्रकार हैदराबाद को एक स्वतंत्र राज्य का दर्जा प्राप्त नहीं था। जब ब्रिटिश सरकार ने हैदराबाद का इस प्रकार का दर्जा देने से इंकार कर दिया तो यह स्पष्ट था कि अंग्रेज कूटनीति करके भारत की स्वतंत्रता की उपलब्धियों को कमजोर करना चाहते थे।

2. निजाम के कुत्सिक इरादों को भांपते हुए अक्टूबर, 1947 में निजाम के साथ एक यथास्थिति समझौता कर लिया। इसके अंतर्गत हैदराबाद में एक वर्ष की अवधि तक यथास्थिति बनाये रखना तय किया गया था। इस समझौते के अंतर्गत निजाम द्वारा सैनिक शक्ति बढ़ाने एवं उसके द्वारा बाहर से सैनिक सहायता जुटाने पर भी रोक लगा दी गई। निजाम ने समझौते की शर्त को अनदेखा करते हुए अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने लगा। 1948 के दौरान पाकिस्तान से जहाजों द्वारा हथियार भेजे गए। इसके सैनिक प्रयासों को अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था। निजाम के सैनिक प्रयासों से यह स्पष्ट हो गया था कि स्वतंत्र भारत के भू-भागों के मध्य अंग्रेज निजाम के माध्यम से अपने एक सैनिक व राजनीतिक शक्ति का केन्द्र स्थापित करना चाहते थे। निजाम भारत-पाकिस्तान के मध्य कश्मीर विवाद का लाभ लेते हुए अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने लगा। उसकी यही मान्यता थी कि यदि भारत कमजोर पड़ता है तो वह अपनी स्वतंत्र सत्ता भारत से मनवा सकता है।
3. निजाम के विरुद्ध हैदराबाद के तेलंगाना क्षेत्र में 1946 से एक सशक्त किसान आंदोलन चला आ रहा था, जिसका नेतृत्व भारत का साम्यवादी दल कर रहा था। इस आंदोलन को कुचलने के लिए हैदराबाद रियासत के प्रशासन एवं सामन्तों ने रजाकारों की एक सेना गठित की। यह रजाकार हैदराबाद की गैर मुस्लिम जनता को भयभीत कर रहे थे। रजाकारों ने आंदोलनकारी किसानों पर भी आक्रमण किए। जनसंघर्षों को कुचलने के इन प्रयासों के प्रतिक्रियास्वरूप एक ओर निजाम के विरुद्ध किसान असंतोष बढ़ा और दूसरी तरफ हैदराबाद रियासत कांग्रेस ने निजाम के विरुद्ध शक्तिशाली सत्याग्रह आंदोलन आरंभ कर दिया। करीब 20,000 सत्याग्रहियों को जेल में ठूस दिया गया। रजाकारों के आक्रमणों और रियासती प्रशासन के दमनात्मक अत्याचारों से तंग आकर हजारों लोग रियासत के भू-भागों को छोड़कर पड़ोस के भारतीय भू-भागों में अस्थायी बसेरे बनाकर रहने लगे। इन अत्याचारों से तंग आकार रियासती कांग्रेस के नेतृत्व ने रजाकारों व प्रशासन के विरुद्ध जनता ने हथियार उठा लिए। कुल मिलाकर अराजकता व गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई इन स्थितियों का लाभ उठाते हुए कम्यूनिस्ट नेतृत्व में किसान दलों ने जमींदारों पर हमला बोलना आरंभ कर दिया तथा जमींदारों से उनकी जमींने छीनकर भूमिकर किसानों के बीच बाँटना आरंभ कर दिया। कांग्रेस एक ओर रजाकारों व रियासती प्रशासन से क्षुब्ध थी तो दूसरी ओर साम्यवादियों के बढ़ते प्रभाव से भयभीत थी। अत: केन्द्र सरकार ने हैदराबाद में सैनिक हस्तक्षेप का निर्णय लिया। 13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सेनाएँ हैदराबाद रियासत में प्रवेश कर गयी एवं पाँच दिन के अभियान में हैदराबाद पर भारतीय सेनाओं का अधिकार हो गया।
4. भारतीय सेनाओं ने न केवल रजाकारों को मार भगाया, अपितु किसान आंदोलन के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ की। दिसम्बर, 1948 में निजाम ने भारतीय संघ में विलय को स्वीकार कर लिया। भारत सरकार ने उसके प्रति अति उदारता दिखाई। उसे नवगठित राज्य का राजप्रमुख पद प्रदान किया गया, जिससे उसकी राजनीतिक शक्ति शेष रह गई। उसे अपने पास राज्य की विशाल सम्पत्ति रखने की अनुमति प्रदान कर दी गई साथ ही उसे ₹ 50 लाख वार्षिक पेंशन भी प्रदान की गई। इस प्रकार हैदराबाद के विलय के साथ ही रियासतों के विलय का कार्य सम्पूर्ण हुआ।

प्र.5. स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन एवं पुनर्गठन के बाद की स्थिति का वर्णन विस्तारपूर्णक कीजिए।
Explain the condition after reorganisation of states in independent India in detail.

उत्तर

राज्यों का पुनर्गठन
(Reorganisation of States)

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. स्वतंत्रता के पश्चात् एक सार्वभौमिक राष्ट्र के रूप में भारत के गठन की विभिन्न समस्याएँ थीं। देशी रियासतों के विलय से इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। राज्यों अर्थात् प्रांतों के पुनर्गठन की समस्या का समाधान भी आवश्यक था। हम यहाँ

यह जान लें कि आखिर यह समस्या क्या थीं। स्वतंत्रता के पूर्व विद्यमान प्रांतीय व्यवस्था का अवलोकन करें तो पाते हैं कि भारत असमान प्रांतीय इकाइयों में बंटा हुआ था। उदाहरणार्थ बम्बई प्रांत में महाराष्ट्र और गुजरात के भू-भाग सम्मिलित थे। मद्रास प्रांत के अंतर्गत आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु के भाग शामिल थे। बंगाल प्रांत पूर्वी पाकिस्तान बनने के कारण लघु आकार का हो गया था एवं इसमें असम और पूर्वोत्तर के राज्य सम्मिलित थे। पंजाब प्रांत का विशाल हिस्सा पश्चिमी पाकिस्तान में चला गया। इसके उपरान्त पंजाब में हिमाचल, पेप्सू, दिल्ली एवं हरियाणा के भू-भाग इसी के भाग थे। भाषायी और सांस्कृतिक आधारों पर प्रांतों के गठन की आवश्यकता प्रजातांत्रिक व राष्ट्रवादी विचारों के अनुकूल थी। भौगोलिक आधार को भी महत्त्व प्रदान करना आवश्यक था। देशी रियासतों के विलय से नये राज्यों (प्रान्तों) का जन्म हुआ था, जिन्हें एक सुदृढ़ और संगठित स्वरूप प्रदान किया जाना अभी शेष था। कुछ रियासतों का विलय पूर्व में विद्यमान प्रांतों में किया गया था जिससे अनेक प्रांतों में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। अत: राज्यों के पुनर्गठन को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझना उपयुक्त रहेगा।

2. **देशी रियासतों के विलय से उत्पन्न प्रादेशिक स्थिति**—प्रादेशिक पुनर्गठन की समस्या रियासतों के विलय के कारण भी उत्पन्न हुई। इनका विलय होने के बाद रियासतों का एक उपयोग प्रशासनिक व आर्थिक इकाई के रूप में विकसित किया जा सके, ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक हो गया था। अनेक रियासतों का आकार इतना लघु था कि उनका आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से विकास संभव नहीं था। ऐसी स्थिति में व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए ऐसी लघु रियासतों के पृथक् अस्तित्व का कोई व्यावहारिक औचित्य नहीं था। सरदार पटेल ने इस समस्या के समाधान हेतु रियासतें को तीन भागों में बाँटा। प्रथम श्रेणी में उन रियासतों को रखा जो सजीव थी एवं स्वतंत्र भारत में एक प्रांत के रूप में अस्तित्वमान रह सकती थीं। उदाहरणार्थ हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन एवं कश्मीर। दूसरी श्रेणी में वे निष्प्राण रियासतों सम्मिलित थीं जो स्वतंत्र भारत में पृथक् इकाई बनाने के लिए अनुपयुक्त थीं, उनका विलय पड़ोसी प्रांतों में कर दिया गया। उदाहरणार्थ उड़ीसा की 39 रियासतों को उड़ीसा प्रांत का अंग बना दिया एवं छत्तीसगढ़ की अनेक लघु रियासतों का विलय मध्य प्रांत (सीपी) में कर दिया गया। इसी प्रकार गुजरात और काठियावाड़ की सभी रियासतों का बम्बई प्रांत में सम्मिलित कर दिया गया। तीसरी श्रेणी के अंतर्गत विभिन्न रियासतों को मिलाकर नये प्रांतों अथवा प्रदेशों का गठन किया गया। इसके अंतर्गत पूर्वी पंजाब, पटियाला तथा पहाड़ी (हिमाचली) क्षेत्र के राज्यों को मिलाकर पेप्सू प्रदेश बनाया गया। पूर्वी राजस्थान की चार रियासतों क्रमश: अलवर, भरतपुर, करौली एवं धौलपुर को मिलाकर मत्स्य प्रदेश का गठन किया गया। इसी क्रम में राजपूताना की विभिन्न रियासतों को मिलाकर राजस्थान प्रांत का गठन किया गया। शेष बची हुई रियासतों को मिलाकर कुछ केन्द्रशासित प्रदेश बनाये गये।
3. **कांग्रेस की नीति**—रियासतों के विलय को प्रभावी बनाने के ध्येय से इनका प्रांतों में विलय अथवा स्वतंत्र प्रान्तों में गठन से इनसे उत्पन्न समस्या से तुरन्त निजात पा ली गई। यह व्यवस्था अभी तक डांवाडोल ही थी। संविधान सभा में राज्यों के पुनर्गठन पर विचार किया गया एवं भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की योजना भी सामने आई। स्वतंत्रता के पश्चात् कांग्रेस में भी प्रांतों के पुनर्गठन पर एकता नहीं थी। संविधान सभा में जब भाषायी आधारों पर पुनर्गठन की बात आई तो संविधान सभा ने 1948 में ही एस०के० धर के नेतृत्व में भाषायी राज आयोग की नियुक्ति भी की थी। इस आयोग ने भाषायी आधार पर राज्यों के गठन का विरोध किया। इसके अनुसार इससे राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता था। अत: परिणामस्वरूप भाषायी सिद्धांत को संविधान सभा के द्वारा अस्वीकार कर दिया गया, किन्तु जनभावना इससे संतुष्ट नहीं थी एवं विशेष तौर पर दक्षिण भारत में भाषायी समस्या राजनीतिक रूप धारण कर चुकी थी एवं वहाँ भाषायी आधार के पक्ष में उग्र प्रदर्शन हो रहे थे।
4. भाषा विवाद से उत्पन्न समस्या के समाधान हेतु जयपुर में आयोजित (दिसम्बर, 1948) कांग्रेस के सम्मेलन में भाषायी मुद्दे पर गर्मागरम बहस हुई कि भाषायी आधार पर राज्यों का गठन किया जाए अथवा नहीं। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने तीन सदस्यों क्रमश: जवाहर लाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल एवं पट्टाभि सीतारमैया की एक समिति का गठन किया। इसे जेवीपी समिति के नाम से जाना जाता है। इस समिति को धर आयोग की रिपोर्ट के आधार पर अंतिम अनुशंसाएँ करने का कार्य सौंपा गया। इस समिति ने भी राज्यों के भाषायी आधारों को निरस्त कर दिया। इसके अनुसार कुछ समय पूर्व भारत के विभाजन की यादें ताजा थीं एवं भाषायी आधारों से भारत में पृथक्कतावादी ताकतों के पनपने की संभावना थी। देशी रियासतों के विलय के पश्चात् इनके पुनर्गठन में मुख्यत: भौगोलिक आधार ही लिया गया था। यदि भाषायी अथवा सांस्कृतिक आधार को बढ़ावा दिया जाएगा तो पूर्व आंदोलन भी पनप सकता था, जो बिखराब की स्थिति उत्पन्न कर

सकती थी। अत: कांग्रेस की नीति अंतिम रूप से भाषायी आधार के विपरीत ही नहीं, जो समयानुकूल थी। इस प्रकार भाषायी आधारों पर अथवा भाषायी राज्यों के गठन के प्रथम अभियान का प्रथम दौर असफलता के साथ समाप्त हो गया। फिर भी कर्नाटक, केरल, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात के भाषायी आधार पर गठन का आंदोलन निरन्तर रूप से उत्पन्न होने लगा।

5. **संविधान द्वारा पुनर्गठन**—26 जनवरी, 1950 को लागू भारत के संविधान ने राज्यों के पुनर्गठन के विषय पर भी व्यवस्था प्रदान की। इसके अनुसार 28 राज्यों का गठन किया गया, जिन्हें क्रमश: ए, बी एवं सी श्रेणी के अन्तर्गत विभाजित रखा गया। यह इनके आकार के अनुसार निर्धारित किया गया। नई प्रशासनिक व राजनीतिक इकाइयों के गठन में एक बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई कि देशी रियासतें अस्तित्वहीन हो गई। दूसरी विशेषता यह थी कि इनके गठन में भाषायी विभाजन नहीं था। इनके गठन में जातीय आधार भी दिखाई नहीं देता। यह शुद्ध रूप से प्रशासनिक व प्रादेशिक विभाजन था। यह राष्ट्रवादी आधारों पर आधारित था एवं इसमें किसी भी प्रकार की भाषायी, जातीय, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संकीर्णता व्याप्त नहीं थी, किन्तु जनभावनाएँ अभी भी इससे संतुष्ट नहीं थी एवं भाषायी आधारों पर राज्यों के गठन की माँग जारी रही।
6. **1956 में राज्यों का पुनर्गठन**—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1950 में लागू संविधान के अंतर्गत प्रादेशिक गठन की व्यवस्था से जनभावना संतुष्ट नहीं थी। आंध्रप्रदेश के गठन हेतु तेलुगू भाषा बोलने वालों का आंदोलन जोर पकड़ रहा था। इस माँग का समर्थन तेलुगू भाषी मध्यम वर्ग कर रहा था। यूँ तो भाषायी राज्यों के गठन की माँग आजादी के बाद से ही जोर पकड़ रही थी, किन्तु जेवीपी समिति व संविधान सभा ने इसे स्वीकार नहीं किया। आंध्रप्रदेश में एक विशेष स्थिति यह थी कि तेलंगाना के किसान आंदोलन को शांत करने के लिए विशेष छूट दी गई थीं जिससे सरकार को जन समर्थन प्राप्त हो सके। इन छूट से प्रभावित होकर भाषायी राज्य हेतु प्रजातांत्रिक आंदोलन आरंभ हो गया। एक स्वतंत्रता सेनानी जो कांग्रेस के मद्रास संगठन का सक्रिय सदस्य था, जिसका नाम था पोट्टी श्रीरमालू इस आंदोलन का नेतृत्व कर रहा था। सितम्बर, 1952 में उसने मद्रास सरकार एवं कांग्रेस के समक्ष समाचार पत्रों के माध्यम से अपील प्रस्तुत की। इस अपील में उसने इस मुद्दे पर तुरन्त निर्णय की माँग रखी कि नया आंध्र प्रांत बनाया जा रहा है अथवा नहीं। जब अक्टूबर, 1952 के अंत तक इस अपील के प्रत्युत्तर में कोई सकारात्मक जवाब नहीं मिला तो उसने आमरण अनशन आरंभ कर दिया। 15 दिसम्बर, 1952 को 58 दिन लम्बी भूख हड़ताल के बाद श्रीरमालू की मौत हो गई।
7. श्रीरमालू की मौत से उत्पन्न जनाक्रोश के परिणामस्वरूप आंध्र क्षेत्र में सर्वत्र केन्द्रीय सरकार और मद्रास सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन और जुलूसों का तांता लग गया। इस क्षेत्र के कारखानों में हड़ताल हो गई। चार दिन तक दंगों, प्रदर्शनों, हड़तालों की झड़ी लग गई। हिंसा का खुला ताण्डव होने लगा। पुलिस की गोलियों से अनेक लोगों की मृत्यु तक हो गई। आंध्र क्षेत्र में उत्पन्न इस विकट स्थिति से निपटने के लिए केन्द्र सरकार ने 19 दिसम्बर, 1952 को आंध्र राज्य के गठन का प्रस्ताव पारित कर दिया। हालांकि नया राज्य एक वर्ष की अवधि अर्थात् अक्टूबर, 1953 में अस्तित्व में आया। इस प्रकार भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धांत को स्वीकृति प्राप्त हो गई।
8. आंध्रप्रदेश आंदोलन की सफलता से अन्य राज्यों में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्निर्धारण के आंदोलन को प्रोत्साहन मिला। बार-बार प्रशासनिक क्षेत्रों व सीमाओं के निर्धारण से आंतरिक अस्थिरता उत्पन्न होने का भय था, अत: नेहरू जी स्वयं इस प्रक्रिया के विरोधी थे, किन्तु नेहरू जी प्रजातंत्र व जनवाद के पक्के समर्थक थे। वे लोकप्रिय आंदोलन को कुचलने के पक्ष में नहीं थे। नेहरू जी के बारे में इतिहासकार एस० गोपाल ने लिखा है कि "उन्होंने महसूस किया कि इन भावनाओं का गला घोंटना गैर जनवादी होगा क्योंकि वे सामान्य धरातल पर इसे आपत्तिजनक भी नहीं मानते थे। वास्तव में भाषायी विभिन्नता राष्ट्रीय एकता के आधार को और सुदृढ़ बना सकती थी। परन्तु इस हेतु समय का चुनाव, आंदोलन एवं जिस हिंसात्मक तरीके से यह माँग की जा रही थी और इन माँगों को लेकर जितनी आपसी रंजिश भारतीय जनता के विभिन्न हिस्सों के अंदर छुपी हुई थी, ने निश्चित ही नेहरू को बहुत चिन्तित कर दिया था।
9. मई, 1953 में कांग्रेस कार्यसमिति ने राज्यों के पुनर्गठन का प्रारूप तैयार करने के लिए एक विशेष सरकारी आयोग नियुक्त करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। यह भी निश्चित किया कि अपनी अनुशंसाओं को अंतिम रूप प्रदान करने के पूर्व विभिन्न राज्यों में जनसंख्या की भाषायी संरचना को ध्यान में रखा जाएगा। कांग्रेस के इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने अगस्त, 1953 में राज्यपुनर्गठन आयोग नियुक्त कर दिया, जिसके सदस्य न्यायमूर्ति फजलअली, के०एम० पनीक्कर एवं हृदयनाथ कुजरु बनाए गए। इस आयोग को यह दायित्व सौंपा गया कि पुनर्गठन से संबंधित सभी पक्षों यथा भाषा, संस्कृति, जातीय, जनजातीय इत्यादि को ध्यान में रखकर यह आयोग अपनी अनुशंसा प्रस्तुत करेगा।

TOUCH 'n' PASS

10. उक्त आयोग के समक्ष यह एक विकट समस्या थी क्योंकि इसे अपने दो वर्ष के कार्यकाल में भारी जन प्रतिरोध का मुकाबला करना पड़ा। इसके समक्ष प्रदर्शन, रैली, भूख-हड़ताल, जुलूस इत्यादि की बाढ़ आ गई थी। विभिन्न भाषायी समूह एक दूसरे से टकराने लगे थे। कुल मिलाकर स्थिति अशांत हो गई थी। इस वातावरण में कार्य करना आयोग के लिए चुनौती भरा कार्य था। फिर भी इस आयोग ने अपना कार्यनिर्धारित समय में पूर्ण कर अक्टूबर, 1955 में रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। रिपोर्ट में स्पष्टत: उल्लेख किया गया था कि आर्थिक व प्रशासनिक पक्षों को समुचित महत्त्व देते हुए भी भाषायी आधार पर अधिक जोर दिया जाए। भाषायी आधारों पर ही राज्यों की सीमाओं के पुनर्निधारण की अनुशंसा की गई। भाषायी आधार को स्वीकार करने के उपरान्त भी इस आयोग ने बम्बई और पंजाब प्रांत को भाषायी आधारों पर नहीं बाँटने की सिफारिश की। इस आयोग की रिपोर्ट पर देश के कई भागों में तीखी प्रतिक्रिया हुई, किन्तु इसे नजरअंदाज करते हुए आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर इसे लागू कर दिया गया।
11. राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट पर आधारित विधेयक 31 अगस्त, 1956 को संसद में पारित हुआ। इस विधेयक को ध्यान में रखते हुए इसी वर्ष सितम्बर में संविधान में आवश्यक संशोधन किए गए। 1 नवम्बर, 1956 को यह विधेयक कानून बन गया और इसके आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। इसी दिन से यह कानून लागू हो गया एवं जो प्रशासनिक और प्रादेशिक विभाजन किया गया था, वह भी इसी दिन से प्रभावी हो गया। इसके अंतर्गत 14 राज्यों व 6 केन्द्र शासित प्रदेशों का गठन अस्तित्व में आया। पूर्व हैदराबाद रियासत का तेलांगाना क्षेत्र नवगठित राज्य आंध्रप्रदेश को दे दिया गया। ट्रावनकोर-कोचीन से पूर्व मद्रास प्रांत के मालाबार क्षेत्र को मिलाकर केरल राज्य का गठन किया गया। बम्बई, मद्रास, हैदराबाद और कुर्ग के कुछ कन्नड़ भाषी क्षेत्रों को मैसूर राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। पूर्व हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी क्षेत्र बम्बई प्रांत को दे दिए गए। पेप्सू का विलय पंजाब में करके नये राज्य का गठन किया गया। अजमेर-मेरवाड़ जिसे सी श्रेणी के राज्य का दर्जा प्राप्त था, उसका विलय राजस्थान में कर दिया गया। इसके साथ ही आबू क्षेत्र बम्बई प्रांत से लेकर राजस्थान को प्रदान कर दिया गया।

1956 के राज्य पुनर्गठन के बाद की स्थिति
(Conditions after the Reorganisation of States in 1956)

इस स्थिति को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. 1956 के राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों पर आधारित विधेयक को लागू करने के पश्चात् भी राज्यों के पुनर्गठन का मामला अंतिम रूप से नहीं सुलझ सका। अत: भाषायी आधारों पर नये राज्यों के गठन का संघर्ष जारी रहा। मुख्य रूप से बम्बई, असम और पंजाब प्रांत में भाषायी विभिन्नता व्याप्त रही। इन्हीं प्रांतों में भाषायी आधारों पर नये राज्यों के गठन की माँग जारी रही। यहाँ एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि 1956 में किए गए राज्यों के पुनर्गठन से जनता संतुष्ट नहीं थी। 1956 के आम चुनावों में कांग्रेस को संसद में सीटों का भारी नुकसान उठाना पड़ा। इससे कांग्रेस चिंतित हुई एवं कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से इंदिरा गाँधी ने इस सवाल को बम्बई प्रांत के संदर्भ में फिर उठाया क्योंकि इसी प्रांत में कांग्रेस को मतों व संसद में सीटों का व्यापक नुकसान हुआ था। अन्तत: कांग्रेस के निर्णय के आधार पर केन्द्र सरकार ने 1960 में बम्बई प्रांत को दो भागों में क्रमश: महाराष्ट्र और गुजरात में बाँटने का निर्णय लिया। इसके अंतर्गत बम्बई महाराष्ट्र की राजधानी एवं अहमदाबाद गुजरात की राजधानी बनायी गई। इस प्रकार मराठी और गुजराती भाषा पर आधारित राज्य अस्तित्व में आए।
2. पंजाब प्रांत के संबंध में भी भाषायी आधार लागू करने की आवश्यकता थी। पंजाब की जनसंख्या मुख्यत: दो भाषा समूह क्रमश: हिन्दी एवं पंजाबी बोलने वालों से युक्त थी। जनसंख्या की धार्मिक संरचना बराबर विभाजित नहीं थी। लगभग 30 प्रतिशत लोग सिक्ख धर्म को मानने वाले थे। भाषा का विभाजन धर्म पर आधारित नहीं था क्योंकि वहाँ कुछ हिन्दू पंजाबी बोलते थे एवं कुछ सिक्ख हिन्दी। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अकाली दल ने पंजाबियों के सांस्कृतिक जीवन में पंजाबी भाषा की भूमिका का मुद्दा उठाया। तत्पश्चात् भाषा का प्रश्न अकाली दल के कार्यक्रम का व्यापक मुद्दा बन गया। अकाली दल के नेताओं के दबाव में भारत सरकार ने 1949 में पंजाब को दो भाषाओं वाला प्रांत घोषित कर दिया। इसके अनुसार हिन्दी भाषा बोलने वाली जनसंख्या की प्राथमिक शिक्षा का माध्यम हिन्दी को स्वीकार किया गया एवं पंजाबी भाषा बाहुल्य क्षेत्र के निवासियों का माध्यम पंजाबी माना गया।
3. द्विभाषा के आधार को स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि दोनों भाषाओं के आधार पर दो स्वतंत्र राज्यों के गठन की माँग बल पकड़ने लगी। द्विभाषा का फार्मूला करने के उपरान्त पूर्व की तरह समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें मुख्यत:

TOUCH 'n' PASS

हिन्दी और उर्दू में प्रकाशित होती रहीं। 1951-52 के आम चुनावों में अकाली दल ने पंजाबी भाषा जनसंख्या के लिए पृथक् राज्य के निर्माण का नारा दिया। वास्तव में अकाली दल के पास कोई वास्तविक सामाजिक अथवा आर्थिक कार्यक्रम नहीं था। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस को इन चुनावों में भारी सफलता मिली एवं अकाली दल को बुरी तरह पराजय का सामना करना पड़ा। पंजाब की 122 सदस्यीय विधानसभा में अकाली दल को कुल 22 सीटें प्राप्त हुई। अत: इससे निराश होकर 'पंजाब-सूबा' का नारा अकाली दल द्वारा आगे बढ़ाया गया। इसमें भाषा के आधार पर पंजाब राज्य के गठन की बात के साथ यह जोड़ दिया गया कि पंजाब सुबा सिक्ख जनसंख्या बाहुल्य होना चाहिए। इसमें पृथक्कतावाद की बात छुपी हुई थी। नेहरू और कांग्रेस नेतृत्व के समक्ष यह मुद्दा बिल्कुल स्पष्ट था। इसके अनुसार धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर राज्य के निर्माण की माँग स्वीकार्य नहीं थी। राज्य पुनर्गठन आयोग ने भी अलग पंजाबी भाषी राज्य के निर्माण की माँग को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि इससे साम्प्रदायिकता बढ़ने का खतरा था, अत: पंजाबी सूबे की माँग को केन्द्र सरकार ने खारिज कर दिया। इससे भी समस्या का अंत नहीं हुआ।

4. 1956 में पंजाब के पुनर्गठन के समय पेप्सू को पंजाब में मिला दिया गया। इससे तीन भाषायी समूह क्रमश: पंजाबी, हिन्दी एवं पहाड़ी पंजाब की जनसंख्या संरचना का अंग बन गए। पंजाब में जनसंघ ने हिन्दी और अकाली दल ने पंजाबी भाषा के आधार पर पृथक् राज्यों के गठन की माँग दोहराई। इस हेतु आंदोलन भी हुए। इन्हें शांत करने के लिए एक नया फार्मूला निकाला गया, जिसके अनुसार पंजाब सरकार एवं विधानसभा के साथ जुड़ी हुई दो प्रादेशिक परिषदों का गठन किया गया। एक पंजाब एवं दूसरी हरियाणा के लिए गठित की गई। यह प्रयोग सफल नहीं रहा। अंतत: 1966 में भाषायी आधारों पर दो नये राज्यों पंजाब एवं हरियाणा का गठन कर दिया गया। पहाड़ी भाषी क्षेत्रों का विलय हिमालय प्रदेश में कर दिया गया। संयुक्त पंजाब की राजधानी और नवनिर्मित चंडीगढ़ शहर को केन्द्रशासित प्रदेश बना दिया गया। 1966 से ही चंडीगढ़ को पंजाब और हरियाणा की राजधानी भी बना दिया गया।
5. राज्यों के पुनर्गठन के अधिकांश मामले मोटे तौर पर समाप्त हो गए थे किन्तु उत्तर पूर्व भारत में अभी भी भाषा का विवाद बहुत पहले से ही चला आ रहा था। असम प्रांत के पहाड़ी क्षेत्रों में नागालैण्ड, मिजोरम एवं मेघालय में असंख्य आदिवासी समूह बसे हुए थे जिनकी भाषाएँ भी भिन्न-भिन्न थी। 1950 में नये संविधान के लागू होने के साथ ही इन आदिवासियों के पृथक्तावादी आंदोलन आरंभ हो गए। 1960 में असम विधानसभा ने एक कानून पारित कर असमी को एकमात्र सरकारी कामकाज की भाषा बना दिया। इसके साथ असम में भाषायी दंगे फूट पड़े प्रमुख संघर्ष बांग्ला भाषियों एवं असमी भाषियों के मध्य था। असम में सभी जगह बंगालियों पर एक साथ हमले किए गए उनके घर लूट लिए गए और उनमें आग लगा दी गई। भारी संख्या में बंगालियों को कछार और बंगाल में शरण लेनी पड़ी। जनजातीय समूह मुख्यत: नागा, मिजो, खासी भी असम की भाषा नीति के विरोधी थे। 1963 में नागालैण्ड राज्य स्थापित हुआ। इसके पश्चात् मिजोरम एवं मेघालय अस्तित्व में आए। इन जनजातीय राज्यों की आम भाषा तो जनजातीय भाषाएँ ही रहीं, किन्तु राजकीय भाषा अंग्रेजी बन गयी। त्रिपुरा राज्य का गठन मुख्यत: बांग्ला भाषी जनसंख्या के आधार पर किया गया। मणिपुर की भाषा मणिपुरी ही रही।
6. 1950 से 1966 के दौरान भाषायी आधारों पर राज्यों के पुनर्गठन का कार्य लम्बी उथल-पुथल के बाद ही पूर्ण हो सका। इनके पश्चात् भी भाषायी, जनजातीय एवं धार्मिक आधारों पर राज्यों के पुनर्गठन की माँगें निरंतर चलती रहीं। हाल ही में उत्तरांचल, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड राज्यों का गठन भौगोलिक, भाषायी एवं जनजातीय आधारों पर हुआ है।

❐

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अत: कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं। 1022

मॉडल पेपर

आधुनिक भारत का इतिहास (1757-1950 ई० तक)

B.A.-II (SEM-III) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—सभी **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित है।* **(3 × 5 = 15)**

1. भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पहला गवर्नर जनरल कौन था?
2. युद्ध के पश्चात् के परिदृश्य का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. बंगाल विभाजन से आप क्या समझते हो?
4. भारत शासन अधिनियम 1919 के तहत अन्तिम चुनाव कब हुए?
5. साम्प्रदायिकता का क्या अर्थ होता है?

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **दो** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित है।* **(7.5 × 2 = 15)**

6. वॉरेन हेस्टिंग्स के भूमि-कर एवं व्यापार सम्बन्धी सुधारों का उल्लेख कीजिए।
7. ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के विकास की पृष्ठभूमि एवं स्थायी बंदोबस्त की व्याख्या कीजिए।
8. अकाल दूर करने के सम्बन्ध में नीतियों पर प्रकाश डालिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **तीन** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित है।* **(15 × 3 = 45)**

9. अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियों एवं इनकी सफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।
10. तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18 ई०) का वर्णन करते हुए मराठों के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिए।
11. "भारतीय पुनर्जागरण के उदय के अनेक कारण थे।" स्पष्ट कीजिए एवं इसके स्वरूप को बताइए।
12. रेलवे के विकास एवं प्रभावों का आलोचनात्मक परीक्षण विस्तार से कीजिए।
13. स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन एवं पुनर्गठन के बाद की स्थिति का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।

❑

TOUCH 'n' PASS